

510
294.5926
m 294 6.9

। मनुस्मृति का सूची पत्र ।



अध्याय

१	जगत् की उत्पत्ति
२	गर्भाधान आदि संस्कार विधि
२	व्रत का आचरण
३	स्नान विधि
३	स्त्री प्रसंग (अर्थात् विवाह)
३	विवाहों का लक्षण
३	महायज्ञ का विधान
३	श्राद्ध विधि
४	जीविका का लक्षण
४	ब्रह्मचारी का व्रत
५	भक्ष्य
५	अभक्ष्य
५	शौच

पृष्ठ पंक्ति

२	२
१३	४
२४	११
३०	२
३०	६
३२	१
३५	१०
४६	१
५७	८
५८	७
७७	५
७८	२
८३	६

अध्याय

५	द्रव्यशुद्धि
५	स्त्री के धर्म करने का उपाय
६	तपस्या
६	मोक्ष
६	संन्यास
७	राजों का धर्म
८	सभ कार्य्यों का विचार
८	साक्षियों से पूछने की रीति
८	पुरुष का धर्म
८	विभाग धर्म
८	जूआ खेलने की रीति
८	दुष्टों को दंड
८	वैश्य और शूद्रों के धर्म का करना

पृष्ठ पंक्ति

८८	४
८९	३
८३	२
८५	३
८५	६
१००	७
११८	८
१२४	५
१५५	३
१६३	७
१७३	६
१७४	१
१८२	४

२		॥ मनुस्मृति का सूची पत्र ॥			
अध्याय		पृष्ठ	पंक्ति	अध्याय	पृष्ठ पंक्ति
१०	वर्ण संकरों की उत्पत्ति	१८३	६	१२	देश जाति कुल पाषण्डि गण इन्हों का धर्म यह सभ क्रम से नहीं हैं इस लिये अध्याय और पृष्ठ और पंक्ति को न लिखा ॥
१०	विपत्ति काल में वर्णों का धर्म	१८०	५		
११	पाप छूटने की विधि	२००	५		
११	एक शरीर छाड़ के दूसरे शरीर में जाना	२१७	८		
१२	आत्म ज्ञान और कर्मों के गुण दोष की परीक्षा	२१८	८		



॥ शुद्धाशुद्ध पत्र ॥

—0—

॥ बहुधा छापा में हल् अक्षर नहीं उपटता इस लिये जहां हल् चाहिए वहां स्वर देख पड़ेगा सो पंडित लोग तो जानी जायंगे कि यहां हल् चाहिए और जो संस्कृत नहीं जानते वह उपदेश से जानेंगे ॥

॥ टीका ॥

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
१	मेलीन	श्वरूप	१	१४
१	अधर्म	अधम्म	४	२
१	अर्थात्	अयात्	७	१
१	तप के	तपक	८	४
२	श्रुति	अति	१२	७
२	संपर्ण	संपर्ण	२१	१३
२	बालको	बालको	२३	१
२	दूसरा धर्म	दूसरा धम	२८	८
३	कुल	बुल	३०	
३	गमन	गमय	३२	

न क
अध्याय
कर जाते
पीड़ा नाक

॥ मूल ॥

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
१	प्रत्यु	प्रत्य	१	३
१	शुक्रः	शुकः	७	२
१	वृषि	वृषि	८	१०
१	निश्चये	निश्चये	१०	११
२	कर्म	कम	११	४
२	स्मृत्यु	स्मृत्य	११	८
२	अयाद्	अयाद्	१२	२
२	पञ्चा	पञ्चा	१२	८
२	क्राभि	क्राभि	१३	५
२	तल्ल	तल्ल	१५	८

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
३	वहकुल	वहवुल	३४	१४	२	शूद्रवद्	शूद्रवद्	१६	१
३	अन्न होता है	अन्न होता ह	३६	३	२	पृच्छतः	च्छतः	१६	७
३	सत्कार	दत्वार	४०	४	२	ब्रूयात्किञ्च	ब्रयास्त्रि	२०	४
३	तो उस ब्रह्मण	तो ब्रह्मण	४१	१३	२	श्वशुरा	श्वशुरा	२०	६
३	ब्रह्मचारी	ब्राह्मचारो	४२	६	२	प्रोति	प्रोति	२३	१
३	जीनेवाला	जीनवाला	४२	७	२	दण्डो	दण्डा	२३	११
३	पालन से	पालन में	४२	१०	२	त्वाव्रजतः	ताव्रजतः	२५	७
३	मनुष्य	मनुष्य	४३	१३	२	उच्यते	उच्यते	२८	३
३	अर्था	अर्थात	४४	३	२	धर्म	धम	२८	३
३	रहित	राहित	४४	१०	२	तेषु	तेष	२८	५
३	यज्ञ में	यज्ञ मे	४४	१३	३	विशेत	विशेत्	३०	१
३	आसनो में	आसनो से	४७	५	३	द्वाता	भ्दाता	३१	१
३	मूल	मल	४८	१३	३	सानृत	सामृत	३३	५
३	इस रीति से	इस रीति स	४९	६	३	व्रजेच्चनां	व्रजेच्चनां	३३	८
३	मघा	मघा	५२	६	३	तचाश्रमे	तश्चीश्रमे	३४	४
३	जीवन	जब	५७	१	३	मप्याश	मप्यश	३६	६
४	पहिला	पहिले	५८	४	३	पितृभ्यो	पितृभ्या	३७	५
४	रस	रय	५८	१३	३	विदधे	विषेदु	३७	८
४	मस्तक	मस्तत	६१	६	३	नास्थान	नस्थान	३८	५
४	सूता हो	मूता हो	६२	४	३	चतुर्धपि	चतुपपि	४१	१
४	उखाड़ने	उखाड़न	६३	५	३	स्वसीयं	स्वस्त्रीयं	४२	३

॥ मनुस्मृति मूल और टीका भाषा ॥

३

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
४	दूसरे	दसरे	७०	५	३	जीवश्च	जीवश्च	४३	७
४	अर्थगौ	अर्थगा	७१	५	३	विगर्हि	विगर्हि	४३	८
४	जो है सो है तो	जो हेतो	७१	११	३	दातुर्भवत्यू	दातुर्भवत्य	४४	२
४	येतत्यर	मंतत्यर	७३	५	३	द्विजैर्भू	द्विजभू	४४	२
४	अलश्रद्धा से	अन्नसे	७५	११	३	धर्मणा	धर्मणा	४४	५
४	भूमि	भमि	७६	५	३	योहि	योदि	४५	३
	यके अर्थ नित्य हों				३	अग्न्या	अग्या	४५	५
	धर्म को धीर से				३	वे देप	वे देपु	४५	५
	बटोरै धर्म सहा-				३	कुप्ये	कुप्य	४६	१
	य कर के दुस्तर				३	कृष्या	कृष्यां	४६	३
	अंधकार को त-				३	पिण्डमेकं	पिण्डनेकं	५०	५
	रता है १४२		७७	१	३	रद्भिर्मू	रद्भिंमं	५१	१०
४	करे	कर	७७	१०	३	सर्पिभ्यां	सर्पिभ्या	५२	६
५	मृत्यों	मृत्यों	८०	१०	३	तर्प्य	तप्य	५७	३
५	यह दैव विधि	यह विधि	८१	५	४	अद्रोहे	नद्रोहे	५७	८
५	दो वर्ष होने के	दो मास होनेके	८४	८	४	कुशूल	कुशूल	५८	२
५	होता है	होता ह	८५	१३	४	परो	पगे	५८	३
५	पूर्व कथित	पार्व कथित	८५	१३	४	जीवेन्तु	जीवेस्तु	५८	७
५	आशौच	आशाच	८७	१	४	कर्म	कर्मा	५८	७
५	संयोग से	संयोग को	८८	७	४	कुण्डले	कुण्डले	६०	७
५	कराता हो	करता हो	९०	१०	४	कदाचन	कदाच	६०	८

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
५	युवती हो	यवती को	८१	४	४	नोपधमे	तोपधये	६१	१०
५	है	रहै	८१	८	४	लिखेदू	लिखेद्व	६२	१
५	अप्रिय	अप्रयी	८१	१२	४	स्पृष्टे	पृष्टे	६३	५
५	रहित	राहित	८२	४	४	न्दुर्ग	न्दर्ग	६३	८
६	पुरोडाश	परोडाश	८३	११	४	व्रत	ब्रम	६४	२
	आगे टीका के श्लोकांक से मूल का श्लोकांक				४	वर्ति	वति	६४	८
	एक अंक कम जानना संपूर्ण अध्याय में बैखान				४	कुक्षलं	कक्षलं	६४	८
	समत अर्थात् बानप्रस्थ मत में स्थित होकर				४	ग्रामे	ग्राम	६६	४
	॥ २१ ॥ श्लोकांक यहां चाहिए ॥				४	नत्वेवतु	नत्वेवन्तु	७१	५
६	देवे	देव	८७	१	४	वाह्नुपिक	वाह्नुपिक	७४	४
६	गर्भ	गभ	८७	८	४	दत्ताद्रितः	दत्ताद्रितः	७५	८
६	आज्ञा	अज्ञा	१०१	८	४	स्तृप्ति	स्तप्ति	७६	२
६	कौआ	काआ	१०२	१	४	भूमि	भुमि	७६	२
६	दंड कहते हैं	दड कहते हैं	१०४	११	४	नयो	नययो	७७	७
७	युक्त	पक्त	१०६	५	४	भवेदत्मा	भवदात्मा	७८	१
७	मुख में	मुख मं	१०६	१०	५	विष्कं	बिष्कं	७८	७
७	अपने से	अपने मे	१०७	३	५	पुराणो	पुराणो	८०	८
७	निंदा	निंद	१०७	११	५	ऋरं	ऋरं	८६	७
७	सहस्र	सहस्त्र	१०८	४	५	ततो	ततो	८०	७
७	सहस्र	सहस्त्र	१०८	५	५	सुप्ता	सुपत्वा	८१	२
७	सहस्र	सहस्त्र	१०८	८	६	चर्म	चम	८३	५

॥ मनुस्मृति मूल और टीका भाषा ॥

५

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
७	देवै	देव	१०६	११	६	सार्व	सर्व	६५	८
७	पुरमे	पुरम	११८	११	६	भूतानां	भतानां	६५	१०
७	देखा	देख	११८	१	६	विसृज्य	विसज्य	६८	१०
७	सुंदर	मुंदर	११८	१	६	आध्यात्मि	अध्यात्मि	६६	३
८	बाले	बले	११८	८	६	वा	वा	६६	५
८	भूठ	भठ	१२२	५	६	अःपृ: ६४ पुष्य मूल फलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा काल			
८	कुल	बुल	१२२	८		पक्षैस्त्रयं शीर्णैर्वैखान समते स्थितः २१			
८	कार्य	काय	१२२	१२	६	स्मृति	स्मति	६६	७
८	मार्ग	मर्ग	१२३	१	६	सर्ववर्णा	सर्वर्णा	१०२	३
८	बात का	बात क	१२३	१३	६	दंडेनैव	दंडनैव	१०२	६
८	पूछता है	पूछता ह	१२३	१४	६	प्राज्ञा	प्रज्ञा	१०५	१
८	भूठ	भठ	१२६	१२	६	वपुष्मान	विपुष्मान	१०५	४
८	भूमि	भमि	१२७	१०	७	कृताञ्जलिम	कृताञ्जलिम	१०७	५
८	कुछ	वछ	१२८	५	७	तानानये	तानानयं	१०८	७
८	और योग्य	और के योग्य	१३०	१	७	दण्डेनैव	दण्डनैव	१०८	८
८	पणका	पणक	१३०	८	७	भुक्तं	भुक्तं	११०	३
८	मास भर	मासा भर	१३१	३	७	राज्ञां	राज्ञा	१११	१
८	मूल	मल	१३२	१	७	राष्ट्रमेव	राष्ट्रमव	१११	१
८	पर के अर्थ	पर अर्थ	१३३	१३	७	तपोमूलं	तपोर्मूलं	११३	५
८	अपदेश्य	अपदेश	१३५	१	७	ग्रहश्चैव	ग्रहश्चव	११३	४
८	गौ की	गाकी	१३८	१२	७	कृत्वा	कृत्वा	११७	८
८	कुलक	कुलुक	१४०	६	७	प्राप्ता	प्राता	११८	१

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
८	२५६ अंक के आगे गर्भहत्या करने	१४१	७		७	गतकर्मः	गतकर्मः	११६	६
८	वाला इहां से लेके पकड़ने वाला इहां तक				८	स्त्रिङ्गै	स्त्रिङ्गे	१२१	५
	अधिक है				८	कृतघ्नस्य	कृतघ्नश्च	१२६	८
८	करै	कर	१४३	८	८	स्युर्वद	स्युर्व	१२६	८
८	ग्यारह	ग्यारह	१४६	६	८	तमस्यधे	तमस्यधेः	१२७	३
८	अपराध में	अपराध मं	१४७	८	८	तदैपु	तदैप	१३०	३
८	संग्रहण	सग्रहण	१४८	७	८	सहस्रत्वे	सहस्रत्वे	१३०	८
८	कष्ट के	कष्ट क	१५४	३	८	निक्षेपो	निःक्षेपो	१३१	७
८	दक्षिम	दाक्षिम	१५४	८	८	यांष्टदिं	ताष्टदिं	१३२	६
८	अपने	अपने अपने	१५५	५	८	स्यात्कुटुं	स्यात्कुटुं	१३३	५
८	भार्या	भार्यां	१५५	८	८	कुटुंवा	कुटुंवा	१३३	६
८	कर्म	कर्म	१५५	११	८	दुरात्मानं	दुरात्मानं	१३४	४
८	भार्यात्व	भर्तात्व	१५८	१३	८	महापक्षे	महापक्ष्ये	१३४	७
८	दोष को	दोष को	१६१	२	८	निक्षेप्तु	निक्षेप्त	१३५	१
८	सोन करना	सो करना	१६४	७	८	निर्णयं	निर्णयं	१३६	३
८	पुत्र	पुत्र	१६८	१२	८	नाकन्या	नाकन्यां	१३८	७
८	वाला है	वाला ह	१७०	७	८	परिवृत्ते	परिवृत्ते	१३८	८
८	चारों के	चारों के	१७७	१०	८	स्वैर्नयै	स्वैर्नयै	१४१	२
८	वाला म एकको	वाला को	१७८	१	८	ब्राह्मणे	ब्राह्मणे	१४२	८
८	बांधते हैं	बांधते ह	१८१	१	८	यानस्य	यानश्च	१४३	८
८	चढ़ते हैं	चढ़ते हैं	१८२	२	८	वर्त	वत	१४३	१०
१०	वर्ण की	वर्ण की	१८४	१०	८	संग्रहे	सग्रहे	१४५	७

॥ मनुस्मृति मूल और टीका भाषा ॥

७

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
१०	आदिछ	अदिछ	१८५	८	८	केलिः	कलिः	१४६	५
१०	नही	हीन	१८६	२	८	न्दूपये	न्दपये	१५०	१
१०	वैदेहक	वैदेकह	१८६	८	८	अङ्गुली	अङ्गुली	१५०	४
१०	करना पढ़ना	कराना पढ़ाना	१८७	२	८	क्षत्रियो	क्षत्रिया	१५१	२
१०	पारद	पारह	१८७	३	८	गुप्तां	गुपां	१५१	३
१०	अन्न	अन	१८८	१०	८	गुप्तया	गुपया	१५१	४
१०	असम	असभ	१८८	१३	८	मूत्रेण	मूत्रण	१५१	६
१०	वैश्य को	वैश्य	१८०	५	८	मिच्छेत,	मच्छेत,	१५१	६
१०	भोजन	मोजन	१८१	२	८	सस्यस्य	सस्य	१५६	१
१०	रसोई	रसई	१८१	१०	८	रेऽनुवृते	रेऽनवृते	१६४	७
११	संते	संत	१८५	८	८	स्तृतीयं	स्ततीयं	१६६	७
११	अग्नि	आग्नि	१८७	८	८	मेवच	मवच	१६७	२
११	से	से	१८८	१	८	सुतौ	तुयौ	१७०	१०
११	मारै	लारै	२००	११	८	कीवा	त्कीवा	१७१	६
११	रात्रि में	रात्रि भें	२०३	१३	८	कर्तृश्च	कर्तृश्च	१७४	४
११	कौआ	काआ	२०७	८	८	च्छिष्या	च्छिष्या	१७७	७
११	भक्ष्य	भैक्ष्य	२०८	६	८	अङ्गुलीयं	अङ्गुलीयं	१७८	२
११	अधिक छो-	अधिक हो	२१०	२	८	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	१८०	२
	टा भाई हो				८	भूतानि	भूतनि	१८०	८
११	कहा है	कहा	२१२	२	८	कोपिताः	कोपितः	१८१	६
११	ब्राह्मण का	ब्राह्मका	२१४	१०	१०	दृश्य	दृश्य	१८३	८

॥ मनुस्मृति मूल और टीका भाषा ॥

अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
१२	ऋषि लोग	ऋषि से लोग	२१६	६	१०	चात्यातु	ब्रात्यात	१८४	८
१२	भृगुरिषि से	भृगुऋषि	२१६	६	१०	सारथ्य	सारथा	१८७	४
१२	वैमानिकग	वैमानिक	२२०	५	१०	रक्तानि	रक्तानि	१९०	१०
	ण	गुण			१०	वार्तोत्तुं	वर्तोत्तुं	१९२	३
१२	इन	इन इन	२२०	६	११	अभिजि	अभिति	२००	७
१२	कर्म	कर्म	२२१	७	११	निःश्रेयं	निःश्रेयं	२०२	१
१२	उस पाप	उप पाप	२२२	८	११	नियतो	नियते	२०४	१
१२	अर्थात्	अथत्	२२३	१२	११	सर्वस्वं	सर्वस्वं	२०४	५
					११	अवकीर्णी	सवकीर्णी	२०४	६
					११	सिताः	सितः	२०५	५
					११	कर्णायसों	काष्णायसों	२०५	७
					११	दानां	दानं	२०६	५
					११	स्मृतम्	स्मृतम्	२०६	५
					११	रप्स	रप्स	२११	५
					११	दुर्गं	यदुर्गा	२१४	६
					१२	गतयोनूणां	गतयोनूणां	२१६	१०
					१२	तावुभौ	तावभौ	२१७	८
					१२	विप्रो	विप्रा	२२२	४
					१२	रूपश्च	रूपश्च	२२४	४
					१२	सेहेयो	सेहेयो	२२६	२
					१२	मनसीन्दं	मनसीन्दं	२२६	२
					१२	विष्णुं	विष्णं	२२४	३

॥ श्री गणेशाय नमः ॥ बड़े बड़े ऋषि लोगों ने सकल वेदार्थ आदिक को चिन्तन करनहार जो निचिन्त बैठे थे मनु ऋषि तिसके समीप जाकरके और विधि से प्रतिपूजन करके इस बात को पूछा (इस स्थान पर प्रति शब्द से यह जाना जाता है कि प्रथम मनु ऋषि ने सब ऋषियों को आसन देके पूछा कि सुन्दर प्रकार से आए यह पूछना पूजन हुआ फेर ऋषियों ने मनु ऋषि का पूजन किया यह प्रति पूजन भया । अब यहाँ ऐसी शंका होती है कि ग्रंथ की समाप्ति और विघ्न का नाश यह दो बातों के लिये ग्रंथ के आदि मध्य अन्त्य में बन्तु कथन रूप अथवा आशीर्वाद रूप वा नमस्कार रूप यह तीन प्रकार के मंगल हैं इसमें कोई एक मंगल बड़े लोग करते हैं तो इस स्थान पर कौन मंगल भया तिसका समाधान यह है कि संसार के पालन के लिये परमात्मा सर्वज्ञता और ऐश्वर्य आदि गुण से युक्त मनु रूप होके उत्पन्न भये तिसका नामोच्चारण मंगल है सो आगे मनुजी बारहवीं अध्याय में कहेंगे कि मनुजी को कोई मनु कोई अग्नि कोई प्रजापति कोई इंद्र कोई प्राण कोई नित्य परब्रह्म कहता है) । १ । कि हे भगवान् (अर्थात् ऐश्वर्य आदि क गुण से युक्त सो विष्णु पुराण में कहा है कि संपूर्ण ऐश्वर्य और बौर्य यज्ञ श्री ज्ञान बैराग्य ये सब जिस में रहे सो भगवान् कहाता है) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चारों वर्णों के और अनुलोम प्रतिलोमों के) अर्थात् ऊँच बीज से नीच योनी में हुआ सो अनुलोम कहाता है और नीच बीज से ऊँच योनि में हुआ सो प्रतिलोम कहाता है जैसे ब्राह्मण से क्षत्रिया कन्या में भया यह अनुलोम है और क्षत्रिय से ब्राह्मणी कन्या में भया यह प्रतिलोम है इसी प्रकार से दूसरी जात में भी जानना ये सब वर्ण संकर हैं इन्हें

मनुमे काग्रमासीन मभिगम्यमहर्षयः प्रति पूज्ययथा न्यायमिदं वचनमब्रुवन् । १ । भगवन्सर्ववर्णानां यथा वदन्तु पूर्वशः
अन्तरं प्रभवानाश्चधर्मान्नोवक्तुमर्हसि । २ । त्वमेकोत्तमस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः अचिन्त्यस्या प्रमेयस्य कार्यं तत्त्वार्थं
वित्प्रभो । ३ । सतैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौ जामहात्मभिः प्रत्युवाचार्चं तान्सर्वान्महर्षीन् श्रूयतामिति । ४ । आसी-
दि दन्तमो भूतम प्रज्ञातम लक्षणम् अप्रतर्क्यम विज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः । ५ । ततः स्वयम्भूर्भगवान् व्यक्तो व्यञ्जय

के धर्म को क्रम से ठीक ठीक हम लोगों से कहिये । २ । क्योंकि हे प्रभु अचिन्त्य १ (अर्थात् चिन्ता करने योग्य नहीं) और अप्रमेय अर्थात् इतना है इस के योग्य भी नहीं) और स्वयंभू (अर्थात् आप से भया) ऐसा जो वेद तिस में लिखित जो ज्योतिषोमादि यज्ञ और ब्रह्म ज्ञान उस के अर्थ के जाननहार केवल आप ही हैं । ३ । जब उन महात्माओं ने इस प्रकार से उस महात्मा तेजस्वी से यह प्रश्न पूछा तब श्री मनुजी ने उन सब महर्षियों की पूजा करके कहा कि सुनिये । ४ । यह सब जगत प्रथम प्रकृति में लीन रहा और प्रकृति भी ब्रह्म स्वरूप होकर नाम रूप से रहित थी और प्रत्यक्ष अनुमान शब्द यह तीन प्रमाण हैं इन प्रमाणों से नहीं जाना गया (क्योंकि देख नहीं पड़ता था और लक्षण (अर्थात् चिह्न सो भी न रहा और वेद भी प्रकट न रहा उस समय में) और अपने कार्य में असमर्थ की नाईं रहा । ४ । इस में यह प्रश्न हो सकता है कि ऋषि लोगों ने धर्म की बात पूछी और मनु ने उत्तर दिया कि यह जगत ऐसा रहा सो कैसे थी तो इस का उत्तर यह है कि जगत का कारण ब्रह्म है तिस का कथन धर्म ही है इस बात को मनुजी आगे कहेंगे धृति समादम अस्तेय शौच दंडियनियह धी विद्या सत्य अक्रोध यह दश धर्म का लक्षण है इस में विद्या (अर्थात् आत्म ज्ञान) सो धर्म ही है महा भारत में भी लिखा है कि आत्म ज्ञान और तितित्ता (अर्थात् क्षान्ति) यह दो सब का धर्म है और याज्ञवल्क्य ऋषि ने भी कहा है कि योग करके आत्मा का दर्शन यह तो परम धर्म है व्यास जी ने ब्रह्म सीमांसा में प्रथम सूत्र में कहा है कि ब्रह्म के जानने की इच्छा करना चाहिये दूसरे सूत्र में ब्रह्म का लक्षण कहने के लिये यह कहा कि जिस से जगत की

॥ मनुस्मृति मूल और टीका भाषा ॥

उत्पत्ति पालन नाश है सोई ब्रह्म है इस प्रकार से और भी ऋषि लोगों ने कहा है ग्रंथ बढि जायगा इस लिये बस करते हैं । ५ । इसके उपरान्त अप्रकट अचल सामर्थ्यवाला और तम का नाश करनेहारा परमात्मा भगवान इस महा भूतदि (अर्थात् पृथिवी जल तेज वायु आकाश आदि को प्रकाश करता हुआ) प्रकट भया । ६ । जो परमात्मा इन्द्रियों से परे सूक्ष्म अप्रकट नित्य अचिन्त्य और सब भूतों का आत्मा है सोई आप से आप प्रकट हुआ । ७ । उसके मन में इच्छा भी कि अपने शरीर से अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न किया चाहिये तो उसने पहिले जल का उत्पन्न किया फिर उस जल में बीज डाला । ८ । तब वह बीज सुवर्ण के सदृश और सूर्य के समान अंड के आकार हो गया फिर उस अंड में ब्रह्मा (अर्थात् हिरण्य गर्भ) संपूर्ण सृष्टि के अर्थात् उत्पन्न जो चेतन अचेतन है तिसके पितामह आप से आप उत्पन्न भये । ९ । नारायण शब्द का अर्थ कहते हैं कि जल को नारा कहते हैं कारण इस का यह है कि नर परमात्मा का नाम है और जल परमात्मा का संतति है तो नारा (अर्थात् जल) पूर्व में परमात्मा का गृह था इस लिये परमात्मा को नारायण कहते हैं । १० । जो परमात्मा सब का कारण अप्रकट नित्य कारण कार्य स्वरूप है उसने जिस पुरुष को उत्पन्न किया उसी को संसार में लोग ब्रह्मा कहते हैं । ११ । उस अंड

न्निदम् महा भूदादि वृत्तौ जाः प्रादुरासीत्तमो नुदः । ६ । यो सावतीन्द्रियाह्यस्तृप्सो व्यक्तस्सनातनः सर्व भूतम यो चिन्त्यस्स एव स्वयमुद भौ । ७ । सोभिध्याय शरीरात्वात्सि सृष्टुर्विविधाः प्रजाः अप एव स सर्जादौ ता सुबीजम वा सृजत् । ८ । त दण्डमभवैमं सहस्रांशु समप्रभम तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्व लोक पितामहः । ९ । आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसू नवः ता यदस्यायनं पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः । १० । यत्तत्कारणम व्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते । ११ । तस्मिन्नण्डे स भगवानुपित्वा परिवत्सरम् स्वयमेवात्मनो ध्यानात्त दण्डम करोद्विधा । १२ । ताभ्यां स शकलाभ्याश्च दिवं भूमिं च निर्ममे मध्ये व्यामदिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् । १३ । उद्वर्हात्मनश्चैव मनस्सद सदात्मकम् मनसश्चाप्यहंकारम भिमंतारमीश्वरम् । १४ । महान्त मेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च विषयाणां ग्रहीतृणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च । १५ । तेषां च वय वान्सूक्ष्मान् पस्मामप्यमितौजसाम् सन्नि वेश्यात्म माचासु सर्व भूतानि

में अपने एक बरस तक रहके और परमात्मा का ध्यान करके उस अंड का दो भाग किया । १२ । उन दोनों खंडों में उस जे स्वर्ग और पृथिवी को बनाया फिर इन दोनों के बीच में आकाश आठो दिशा और अचल समुद्र को भी रचा । १३ । फिर ब्रह्मा ने परमात्मा से संकल्प विकल्प रूप मन को उत्पन्न किया और मन को उत्पत्ति के पहिले समर्थ और अभिमान करनेहारा अहंकार को बनाया । १४ । और अहंकार के पूर्व आत्मा का उपकार करनेहारा महत्त्व को (अर्थात् बुद्धि को) और विषयों की (अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध की) ग्रहण करनेहारी पांच ज्ञान इन्द्रियों को और पांच कर्म इन्द्रियों को और तन्मात्रा (अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंधों) को भी बनाया ये सब पदार्थ जो ऊप हैं और जो कहे जायंगे सो सब त्रिगुण आत्मक हैं (अर्थात् सती गुण रजो गुण तमो गुण से युक्त हैं) । १५ । और उन अमित शक्तिमानों के (अर्थात् अहंकार तन्मात्रा आदि के) सूक्ष्म अवयवों को अपने अपने विकार में (अर्थात् तन्मात्रा का विकार पञ्च महा भूत अहंकार का विकार इन्द्रिय) मिला करके सब भूतों को (अर्थात् मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष आदि को) परमात्मा ने बनाया । १६ । उसके (अर्थात्) प्रकृति सहित ब्रह्म के शरीर का वह सूक्ष्म अवयव (अर्थात् तन्मात्रा और अहंकार) ये सब कथित और वक्ष्यमाण (अर्थात् जो कहे जायंगे)

और इन्द्रियों इन्हीं के उत्पन्न करनेवाले हैं इसी कारण से पण्डित लोग ब्रह्म के स्वभाव को शरीर कहते हैं ऐसा लिखा है और जो कहे गए हैं कि जिस में ये छ (अर्थात् तन्मात्रा और अहङ्कार रहे) उसको शरीर कहते हैं। १७। फिर उस नाश रहित और सब भूत को करनहार ब्रह्म से अपने अपने कार्यों के साथ आकाश आदि महा भूत और सूक्ष्म अवयवों के साथ मन उत्पन्न भया आकाश का काम अवकाश देना वायु का गति तेज का पाक जल का पिण्डोत्पन्न और पृथिवी का धारण और मन का कार्य शुभ अशुभ की इच्छा। १८। इसके उपरान्त अविनाशी ब्रह्म ने इन सात बड़े पराक्रम रखनेवाले महत्तत्त्व अहङ्कार पञ्च तन्मात्राओं की सूक्ष्म भाग से इस विनाशी जगत को बनाया। १९। इन महा भूतों के मध्य में पूर्व पूर्व का गुण पर पर में जाता है जिसकी जाँची संख्या है तिस में तितला गुण रहता है जैसे आकाश पहिला है उसका एक शब्द ही गुण है और वायु दूसरा है उस में पूर्व का (अर्थात् आकाश का शब्द गुण) और निज का स्पर्श गुण है। इसी क्रम से अग्नि में तीन गुण (अर्थात् शब्द स्पर्श पूर्व भूतों का और अपना रूप है और जल में रस गुण अपना और पूर्वी का तीन गुण पृथिवी में गंध अपना और पूर्वी का चार गुण। २०। फिर परमात्मा ने सब जीवों का नाम और कर्म भिन्न भिन्न जिसका जैसा

निर्ममे। १६। यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्या श्रयन्ति षट् तस्माच्छरीर मित्याहुस्तस्यमूर्तिस्मनीषिणः। १७। तदावि-
शन्ति भूतानि महान्ति सहकर्मभिः मनश्चावयवैः सूक्ष्मैस्सर्व भूतकदव्ययम्। १८। तेषामिदन्तु सप्तानां पुरुषाणांम
हैजसाम् सूक्ष्माभ्योमूर्ति माचाभ्यः सम्भवत्पव्ययाद्ययम्। १९। आद्याद्यस्य गुणन्वेपामवाप्नोति परः परः यो यो यावति-
यश्चैव ससतावद्गुणः स्मृतः। २०। सर्वेषान्तु सनामानि कर्माणि च पृथक्पृक् वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्चनिर्ममे। २१।
कर्मात्मनाश्च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनांप्रभुः साध्यानां चगणं सूक्ष्मंयज्ञं चैवसनातनम्। २२। अग्निवायुरवि भ्यस्तुचय
स्वप्नसनातनम् दुदोहयज्ञसिध्यर्थं सृग्यजुः सामलक्षणम्। २३। कालंकाल विभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा सरित
स्तागरान् शैलान्समानि विपमाणि च। २४। तपोवांच रतिश्चैव कामश्च क्रोधमेव च सृष्टिं स सर्जचैवेमां सृष्टुमिच्छ-
न्निमाः प्रजाः। २५। कर्मणाश्च विवेकार्थं धर्मा धर्मो व्यवचयत् इन्दैरयोजयच्चेमाः सुख दुःखादिभिः प्रजाः। २६।

सृष्टि के पूर्व में रहा वैसा ही वेद शब्द से जानके पहिले बनाया जैसे गो जाति का गो नाम रक्ता और अश्व जाति का अश्व ब्राह्मण का कर्म अध्ययन आदि ठहराया और क्षत्रिय का कर्म प्रजा रक्षण आदि। २१। फिर प्रभु ने (अर्थात् ब्रह्मा ने) देवताओं को और जड़ पदार्थों को और सूक्ष्म नित्य चज्ञ को उत्पन्न किया। २२। तब अग्नि वायु सूर्य से क्रम करके ब्रह्मा ने नित्य तीनों बंद को अर्थात् ऋग् यजु साम को निकाला यज्ञ मिद्धि के लिये। २३। तिस पीछे काल और काल के विभाग (अर्थात् वर्ष मास पक्षदिन आदि) और अश्विनो आदि नक्षत्र सूर्य आदि ग्रह नदी समुद्र पर्वत रस (अर्थात् क्रोधा स्यान्) विषम (अर्थात् टेढ़ा स्यान्) इन सब को बनाया। २४। इन के बनाने के पीछे तप (अर्थात् प्राजापत्य आदि) बाणी रति (अर्थात् चित्त का संतोष) इच्छा काम क्रोध इन सब को और जो कहे जायेंगे। देव आदिक प्रजा उनकी बनाने की इच्छा करके बनाया। २५। कर्मों के प्रकार के जानने के लिये (अर्थात् यज्ञ आदि धर्म ब्रह्मवध आदि अधर्म) अलग करके इन के सुख दुःख रूप फल को प्रजाओं के पीछे लगा दिया आदि शब्द करके काम क्रोध मोह मादृक्ष पिशाचा ये सब जो हैं इन को भी प्रजाओं के पीछे लगा दिया। २६। पाँचो महा भूतों की विनाश होमेवाप्नो सूक्ष्म मात्रा जो शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन से संपूर्ण जगत क्रम से होता

है । २७ । ब्रह्मा ने जिस जीव को पूर्वकल्प में जिस कर्म में (अर्थात् जिस स्वभाव में) लगाया रहा वही जीव फिर उत्पत्ति समय में उसी कर्म में आप से आप लगा । २८ । हिंसा अहिंसा कोमलता कठोरता धर्म अधर्म सत्य झूठ इन में से पूर्वकल्प में जिसका जो कर्म ब्रह्मा ने बनाया था वही कर्म आप से आप उस जीव को प्राप्त भया जैसे सिंह हाथी को मारता है और मृग किसी को नहीं मारता है ब्राह्मण का कोमल स्वभाव और शत्रु का क्रूर स्वभाव धर्म जैसे ब्रह्मचारी को गुरु सेवा अधर्म जैसे ब्रह्मचारी को मांस मेषुन की सेवा ब्रह्मदेवता का सत्य कथन और प्रायः मनुष्यों का असत्य कथन है । २९ । जैसे बसन्त आदि ऋतु अपने अपने कार्य के ऋतु में (अर्थात् समय में) अपने अपने चिह्नों को (अर्थात् आम का धारना गरमी का पड़ना घटा का उठना आदि) आप से आप पाते हैं तैसे ही जीव हिंसाआदि कर्मों को पाते हैं । ३० । भू लोक आदि के बढ़ने के लिये मुख वाङ्मय चरण इन से कम करके ब्राह्मण शत्रु वैश्य शूद्र को बनाया । ३१ । फिर ब्रह्मा अपनी शरीर का दो भाग करके

अराव्यो माचा विनाशिन्यो दशार्हानां तुयाः स्मृताः ताभिस्सार्द्धमिदं सर्वं संभवत्यनु पूर्वशः । २७ । यन्तुकर्मणि यस्मिन्स न्ययुक्तं प्रथमं प्रभुः सतदेवस्वयं भेजेत्सृज्यमानः पुनः पुनः । २८ । हिंसाहिंसे मृदुकूरे धर्माधर्मावृत्तान्ते यदस्यसोद धात्सर्गेतत्तस्य स्वयमाविशत् । २९ । यथर्तु लिंगान्पृथक् स्वयमेवर्तु पर्यये स्वानिस्वान्पभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः । ३० । लोकानान्तु विद्वद्ध्यर्थं मुखवाह्यं रुपादतः ब्राह्मणं शत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत् । ३१ । द्विधा कृत्वात्मनो देहं मर्द्देन पुरुषो भवत् अर्द्धेन नारीतस्यां स विराजम सृजत्प्रभुः । ३२ । तपस्तप्त्वा सृजद्यन्तु स स्वयं पुरुषो विराट् तंमांवितास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः । ३३ । अहं प्रजास्मिन्सृष्टुस्तुत पस्तप्त्वासुदुश्चरम पतोन्मजानाम सृजं महर्षीं नादि तोदश । ३४ । मरीचिमव्यङ्गि रसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुन्मरदमेव च । ३५ । देवान्देव निकायांश्च महर्षीं- खामितौ जसः । ३६ । यक्षरथः पिशाचांश्च गंधर्वाप्सरसो सुरान् नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितृणाञ्च पृथग्गणान् । ३७ । विद्युतो शनिव मेघांश्च रोहितेन्द्र धनूंषि च उक्कानिर्घात केतूंश्च ज्योतींश्चैव चानि च । ३८ । किन्नरान्मान राक्षसांश्च

आधे से पुरुष बना और आधे से स्त्री बनी इसके पीछे उस समय ने स्त्री से संगम करके विराट् पुरुष को उत्पन्न किया । ३२ । मनु जी कहते हैं कि हे महर्षि लोगो उस विराट् पुरुष ने तप करके जिस को बनाया सो मैं ही हूँ यह बात आप लोग जानिये और मैं सब का उत्पन्न करनेवाला हूँ । ३३ । फिर मैं ने प्रजा को उत्पत्ति की दृष्टि करते चार तपस्या करके पहिले दश बड़े ऋषियों को जो प्रजा के पति हैं तिनको उत्पन्न किया । ३४ । उक्तों के नाम ये हैं मरीचि अत्रि अंगिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु प्रचेता वशिष्ठ भृगु नारद १० । ३५ । इन ऋषियों ने मात बड़े तेजस्वी मनु को और देवताओं को और देवताओं के मन्त्रों को (अर्थात् स्त्रियों को) और महा प्रतापी बड़े बड़े ऋषियों को उत्पन्न किया मनु शब्द इस स्थान में अधिकार वाची है चौदहो मन्वन्तर के बीच में जिस मनुका सृष्टि के आदि में अधिकार है उस मन्वन्तर में वही मनु कहाता है । ३६ । यक्ष (अर्थात् वैश्रवण आदि) राक्षस पिशाच गंधर्वा अप्सरा असुर नाग वासुकी आदि सर्प गहड़ आदि और पितरों के समूह को बनाया । ३७ । इस के पीछे विजुलो वज्र मेघ रोहित और इंद्र धनुष उक्का (अर्थात् लुक का टूटना) केतु और नाग प्रकार के तारगण (अर्थात् भुव अगस्त्य आदि को) बनाया । ३८ । किन्नर (अर्थात् घोड़ मूँह) वानर मत्स्य विविध प्रकार के पक्षी

॥ मनुस्मृति मूल और टीका भाषा ॥

५

पशु मृग मनुष्य और दूदहंता सांप को बनाया ॥ ३८ ॥ फिर बड़े कोड़े कोटे कोड़े शलभ ढील मांकी उंडुम उंडुम ममा नाना प्रकार के वृक्ष इन सब को बनाया ॥ ४० ॥ मनु जी कहते हैं कि इस प्रकार से बड़े २ ऋषियों ने अपनी २ तपस्व के बल से हमारी आज्ञा पाकर जीवों के कर्मानुसार स्थावर जंगम को उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥ जिन जीवों का जैसा कर्म इस संसार में पूर्व आचार्यों ने कहा है तिन जीवों का तैसा ही कर्म आप लोगों से हम कहेंगे और जन्म मरण का क्रम भी कहेंगे ॥ ४२ ॥ पशु मृग व्याल (अर्थात् दूनों और दांतवाले सर्प) राक्षस पिशाच मनुष्य ये सब जरायुज हैं (अर्थात् गर्भ का टांकनेवाला जो चर्म तिस में ये सब रहते हैं पीछे उस से निकलते हैं) ॥ ४३ ॥ पक्षी सर्प नाक मत्स्य कवचा ये सब अण्डज हैं (अर्थात् अण्डे से उत्पन्न होते हैं) और जो इस प्रकार के स्थल से अथवा जल से उत्पन्न हों सो भी अण्डज कहाते हैं ॥ ४४ ॥ उंडुम ममा ढील मांकी उंडुम ये सब गरमी से होते हैं इस लिये स्वेदज कहाते हैं और अन्य जो ऐसे ऊष्ण से (अर्थात् गरमी से) होते हैं सो भी स्वेदज कहाते हैं स्वेद (अर्थात् पसीना) तिस से भए हैं ॥ ४५ ॥ स्थावर जितने हैं सो सब उद्भिज्ज

न्यविविधांश्चविहंगमान् पशून्मृगान्मनुष्यांश्चव्यालांश्चोभयतोदतः । ३८ । कृमिकीटपतंगांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् सर्वच्चदं शमशकं स्थावरच्चपृथग्विधम् । ४० । एवमेतैरिदं सर्वमन्त्रियोगान्महात्मभिः यथाकर्मतपोयोगात्सृष्टंस्थावरजङ्गमम् । ४१ । येषान्त्यादृशङ्कर्म भूतानामिह कीर्तितम् तत्तथावो भिधास्यामिकमयोगच्चजन्मनि । ४२ । पशवश्चमृगाश्चैवव्या लाश्चोभयतोदतः रक्षांसिचपिशाचाश्चमनुष्याश्चजरायुजः । ४३ । अण्डजाः पक्षिणः सर्पानक्रामत्याश्चकच्छपाः यानिचैवं प्रकाराणिस्थलजान्योदकानिच । ४४ । स्वेदजंदंशमशकंयूकामक्षिकमत्कुणम् ऊष्णयोपजायंतेश्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् । ४५ । उद्भिज्जाः स्थावरास्सर्वेबीजकाण्डप्ररोहिणः आपथ्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः । ४६ । अपुष्पाः फलवंतो येतेवनस्पतयः स्मृताः पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः । ४७ । गुच्छगुल्मन्तुविविधंतथैववृणजातयः बीजकाण्डरूपाण्ये वप्रतानावक्ष्यण्वच । ४८ । तमसावहुरूपेणवेष्टिताः कर्महेतुना अन्तस्संज्ञाभवन्त्येतेसुखदुःखसमन्विताः । ४९ । एतदन्तास्तुगत योब्रह्माद्याः समुदाहृताः घोरेस्मिन्भूतसंसारे नित्यंसततयायिनि । ५० । एवंसर्वसृष्ट्वेदंमाञ्चाचिन्त्यपराक्रमः आत्मन्यं

कहाते हैं (अर्थात् पृथ्वी को फोड़ के निकलते हैं इस लिये उद्भिज्ज कहाते हैं) सो दो प्रकार के हैं कोई बीज से उत्पन्न होते हैं कोई डार लगाने से होते हैं चत्र धान आदि ओषधि कहाते हैं इन सबों का फल जब पका तब नाश को पाते हैं ये सब वृक्ष पुष्प फल सहित होते हैं ॥ ४६ ॥ जिन में फूल नहीं लगता केवल फल ही लगता है उनको वनस्पति कहते हैं जिन में फूल फल दोनों लगते हैं उनको वृक्ष कहते हैं ॥ ४७ ॥ जिन में मूल से लता ममूह उत्पन्न होती है और बड़ी शाखा नहीं होती उनको गुच्छ कहते हैं जैसे मालती आदि जिन में मूल एक है और अंकुर अनेक एकठे उत्पन्न होते हैं उनको गुल्म बोलते हैं जैसे उख मरहरी और ये अनेक प्रकार के होते हैं और वृण जाति कोई बीज से होते हैं कोई डार लगाने से होते हैं जैसे उलप आदि (अर्थात्) प्रताना जिन में सूत रहता है जैसा लौकी कांड़ड़ा आदि और बल्ली (अर्थात् गुडुच आदि ॥ ४८ ॥ इन सब में तमोगुण अधिक रहता है इस कारण से भीतर ही सुख दुःख का ज्ञान रहता है ॥ ४९ ॥ इस बिनाशी घोर संसार में ब्रह्मा से लेकर बल्ली पर्यंत जीवों की गति है सो आप लोगों से हम ने कहा ॥ ५० ॥ इस प्रकार से अचिन्त्य पराक्रमी ब्रह्माने इसको और

मुष्मको बना के सृष्टि काल को प्रलयकाल करके नाश करत हुए लीन भये ॥ ५१ ॥ जब ब्रह्मा जागते रहते हैं तब यह जगत देख पड़ता रहता है और जब वह शीत पुरुष मो जाता है तब सब जगत प्रलय के प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ जब ब्रह्मा स्वस्थ होके मोते हैं तब कर्म से प्राप्त है देह जिस का ऐसा जो जीव और मन दोनों अपने कर्मों से (अर्थात् देह धारण से जीव और संकल्प विकल्प से मन निवृत्त होते हैं) (अर्थात् ब्रह्मा की यह नित्य प्रलय कहाती है) ॥ ५३ ॥ जब एक ठे सब जीव उस महात्मा में लीन हो जाते हैं तब यह सब भूतों का आत्मा मुख पूर्वक आनन्द पाके मोता है (अर्थात् तब महा प्रलय होती है) ॥ ५४ ॥ अब मरण का प्रकार लिखते हैं इन्द्रियों के साथ यह जीव ब्रह्मकाल पर्यंत अज्ञानता में पड़कर रहता है और जब अपना कार्य (अर्थात् श्वास प्रश्वास नहीं करता) त पूर्व देह से निकलकर दूसरी देह में जाता है ॥ ५५ ॥ और जब कि वही जीव भूत इन्द्रिय मन बुद्धि वासना कर्म वायु अज्ञान इन आठ पुरियों से युक्त होकर स्थावर बीज में प्रवेश करता है तब वृक्ष आदि रूप शरीर का धारण करता है और जब जंगम बीज में प्रवेश करता है तब मानुष आदि शरीर का धारण

तर्द्धेभूयः कालं कालेन पीडयन् । ५१ । यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति । ५२ । तस्मिन् स्वपितुः स्वस्थे कस्मात्मानः शरीरिणः स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमुच्छति । ५३ । युगपत्पुप्रलीयन्ते यदा तस्मिन् महात्मनि तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निवृत्तः । ५४ । तमोयन्तु समाश्रित्य चिरन्तिष्ठति सेन्द्रियः न च स्वं कुरुते कर्म तदा त्क्रामति मूर्तिः । ५५ । यदा णुमात्रिको भूत्वा बीजस्था णुचरि णुच समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति । ५६ । एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरमसंजीवयति चाजसं प्रमापयति चाव्ययः । ५७ । इदं शास्वन्तु हत्वा सौमामेव स्वयमादितः विधिवद्वाह्यामासमरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् । ५८ । एतद्द्वीयं भृगुशशांसं आवयिष्यत्यशेषतः एतद्विमत्तोधिजगे सर्वमेपोखिलं मुनिः । ५९ । ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः तान ब्रवीदपीग्सर्वान् प्रीतात्मा श्रूयतामिति । ६० । स्वायम्भुवस्यास्य मनोः पदं श्यामनवोपरे सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वामहात्मानो महौजसः । ६१ । स्वरोचिपश्चौत्तमिथ तामसो रैवतस्तथा चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्पुत्र एव च । ६२ । स्वायम्भुवाघासमैते मनवो भूरितेजसः स्वेस्वेन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्वराचरम् । ६३ । निमेषादशचाष्टौ च काष्ठा चिंशत्तुताः कला । चिंशत्कलामुहूर्तः स्याद्दहोरात्रन्तु तावतः । ६४ ।

करता है ॥ ५६ ॥ इसी प्रकार से वह अविनाशी ब्रह्मा जागने से और मोले से इस संपूर्ण चराचर को बारं बार जिलाता है और मारता है ॥ ५७ ॥ इस शास्त्र को बनाकर ब्रह्मा ने प्रथम हम को विधि पूर्वक बताया और हम ने मरोचि आदि मुनियों को मिखलाया ॥ ५८ ॥ और अब इस संपूर्ण शास्त्र को भृगु मुनि आप लोगों को सुनावेंगे क्योंकि इस ने हम से इस शास्त्र का पड़ा है ॥ ५९ ॥ जब इस प्रकार से मनु ने भृगु से कहा तब भृगु प्रसन्न होकर सब ऋषियों से कहा कि सुनिए ॥ ६० ॥ ब्रह्मा के पुत्र जो मनु तिसके वंश में क मनु और भी हैं उन महा तेजस्वी और महा द्वाओं ने अपने २ अधिकार में अपनी २ प्रजा को उत्पन्न किया ॥ ६१ ॥ तिनके नाम ये हैं स्वरोचिपश्चौत्तमि तामस रैवत चाक्षुष वैवस्वत ॥ ६२ ॥ स्वायम्भुव मनु आदि ने ये माते मनु जो बड़े तेजस्वी हैं अपने २ अधिकार में संपूर्ण चराचर को उत्पन्न करके पालन करते भये ॥ ६३ ॥ अब कथितमन्त्र में सृष्टि और प्रलय आदि के काल के परिमाण के जानने के लिए कहते हैं अठारह पल को एक काष्ठा होता है और तीस काष्ठा को एक कला और तीस कला का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त को एक अहोरात्र (अर्थात् एक दिन रात ॥ ६४ ॥ मनुष्य

और देवता के रात्रिदिन का विभाग स्मृत्युक्त है (अर्थात् स्मृत्युक्त से मनुष्य और देवता के रात्रिदिन के विभाग का ज्ञान होता है) सब जीवों के सोने के लिए रात्रि बनी है और व्यवहार के लिए दिन बना है ॥ ६५ ॥ मनुष्य के एक मास के बराबर पितरों का अहोरात्र होता है उस में कृष्ण पक्ष काम करने के लिए दिन है शुक्ल पक्ष सोने के लिये रात्रि है ॥ ६६ ॥ मनुष्य के एक वरस के बराबर देवता का एक रात्रिदिन होता है जब तक स्मृत्युक्त उत्तरायण रहें तब तक दिन है और जब तक दक्षिणायन रहें तब तक रात्रि है (अर्थात् मकर की संक्रांति से लेकर मेष की संक्रांति तक उत्तरायण कहा जाता है और कर्क की संक्रांति से लेकर धन की संक्रांति तक दक्षिणायन कहा जाता है) ॥ ६७ ॥ ब्रह्मा के रात्रिदिन का जो प्रमाण है सो और प्रत्येक दुर्गों का जो प्रमाण है सो संक्षेप से और क्रम से जानो ॥ ६८ ॥ देवता के चार हजार वरस का मत युग होता है युग के पूर्व देवता का चार सौ ४०० वरस संध्या कहा जाती है और युग के पर उतना ही संध्या कहा जाता है ॥ ६९ ॥ और तीन युगों का (अर्थात् त्रेता द्वापर कलियुग का) उन के संध्या और संध्यांश का परिमाण क्रम से एक सुहस्र और एक शत के घटाने से होता

अहोरात्रे विभजते सूर्या मानुषदैविके रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः । ६५ । पित्रोरात्र्यहनीमासः प्रविभागस्तु पक्षयोः कर्म चेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी । ६६ । दैवेरात्र्यहनीवर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः अहस्तचोद गयनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् । ६७ । ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य त्वत्प्रमाणं समासतः एकैकशो युगानां क्रमशस्तन्निबोधत । ६८ । चत्वार्युगाहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः । ६९ । इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च । ७० । यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् एतद्वा दशसाहस्रान् देवानां युगमुच्यते । ७१ । दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयन्तावती रात्रिरेव च । ७२ । तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मणं पुण्यमहर्बिदुः रात्रिश्च तावतीमेव ते होराच विदो जनाः । ७३ । तस्य सोहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते प्रतिबुध्य सृजति मनः सदसदात्मकम् । ७४ । मनस्मृष्टिं विकुरुते चाद्यमानं सिसृक्षया आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः । ७५ । आकाशात्तु विकुर्वणात्सर्वगंधवहः शुचिः बलवान् जायते वायुः सवैस्पर्शगुणो मतः । ७६ । वायोरपि वि

है (अर्थात् २००० वरस का त्रेता युग और २०० वरस संध्या और २०० संध्यांश और २००० वरस का द्वापर युग २०० वरस संध्या २०० वरस संध्यांश और १००० वरस का कलियुग १०० वरस संध्या १०० वरस संध्यांश) ॥ ७० ॥ यह जो चारों युग का परिमाण कहा उसके बारह हजार गुणा का देवता का युग होता है । ७१ ॥ और देवता के हजार युग के बराबर एक दिन ब्रह्मा का होता है और उतनही रात्रि होती है ॥ ७२ ॥ ब्रह्मा के एक हजार युग के बराबर परब्रह्मा का एक दिन होता है सो दिन बड़ा पवित्र है और रात्रि भी उतनही है इस रात्रिदिन के जाननेवालों ने यह कहा है ॥ ७३ ॥ वह ब्रह्मा अपने दिन में काम करते हैं और रात्रि में सोते हैं जब जागते हैं तब संकल्प विकल्प रूप जो मन उसको भू आदि तीन लोक के उत्पत्ति के लिए आज्ञा देते हैं ॥ ७४ ॥ मन ने ब्रह्मा की आज्ञा पाके आप से आप आकाश को बनाया उसका गुण शब्द है ॥ ७५ ॥ आकाश से सर्व गंध का पञ्चानेवाला पवित्र बलवान् वायु उत्पन्न भया उसका गुण स्पर्श है ॥ ७६ ॥ वायु से अंधकार के नाश करनेहारा और प्रकाश करनेहारा ज्योति उत्पन्न भया उसका गुण रूप है ॥ ७७ ॥ और ज्योति से जल उत्पन्न भया जिसका गुण रस है और

जल से पृथिवी उत्पन्न हुई जिसका गुण गंध है महा प्रलय के अन्त में (अर्थात् सृष्टि के आरंभ में प्रथम से उत्पत्ति का क्रम यही है) ॥ ७८ ॥

जो देवता का युग है बारह हजार बरस उसका एकद्वन्द्व गुण एक मन्वन्तर कहा जाता है (अर्थात् एक मनु का अधिकार रहता है) ॥ ७९ ॥ असंख्य मन्वन्तर और उत्पत्ति संहार इन सब को खेलवाड़ के सदृश बिना परिश्रम ब्रह्मा बारंबार करते हैं ॥ ८० ॥ संपूर्ण धर्म चारों चरण से सत्ययुग में रहा और सत्य बोलना रहा अधर्म से कोई उपाय मनुष्य लोग नहीं करते थे ॥ ८१ ॥ चेता आदि तीनों युगों में लोग अधर्म में (अर्थात् चोरी झूठ कपट में) उपाय करने लगे इस लिये धर्म एक एक चरण घट गया (अर्थात् चेता में तीन चरण का धर्म रहा दापर में दो चरण का कलि में एक चरण का रहा) ॥ ८२ ॥ सत्य युग में सब जीव गंग से रहित रहे और जो मन में संकल्प करते थे सो सब होता था चार सौ बरस जोते थे और चेता आदि तीनों युगों में आयुष्य जीवों की एक एक चरण घट जाती है (अर्थात्

कुर्वाणाहिरोचिष्णुतमोनुद्म ज्योतिस्त्यज्यते भास्वत्तद्रूपगुण मुच्यते । ७७ । ज्योतिषश्च विक्रवाणादापोरसगुणाः स्मृताः
अद्भ्योगंधगुणा भूमिरित्येषा सृष्टि रादितः । ७८ ।

यत्प्राग्द्वादशसाहसमुदितंदैविकंयुगम् तदेकसप्ततिगुणंमन्वन्तरमिहोच्यते । ७९ । मन्वन्तराण्यसंख्यानिसृष्टिः संहारश्च
क्रीडन्निवैतत्कुरुतेपरमेष्ठीपुनः पुनः । ८० । चतुष्यात्संकलोधर्मः सत्यंचैवकृतयुगे नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान्प्रतिवर्तते । ८१ ।
इतरेष्वागमाद्भर्मः पादशस्त्वरोपितः चारिकान्यतमायाभिर्धर्मश्चापैतिपादशः । ८२ । अरोगाः सर्वसिद्धार्याश्चतुर्वर्षशतायुषः
कृते चेतादिषुत्थेषामायुर्हसतिपादशः । ८३ । वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिष्यैव कर्मणाम फलंत्पनुयुगंलोके प्रभावश्चशरीरिणाम्
८४ अन्येकृतयुगेधर्मास्त्रेतायांद्वापरेपरे अन्येकलियुगे मृणांयुगह्रासानुरूपतः । ८५ । तपः परं कृतयुगेचेतायां ज्ञानमुच्यते दापरे
यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौयुगे । ८६ । सर्वस्यास्यतुसर्गस्य गुप्तार्थसमहायुतिः मुखवाङ्मूर्ध्निपञ्चानां पृथक्कर्माण्यकल्ययत् । ८७ । अध्या-
पनमध्ययनंयजनंयाजनन्तथा दानंप्रतिग्रहश्चैवब्राह्मणानामकल्ययत् । ८८ । प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच विपयेष्ण-
प्रसक्तिश्चक्षत्रियस्यसमासतः । ८९ । पशूनांरक्षणंदानमिज्याध्ययनमेवच वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेवच । ९० । एकमेवं-
तुशूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत् एतेषामेववर्णानांशुश्रूषामनसूयया । ९१ । ऊर्ध्वनाभेर्मध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः ॥ तस्मान्केध्यतम

चेता में तीन सौ बरस दापर में दो सौ बरस कलि में एक सौ बरस का जीना है) ॥ ८३ ॥ वेद में मनुष्यों का जो आयुष्य कहा है और कामना के लिये जो प्रार्थना है मनुष्यों की तिसका फल और मनुष्यों का प्रभाव (अर्थात् शाप और आशीर्वाद) ये सब जैसा युग होता है तैसा ही फलते हैं ॥ ८४ ॥ युग के घटने के अनुसार मनुष्यों का धर्म सब युगों में भिन्न रहता है (अर्थात् सत्य युग में और चेता में और दापर में और कलि में और है) ॥ ८५ ॥ सत्य युग में केवल तप प्रधान है चेता में ज्ञान दापर में यज्ञ कलि में दान प्रधान है ॥ ८६ ॥ इस संपूर्ण जगत की रक्षा के लिये उस तेजस्वी ब्रह्मा ने मुख वांछ जंघा चरण से क्रम करके उत्पन्न जो चारों वर्ण तिन्हा के क्रम को भिन्न १ स्थापन किया । ८७ । पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना दान लेना ये छ कर्म ब्राह्मण के लिये स्थापन किया । ८८ । प्रजा का रक्षण करना दान देना यज्ञ करना पढ़ना और संसार के भोग बिलास में चित्त को न लगाना ये पांच कर्म क्षत्रिय

के लिये संक्षेप से स्थापन किया। ८९। पशुओं की रक्षा दान देना यज्ञ करना पढ़ना बैपार करना व्याज लेना खेती करना ये सात कर्म वैश्यों के लिये ठहराया। ९०। गृह्य के लिये एक ही कर्म प्रभु ने ठहराया कि निष्कल होकर इन तीनों वर्णों की सेवा करना। ९१। पुरुष के नाभी के ऊपर के सब स्थान मुख छोड़ के पवित्र हैं और इन सब से मुख तो और भी अधिक पवित्र है ये बातें ब्रह्मा ने कहा हैं। ९२। इस सब सृष्टि में धर्म करके ब्राह्मण सब से उत्तम है इस लिये कि अति उत्तम अंग से उत्पन्न है और सब से श्रेष्ठ है और वेद को धारण करता है। ९३। ब्रह्मा ने प्रथम उसके तप के बल से अपने मुख से उत्पन्न किया इस लिये कि संपूर्ण सृष्टि की रक्षा करे और देवता पितरों को मंत्र के बल से हव्य और कव्य (अर्थात् देवता के भाग और पितरों के भाग) को पहुँचावे। ९४। उस ब्राह्मण से बढके कौन है कि जिस के मुख से देवता लोग हव्य खाते हैं और पितर लोग कव्य खाते हैं। ९५। स्यावर जंगम जीव के मध्य में कीट आदि श्रेष्ठ हैं तिन में पशु आदि श्रेष्ठ हैं तिन में मनुष्य श्रेष्ठ हैं तिन में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ९६। ब्राह्मणों

स्वस्यमुखमुक्तस्वयंभुवा। ९२। उत्तमाङ्गोद्भवाज्यैश्चाद्ब्रह्मणश्चैव धारणात् सर्वस्यैवास्य सर्गायधर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः। ९३। तंहि-
स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितो ऽसृजत् हव्यकव्याभिवाह्यायसर्वस्यास्यचगुप्तये। ९४। यस्यास्येनसदाश्रंतिहव्यानि चिदि-
वैकसः कव्यानिचैवपितरः किंभूतमधिकन्ततः। ९५। भूतानांप्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनांवुद्धिजीविनः बुद्धिमत्सुनरः श्रेष्ठानरेपु
ब्राह्मणाः स्मृताः। ९६। ब्राह्मणेषुचविद्वांसो विद्वत्सुकृतबुद्धयः कृतबुद्धिपुक्तरारः कर्तृपुब्रह्मवेदिनुः। ९७। उत्पत्तिरेवविप्रम्यमूर्तिर्ध-
र्मस्यशाश्वतो सहिधर्मायमुत्पन्नो ब्रह्मभूयायकल्पते। ९८। ब्राह्मणो जायमानोहि पृथिव्यामधिजायते ईश्वरः सर्वभूतानां
धर्मकोशस्यगुप्तये। ९९। सर्वस्वंब्राह्मणस्येदंयत्किंचिज्जगतीगतम् श्रेष्ठेनाभिजनेनेदंसर्वैर्ब्राह्मणोर्हति। १००॥ * * * ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्तेस्वम्बस्ते स्वन्ददाति च आन्तशस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जन्तेहीतरेजनाः। १०१। तस्य कर्मविवे-
कार्यशेषाणामनुपूर्वशः स्वायम्भवोमनुर्हीमानिदंशास्त्रमकल्पयत्। १०२। विदुषाब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः शिष्येभ्यश्च

के मध्य में विद्वान् (अर्थात् वेद शास्त्र के पढ़नेवाले) श्रेष्ठ हैं तिन में शास्त्र कथित कर्म के करने में बुद्धि जिस की है सो श्रेष्ठ है तिन में शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले श्रेष्ठ हैं तिन में ब्रह्म ज्ञानी श्रेष्ठ है। ९७। ब्राह्मण की उत्पत्ति जो है सो धर्म की नित्य मूर्ति है ब्राह्मण धर्म करने के लिये उत्पन्न है इस लिये मोक्ष पाने के योग्य होता है। ९८। ब्राह्मण जब पृथिवी में उत्पन्न भया तब सब भूत के आत्मा ईश्वर धर्म रूप भंडार के रक्षा के लिये ब्राह्मण रूप होकर उत्पन्न भये। ९९। जो कुछ कि वस्तु संसार में है सो सब मानो ब्राह्मणों के निज वस्तु के सदृश हैं क्योंकि ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न है और सब से श्रेष्ठ है इस लिये सब वस्तु का स्वामी ब्राह्मण होने सकता है यह ब्राह्मणों की प्रशंसा मात्र है क्योंकि मनु जी ब्राह्मणों को भी चोरी के लिये दंड आगे कहेंगे। १००। ब्राह्मण अपनी ही वस्तु को भोजन करता है पहिरता है देता है और ब्राह्मण की दया से चंचिय आदि भोग करते हैं। १०१। उस ब्राह्मण के कर्माँ के और चंचिय आदि के कर्माँ के जानने के लिये स्वयंभू के पुत्र बड़े बुद्धिमान मनु जी ने इस शास्त्र को बनाया। १०२। पंडित जो ब्राह्मण हैं सो इस शास्त्र को बहुत यत्न से पढ़ें शिष्यों को सुंदर प्रकार से पढ़ावें और चंचिय आदि पढ़ें परंतु पढ़ावें न। १०३।

इस शास्त्र को जो ब्राह्मण पढ़ता है और व्रत को करता है सो मन बाणी देह से जायमान जो कर्म दोष उस से लिप्त नहीं होता । १०४ । और वह ब्राह्मण पापी मनुष्य से नष्ट जो पंथति है उसको पवित्र करता है और अपने मात पुत्रका ऊपर के और उतना ही नीचे के पवित्र करता है और संपूर्ण पृथिवी को अकेला ही धारण करमकता है । १०५ । यह शास्त्र कल्याण का धर है और अष्ट है बुद्धि बढ़ानेवाला है यश और आयुष्य इन दोनों का हित है और मोक्षका उपाय है । १०६ । इस शास्त्र में संपूर्ण धर्म और कर्मों के गुण दोष आचार इन सब को कहा है । १०७ । वेद से कथित और स्मृति से (अर्थात् धर्म शास्त्र से) कथित जो आचार है सो परम धर्म है इस लिये जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपने हित की दृष्टि चाहें सो इस शास्त्र में सर्व काल युक्त रहे । १०८ । आचार रहित जो ब्राह्मण सो वेद के फल को भोग नहीं कर सकता आचार सहित हो तो संपूर्ण वेद के फल को भोग कर सकता है

प्रवक्तव्यं सम्यङ्गान्धेन केनचित् । १०३ । इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते । १०४ । पुनातिपङ्क्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् पृथिवीमपि चैवेमांस्तस्मैकोपिसोर्हति । १०५ । इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् इदं यशस्यमायुष्यमिदं निः श्रेयसंपरम् । १०६ । अस्मिन् धर्माः खिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ॥ चतुर्णामपिवर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥ १०७ ॥ आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥ १०८ ॥ आचारादिच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ॥ आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्यभवेत् ॥ १०९ ॥ एवमाचारतो हृष्टा धर्मस्य मुनयोगतिम् ॥ सर्वस्य तपसोमूलमाचारश्च गृहः परम् ॥ ११० ॥ जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च व्रतचर्योपचारश्च स्नानस्य च परम्विधिम् । १११ । दाराधिगमनश्चैव विवाहानाञ्च लक्षणम् महायज्ञविधानं च आहुकल्पश्च शाश्वतः । ११२ । वृत्तीनां लक्षणञ्चैव स्नातकस्य व्रतानि च भक्ष्याभक्ष्यश्च शौचश्च द्रव्याणां शुद्धिमेव च । ११३ । स्त्री धर्मयोगतापस्यं मोक्षसंन्यासमेव च राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्य्याणाञ्च विनिर्णयम् । ११४ । साक्षिप्रश्नविधानञ्च धर्मस्त्री पंसयोरपि विभागधर्मसूतश्च कण्टकानाञ्च शोधनम् । ११५ । वैश्यशूद्रोपचारश्च संकीर्णानां च संभवम् आपद्दुर्गमवर्णानां प्रायश्चित्तविधन्तथा । ११६ । संसारगमनञ्चैव च विधं कर्मसंभवम् निश्चयश्रेयसं कर्मणाञ्च गुणदोषपरीक्षणम् । ११७ । देशधर्मान् जाति-

। १०८ । जब मुनियों ने देखा कि धर्म की प्राप्ति आचार ही से होती है तब संपूर्ण तपस्या का मूल जो आचार है उसको धारण किया । ११० । अब श्रियों के मुख पूर्वक ज्ञान के लिये जो विषय इस ग्रन्थ में कहे जायेंगे उन्की अनुक्रमणिका (अर्थात् क्रम) कहते हैं जगत की उत्पत्ति संस्कारविधि (अर्थात् गर्भाधान आदि) व्रत का आचरण स्नान विधि जो उत्कृष्ट है । १११ । स्त्री प्रसंग विवाहों का लक्षण महायज्ञ का विधान आहुविधि । ११२ । जीविका का लक्षण ब्रह्मचारी का व्रत भक्ष्य अभक्ष्य शौच द्रव्यशुद्धि (अर्थात् बस्तुओं के पवित्र करने की रीति) । ११३ । स्त्री के धर्म करने का उपाय तपस्या मोक्ष संन्यास राजा का धर्म सब कार्यों का विचार । ११४ । साक्षियों से पूछने की रीति स्त्री पुरुष का धर्म विभाग धर्म (अर्थात् बांट बखरा करना) जुआ खेलने की

रीति दुष्टों का दण्ड । ११५। वैश्य और शूद्रों के धर्म का करना वर्ण संकरों की उत्पत्ति बिपत्ति काल में वर्णों का धर्म पाप कूटने की विधि । ११६। संसार गमन अर्थात् (एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाना) से तीन प्रकार का है उत्तम मध्यम अधम और यह तीन प्रकार के शुभ अशुभ कर्म से होता है आत्मज्ञान और कर्मों के गुण दोष की परीक्षा । ११७। देश जाति कुल पाषंडी (अर्थात् वेद में जो चिह्न नहीं लिखा है उसका धारण जो करता है) इन सबों का धर्म इन सब बातों को इस ग्रन्थ में मनु ऋषि ने कहा है । ११८। अब शृंगु ऋषि कहते हैं जिस प्रकार से हम ने इस शास्त्र को मनु जी से पूछा और उन्होंने ने कहा उसी प्रकार से आप लोग भी हम से जानिए ॥ ११९ ॥

इति मनुसंहिताभाषाटीकायां कुलुक्कभट्टव्याख्यानसारिण्यां श्रीबाबूदेवीदयालमिहकारितायां श्रीमत्कम्यनीमंस्कृतपाठशालीयधर्मशास्त्रि गुल्जार शर्म-
पण्डितकृतायां प्रथमाध्यायः ॥ १ ॥

धर्मानकुलधर्माश्चशाश्वतान् पापण्डगणधर्माश्चशास्त्रेस्मिन्नुक्तवान्मनुः । ११८। यथेदमुक्तवानशास्त्रमपुरापृष्टोमनुर्मया तथेदं
यूयमप्यघ मत्सकाशान्निबोधत । ११९। इतिमानवे धर्माशास्त्रे भृगुप्रोक्तायांसंहितायाम्प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

विद्वद्भिस्सेवितस्सद्भिर्नित्यमदेपिरागिभिः हृदयेनाभ्यनुज्ञातोयोधर्मस्तन्निबोधत । १। कामात्मतानप्रशस्तानचैवेहा-
स्यकामता काम्योहिवेदाधिगमः कमयोगश्चवैदिकः । २। सङ्कल्पमूलः कामोवैयज्ञास्सङ्कल्पसम्भवाः व्रतानियमधर्माश्चसर्वेसङ्क-
ल्पजाः स्मृताः । ३। अकामस्यक्रियाकाचिदृश्यतेनेहकर्हिचित् यद्यद्विकुरुतेकिञ्चित्तत्त्वकामस्थचेष्टितम् । ४। तेषुसम्यग्वर्त-
मानोगच्छत्यमरलोकताम् यथासंकल्पितांश्रेहसर्वान्कामान्समश्रुते । ५। वेदोऽखिलो धर्ममूलस्मृतिशीलेचतद्विदाम्
आचारश्चवसाधुनामात्मनस्तुष्टिरेवच । ६। यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मोमनुनापरिकीर्तितः ससर्वोभिहितोवेदेसर्वज्ञानमयोहिंसः ।
७। सर्वन्तुसमवेक्ष्येदन्निखिलंज्ञानचक्षुषा श्रुतिप्रामाण्यतोविद्वान्स्वधर्मेनिविशेतवै । ८। श्रुतिस्मृत्यदितंधर्ममनुतिष्ठन्

शत्रुता मित्रता से रहित अच्छे पण्डित लोगों ने धर्म की सेवा की है और वह धर्म कान्याण करनेहार है उस धर्म को हम से जानीए ॥ १॥ फल की इच्छा से कोई काम करना अच्छा नहीं है क्योंकि उस से बंधन होता है (अर्थात् उस फल के भोग करने के लिये शरीर धारण करना पड़ता है) और जो नित्य कर्म है और नैमित्तिक है (अर्थात् कोई निमित्त पाके होता है जैसे पुत्र उत्पन्न होने से जातकर्म करना) से आत्मज्ञान का सहाय होकर मोक्ष के लिये होता है) इस लिये तीन प्रकार के कर्म हैं एक नित्य दूसरा नैमित्तिक तीसरा काम्य (अर्थात् कामना के लिये जो करना) से तीसरा यह अच्छा नहीं है ॥ इससे इच्छा मात्र का निषेध नहीं करते ॥ क्योंकि वेद स्वीकार और वैदिक सकल धर्म संबंध इच्छा ही का विषय है ॥ २॥ इच्छा यज्ञ व्रत नियम धर्म ये सब संकल्प से (अर्थात् इस कर्म से यह फल होवे ऐसी बुद्धि से) उत्पन्न हैं ॥ ३॥ बिना इच्छा के कोई कर्म है नहीं जो कुछ कि करता है सो सब इच्छा ही से ॥ ४॥ फल की इच्छा बिना कर्म करे तो मोक्ष को पाता है और इस लोक में जो इच्छा करे सो भी पाता है ॥ ५॥ संपूर्ण वेद का कहना और वेद के जाननेवालों का कहना और करना और साधु लोगों का करना और जिस कर्म करने से अपना संतोष हो ये सब धर्म का मूल (अर्थात् जड़) है ॥ ६॥ संपूर्ण ब्रह्म के जाननेहार मनु जी ने जिस किसी का जो कुछ कि धर्म इस ग्रन्थ में कहा है सो सब वेद में है । ७। ज्ञान रूपी नेत्र

मे संपूर्ण शास्त्र को देखकर वेद को प्रमाण जान के अपने धर्म में रहे । ८ । वेद में और धर्म शास्त्र में जो धर्म कहा है उस धर्म को जो मनुष्य करता है सो इस लोक में कीर्ति को और परलोक में बड़े सुख को पाता है । ९ । श्रुति और स्मृति (अर्थात् वेद और धर्म शास्त्र) इन दोनों के उलटे तर्क से न विचारना क्योंकि इन्हीं दोनों से धर्म निकला है । १० । जो मनुष्य वेद वाक्य को तर्क शास्त्र के आश्रय से अप्रमाण मानके श्रुति स्मृति का अपमान करता है वह नास्तिक है वेद का निन्दा करने वाला है उस को साधु लोग अपनी मण्डली से बाहर कर दें । ११ । वेद और स्मृति भले लोगों का आचार अपने आत्मा का प्रिय ये चारों साक्षात् धर्म के लक्षण हैं जैसे सूर्य के उदय में होम करना और बिना उदय में होम करना ये दोनों बात शास्त्र में लिखे हैं इस में जो अपने को प्रिय हो सो करना । १२ । अर्थ और काम इन दोनों की इच्छा जिस को नहीं है उस को धर्मज्ञान का विधान करते हैं और जिस को धर्म जानने की इच्छा है उस को केवल वेद ही प्रमाण है । १३ । जिस कर्म के करने में दो प्रकार की श्रुति है उस में दोनों प्रमाण हैं और दोनों धर्म हैं इस बात को अच्छे प्रकार से

हिमानवः इहकीर्तिमवाप्नोतिप्रेत्यचानुत्तमसुखम् । ८ । श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयोधर्मशास्त्रन्तुवैस्मृतिः तेसर्वार्थेष्वमीमांसेता-
भ्यां धर्मोहिनिर्वभौ । १० । योवमन्येततेमूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः ससाधुभिर्वहिष्कार्योनास्तिकोवेदनिन्दकः । ११ ।
वेदः स्मृतिसदाचारः स्वस्यचप्रियमात्मनः एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् । १२ । अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञान-
म्विधीयते धर्मज्ञानासमानानाम्प्रमाणं परमं श्रुतिः । १३ । श्रुतिर्द्वैधं तु यच्च स्यात्तच्च धर्मावुभौ स्मृतौ उभावपि द्वितौ धर्मास-
म्पगुक्तौ मनीषिभिः । १४ । उदितेनुदिते चैव समयाधुपिते तथा सर्वथावर्तते यन्न इतीयैर्वैदिकी श्रुतिः । १५ । निषेकादि-
श्रमशान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः तस्य शास्त्रे धिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् । १६ । सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनघोर्यदंतरम्
तंदेवनिर्मितन्देशमार्थावर्त्तम्प्रचक्षते । १७ । तस्मिन्देशेय आचारः पारंपर्यक्रमगतः वर्णानां सान्तरालानां सदाचार उच्यते ।
१८ । कुरुक्षेत्रे च मत्स्याथ पञ्चालाः शूरसेनकाः एषां ब्रह्मर्षिदेशो वै आर्यावर्तादनन्तरः । १९ । एतद्देशप्रसृतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वस्वंचरिचंशिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः । २० । हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि प्रत्यगेव प्रागाद्यमध्यदेशः प्रकीर्तितः ।

पण्डितों ने कहा है ॥ १४ ॥ सूर्य उदय में और सूर्य के अनुदय में और सूर्य नश्वर इन दोनों से रहित काल में होम करना ये तीनों काल होम के लिये वेद में कहे हैं और यह तीनों धर्म ही हैं इस में जो प्रसन्न हो सो करें ॥ * ॥ * ॥

। १५ । निषेक (अर्थात् स्त्री में गर्भ का स्थापन यह प्रथम संस्कार है इस आदि खेके मरण तक जिस को मंत्र से संस्कार होता है (अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) इन्हीं तीनों वर्ण का इस शास्त्र में अधिकार जानना स्त्री और शूद्र इन दोनों का अधिकार न जानना । १६ । देवतों की नदी जो सरस्वती और दृषद्वती हैं इन दोनों के मध्य देश को आर्यावर्त कहते हैं । १७ । सब वर्णों का और वर्णसंकरों का इस देश में जो आचार चला आया है सो सदाचार कहाता है । १८ । आर्यावर्त के समीप में कुरुक्षेत्र मत्स्या पञ्चाल शूरसेनक ये सब देश ब्रह्मर्षियों के हैं । १९ । पृथिवी में सब मनुष्य इस देश में उत्पन्न ब्राह्मणों से अपने अपने चरित्र को जानें । २० । हिमाचल और विन्ध्याचल का मध्य विनशन के पूर्व प्रयाग के पश्चिम यह मध्य देश कहाता है ।

। २१। पूर्व समुद्र से लगे पश्चिम समुद्र तक और हिमाचल विंध्याचल का मध्य यह आर्यावर्त कहता है । २२। काला मृग अपने स्वभाव से जिस देश में रहे सो देश यज्ञ करने के योग्य है इस के परे स्वेच्छ देश है । २३। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यत्र पृथक् इसी देश में रहें और शूद्र तो जीविका के कष्ट में जिस देश में चाहे तिम देश में रहें । २४। शूद्र जो कहते हैं कि हे ऋषि लोगो आप में संशेष करके धर्म का मूल और सबों की उत्पत्ति इन दोनों की में से कहा अब वर्णों के धर्मों को जानिए । २५। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन सब का वेद में कहे जो गर्भाधान आदि शरीर का संस्कार सो इस लोक में और पर लोक में पवित्र करवहार है इस लिये इन संस्कारों को करना चाहिए । २६। गर्भसंस्कार जातकर्म चूड़ाकरण व्रतबंध इन संस्कारों में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के धोज का टाँप और गर्भ का टाँप कूट जाता है । २७। वेद का पढ़ना व्रत होना त्रैविद्यात्म्य का व्रत देव ऋषि पितरों का तर्पण पुत्र की उत्पत्ति महायज्ञ यज्ञ इन सब कर्मों में यह शरीर मोक्ष प्राप्ति के योग्य होती है । २८। नालच्छेदन के पहिले जातकर्म होता है उस में मंत्र सहित भोगा मधु घी लड़का को भोजन कराना पड़ता है । २९। जन्म में दशा-

२१। आसमुद्रात्तुवैपूर्वादाममुद्राच्चपश्चिमात् तयोरेवान्तरंगिर्योराख्यावर्तस्विदुर्बुधाः । २२। कृष्णसारस्तुचरतिमृगोयज्ञस्वभावतः सन्नोयज्ञियोदेशोस्वेच्छदेशस्त्वतः परः । २३। एतान्दिजातयोदेशान्संश्रयेरनप्रयत्नतः शूद्रस्तुयस्मिन्कस्मिन्वानिवसेद्वृत्तिकर्षितः । २४। एषाधर्मस्यवोयोनिः समासेनप्रकीर्तितासम्भवस्यास्य सर्वस्यवर्णधर्मान्विवोधत । २५। वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निपेक्षादिर्हिजन्मनामकार्यैः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्यचेह च । २६। गर्भेर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनियन्धनैः धौजिकंगार्भिकश्चैनादिजानामपठ्यते । २७। स्वाध्यायेनव्रतैर्होमैश्चैविधेनेज्यासुतैः महायज्ञैश्चैत्र्यैश्च ब्रह्मीयंक्रियतेतनुः । २८। प्राङ्वाभिवर्द्धनात्युसो जातकर्मवधायते मंचवत्प्राशनश्चास्यहिरण्यमधुसर्पिषाम् । २९। नामधेयन्दशम्यान्तुद्रादश्यास्वास्थ्यकारयेत् पुण्येतिथौमुहूर्तेवानम्रचेवागुणान्विते । ३०। मङ्गल्यमब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य वलान्वितम् वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् । ३१। शर्मवद्वाह्मणस्य स्याद्राजोरक्षासमन्वितम् वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्यसंयुतम् । ३२। स्त्राणांसुखोद्यमकरंविस्पष्टार्थमनोहरम् मङ्गल्यन्दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् । ३३। चतुर्थेमासिकर्तव्यंशिशोर्निष्क्रमणं गृहात् पष्ठेचप्राशनंमासियद्वेष्टमङ्गल्यकुले । ३४।

रहें दिन में अथवा बारहवें दिन में नामकरण होता है कदाचित् इन दिनों में न दृष्टा तो अच्छी तिथि नक्षत्र पुण्य दिन गुण सहित में करना । ३०। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हीं का नाम क्रम से मङ्गल वल धन सिद्धा दश का कहनेवाला जो शब्द तिम करके चुक करना । ३१। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हीं के नाम के अंत में क्रम से गर्भ रक्षा पुष्टिप्रेष्य (अर्थात् दान) इन शब्दों का कहनेवाला शब्द रहें जैसा शुभशर्मा बलवर्मा बटुभूति दीनदासः । ३२। जो सुख पूर्वक कहा जाय और कठोरता से रहित अर्थ जिसका खुला मनोहर मंगल और आशीर्वाद इन दोनों में से एक अर्थ का कहनेवाला दीर्घ वर्ण अंत में हो ऐसा नाम स्त्रियों का करना चाहिए जैसा यज्ञोदा देवी । ३३। चौथे महीना में घर से बाहर निकालना लठें महीना में अक्षप्राशन कराना अथवा जिस महीने में अपने कुल की रीति हो उस में करना । ३४। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन सब का चूड़ाकर्म प्रथम वर्ष में अथवा तीसरे वर्ष में करना चाहिए यह वेद का आशय है । ३५। गर्भ में अथवा जन्म में आठवें दशमरहें बारहवें वर्ष में क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन का यज्ञोपवीत करना । ३६। ब्राह्मण वल धन इन सबों का

इच्छा चाहें तो क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को पांचवें ठठवें आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें । ३७ । सोलह बार्हस चौबीस वर्ष तक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की गायत्री पठित नहीं होती । ३८ । इस के उपरान्त तीनों वर्ण यज्ञोपवीत में रहित होते हैं और व्रात्य कहते हैं गायत्री इन्हों की पठित होती है और भले लोग इन्हों की निन्दा करते हैं । ३९ । इन्हों के साथ कोई संबंध पढ़ने पढ़ाने का अथवा विवाह आदि का न रखें जब तक ये लोग प्रार्थयित्त न करें । ४० । अब तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों का चर्म आदि सब कहते हैं कामा मृग हरिण बकरा इन सबों के चर्म को क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ऊपर के अंग में धारण करें और मन तीसी भेड़ इन सबों के सूत्र में जो बख होता है उस को नीचे अंग में रखें । ४१ । ब्राह्मण को मूज की मेखला (अर्थात् करधनी) सो कैसे रहें कि तीन लर की बराबर चिह्न और क्षत्रिय को मूर्वा अर्थात् इसी नाम का ढल विशेष है उसके दृढ़ लर की वैश्य को मन के सूत्र की तीन लर की । ४२ । मूज मूर्वा मन ये तीनों न मिलें तो कुश अग्नस्तक (अर्थात् बहेड़ा बल्लभ अर्थात् बगई) इन्हों की करना तीन लर की एक वा तीन अथवा पांच गांठ का करना जैसा कुल का

चूडाकर्मादिजातीनां सर्वेषामेवधर्मतः प्रथमेन्द्रेतृतीयेवा कर्तव्यंश्रुतिचोदनात् ॥ ३५ । गर्भाष्टमेन्द्रेकुर्वीतब्राह्मणस्योपनाय-
नम् गर्भादेकादशेराज्ञोगर्भास्तुद्वादशेविशः । ३६ । ब्रह्मवर्चसकामस्यकार्यंस्विप्रस्यपञ्चमे राज्ञोवत्तार्थिनः पष्ठेवैश्यस्येहार्थिनो
ऽष्टमे । ३७ । आपोडशाद्ब्राह्मणस्यसावित्रीनातिवर्तते आहाविंशात् क्षत्रवंधोराचतुर्विंशतेर्विशः । ३८ । अतर्जईचयोप्येते
यथाकालमसंस्कृताः सावित्रीपतिताव्रात्याभयन्त्यार्यविगर्हिताः । ३९ । नैतैरपूतैर्विधिवदापघपिहिकर्हिचित् ब्राह्मण
यौनांश्च संवधान्वाचरेद्ब्राह्मणः सह । ४० । कार्ष्णरौरवास्तानिचर्माणिब्रह्मचारिणः वसीरन्वानुपूर्वेणशाणक्षौमाविकानि च ।
४१ । मौञ्जीचिह्नसमाश्रयणा कार्याविप्रस्यमेखला क्षत्रियस्यतुमौर्वीज्यावैश्यस्यशणतान्तवी । ४२ । मुञ्जालाभेतुकर्तव्याः
कुशस्तकवल्जैः चिह्नताग्रन्यनैकेनचिभिः पञ्चभिरेववा । ४३ । कार्पासमुपवीतस्यादिप्रस्योर्द्धवर्तचिह्नत् शणसूचमयं-
राज्ञोवैश्यस्याविकसौचिकम् । ४४ । ब्राह्मणोवैल्लपालाशौक्षत्रियो वाटखादिरौ ॥ पैलवौदुम्बरौवैश्योदण्डानर्हन्तिधर्मतः ।
४५ । केशान्तिको ब्राह्मणस्यदण्डः कार्यः प्रमाणतः ललाटसम्मितीराज्ञः स्यात्तुनासान्तिकोविशः । ४६ । ऋजवस्तेतुसर्वस्य
रवणाः सौम्यदर्शनाः अनुद्गेकरान्दण्डां सत्वचोनाग्निदृपिताः । ४७ । प्रतिगृह्येप्सितन्दण्डमुपस्थायचभास्करम् प्रदक्षिण-

आचार चला आया हो तैसा करना यह नहीं कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये लोग क्रम से एक तीन पांच गांठ का रखें । ४३ । कपास का जनेऊ ब्राह्मण को मन का क्षत्रिय को भेड़ के रोम का वैश्य को सो कैसे करना कि तिगुना करके फेर तिगुना करना । ४४ । ब्राह्मण बेल का अथवा पराम का दंड धारण करें क्षत्रिय बर का अथवा खैर का वैश्य पोल् का अथवा गुल्लर का । ४५ । केश मस्तक नासिका तक दंड को क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य धारण करें । ४६ । सब दंड कोमल और किद्र से रहित सुंदर लंबा सहित रहें और मनुष्यों के अनुद्गे करनेवाला और अग्नि करके दूषित न रहें । ४७ । दंड धारण करके सूर्य का उपस्थान करके (अर्थात् सूर्य के समुख होके अग्नि को प्रदक्षिण करके विधि पूर्वक भिचा मांगें । ४८ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण के ब्रह्मचारी भिचा मांगने की वाक्य में क्रम से प्रथम मध्यम अंत में भवत् शब्द को कहें । ४८ ।

माता भगिनी मौसी इन्हों में प्रथम भिला मांगे और जो ब्रह्मचारी का अपमान न करें उस में भी मांगे । ५० । निष्कल होकर भिला मांग के गुरु के समीप
राखें इस के अनंतर आचमन करके पवित्रता में पूर्व मुख बैठकर भोजन करें । ५१ । पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर इन दिशा की और मुखकर भोजन करने में क्रम
करके आयुष यश लक्ष्मी सत्य इन्हों की वृद्धि होती है । ५२ । प्रति दिन एकाग्र (अर्थात् निश्चित) होकर आचमन करके भोजन करें और फिर भी भोजन करके
आचमन करें और इन्द्रियों को जल से कूरे । ५३ । प्रति दिन अन्न का पूजन करें और अन्न की निन्दा न करें अन्न को देखकर प्रसन्न होवे और हर्ष करें हम को
यह अन्न नित्य मिले ऐसा कहके भोजन करें । ५४ । अन्न की पूजा करने में सामर्थ्य (अर्थात् तेज) और वीर्य (अर्थात् इन्द्रिय शक्ति) ये दोनों बढ़ते हैं और
बिना पूजा करने में वही दोनों का नाश होता है । ५५ । जूठ किमी को न देना मायंकाल और प्रातःकाल के मध्य में भोजन न करना (अर्थात् तीन बर न भोजन
करना) अतिभोजन (अर्थात् बद्ध भोजन) न करना जूठ ऊपर संते कहीं न जाना । ५६ । अति भोजन आयुष अरोग्य स्वर्ग पुण्य इन सबों के हित नहीं हैं

मृगीत्याग्निश्चरेद्भैक्षं यथाविधि । ४८ । भवत्पूर्वश्चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः भवन्मध्यस्तु राजन्योवैश्यस्तु भवदुत्तरः । ४९ ।
मातरस्वास्वसारं वामातुर्वै भगिनीं निजाम भिक्षेत भिक्षां प्रथमं याचैनं नावमानयेत् । ५० । समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदर्थम
मायया निवेद्य गुरवे श्रीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः । ५१ । आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यन्दक्षिणामुखः श्रियं प्रत्यङ्-
मुखो भुङ्क्ते ऋतुभुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः । ५२ । उपसृश्यद्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः भुक्ता चोपसृशेत्सम्यग्द्विजः खानिच संस्पृ-
शेत् । ५३ । पूजयेदशनन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः । ५४ । पूजितं ह्यशनं नित्यम्व-
लमूर्जश्च यच्छति अपूजितन्तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् । ५५ । नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा नचैवात्यशनङ्कु-
र्यान्नचोच्छिष्टः कचिद्व्रजेत् । ५६ । अनरोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यश्चातिभोजनम अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।
५७ । ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपसृशेत् कायवैदशिकाभ्याम्बान पित्र्येण कदाच न । ५८ । अङ्गुष्ठमूलस्य तल
ब्राह्मन्तीर्थम्प्रचक्षते कायमङ्गुलिमूलेग्रेदैवमिच्छन्तयोरधः । ५९ । चिराचामेदपः पूर्वदिः प्रमृज्यात्ततोमुखम खानिचैव स्पृशेद-
द्विरात्मानं शिरणव च । ६० । अनुष्णाभिरफेनाभिरद्विस्तीर्थेन धर्मवित् शौचेप्सुस्सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः । ६१ ।

और लोक में निन्दित है इस लिये अति भोजन नहीं करना । ५७ । ब्रह्मतीर्थ में नित्य ही ब्राह्मण आचमन करें देवतीर्थ पितृतीर्थ प्रजापतितीर्थ में आचमन
न करें । ५८ । अंगूठा तर्जनी कनिष्ठिका इन तीनों का मूल क्रम में ब्रह्मतीर्थ पितृतीर्थ प्रजापतितीर्थ कहाता है हाथ का अग्र देवतीर्थ है । ५९ । प्रथम
तीन बर आचमन करना दो बार मुख धोना मुख में जो इन्द्रिय हैं (अर्थात् नाक कान आंख मुख) इन सबों को जल में कृना शिर और हृदय इन्हों को भी
। ६० । पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख होकर फेन में रक्षित शीतल जल में मयंकाल एकान्त में पवित्रता की इच्छा करता ऊँचा आचमन करें । ६१ । ब्राह्मण
क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सबों के आचमन करने में जल का प्रमाण यह है कि क्रम में हृदय कण्ठ मुख मध्य जिह्वा आँठ तक जल प्रवेश करें । ६२ । बाएँ
कंधे में जनेऊ रहने में उपवीती (अर्थात् सत्य) कहाता है दहिने कंधे में रहने में प्राचीन आवीती (अर्थात् अपमय) कहाता है कंठ में रहने में निवीती

कहाता है। ६२। मेखला चर्म दंड जनेऊ कर्मंडलु ये सब नष्ट हो जायें तो जल में डाल देना और लवीन मंत्र सहित दहन करना। ६४। ब्राह्मण को केशांत कर्म गर्भ से मारहवें वर्ष में होता है जत्रिय को वही कर्म बार्दमवें वर्ष में और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में। ६५। ये सब संस्कार स्त्रियों के मन्त्र रहित करना परन्तु जिस काल में जिस क्रम में कहा है उसी काल में उसी क्रम में करना। ६६। स्त्रियों के विवाह संस्कार मंत्र सहित हैं पति की सेवा यही गुरु कुल में वाम है गृह का काम काज यही अग्नि की सेवा है। ६७। ब्राह्मण जत्रिय वैश्य को जनेऊ की विधि कहा यह विधि पुण्य है दूसरे जन्म का जनानेवाला है (अर्थात् इस कर्म से दूसरा जन्म होता है) इसको उपरांत कर्म योग का जानो। ६८। शिष्यों को जनेऊ कराके पहिले पवित्रता आचार अग्नि का सेवा मंध्या पासन (अर्थात् मंध्या करने की रीति) इन सब को गुरु सिखलावे। ६९। शास्त्र की रीति से पठन समय में आचमन कर उत्तर मुख से ब्रह्माञ्जली कर

हृन्नाभिः पूयतेविप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः वैश्योद्विः प्राणिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्तः। ६२। उद्धृतेदक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यतेदिजः सव्येप्राचीन आर्वीतोनिवीतो कण्ठसज्जने। ६३। मेखलामजिनन्दण्डमुपवीतंकमण्डलुम् अशुप्रास्यविनष्टानिगृह्णातान्यानिमन्त्रवत्। ६४। केशान्तः षोडशेवर्षेब्राह्मणस्य विधीयते राजन्यबंधोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्यधिकेततः। ६५। अमंचिकातुकार्येयं स्त्रीणामावृदशेपतः संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालंयथाक्रमम्। ६६। विवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारोवैदिकः स्मृतः पतिसेवागुणोवासेगृह्यार्थोऽग्निपरिक्रिया। ६७। एषप्रोक्तोद्विजातीनामौपनायनिको विधिः उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगनिबोधत। ६८। उपनीयगुरुः शिष्यंशिष्येष्टैश्चैवमादितः आचारमग्निकार्यञ्चसंध्योपासनमेवच। ६९। अध्येष्यमाणत्वाचान्तोयथाशास्त्रमुदङ्मुखः ब्रह्माञ्जलिहृतोध्याप्योलघुवासाजितेन्द्रियः। ७०। ब्रह्मारम्भेवसानेचपादौग्राह्यौगुरोस्तदा संहत्यहस्तावध्येयं सहि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः। ७१। व्यत्यस्तपाणिनाकायमुपसंग्रहणंगुरोः सव्येनसव्यः स्पृष्टव्योदक्षिणेनचदक्षिणः। ७२। अध्येष्यमाणन्तुगुरुर्नित्यकालमन्त्रितः अधीक्षभोदतिद्रव्यादिरामोस्त्वितिचारमेत्। ७३। ब्राह्मणः प्रणवंकुर्यादादाधन्तेचसर्वदा सवत्येनांकृतमूर्ध्वपरस्ताच्चविशीर्यति। ७४। प्राक्कुलानपर्युपासीनः पवित्रैश्चैवपावितः प्राणायामैश्चिभिः पूतस्ततश्चोङ्कारमर्हति। ७५। अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च प्रजापतिः वेदचयान्निर्दुहद्भुवः स्वरितीति च।

(अर्थात् हाथ जोड़ कर) जितेंद्रिय होके कोटा बख पहिरकर शिष्य रहै। ७०। प्रति दिन पाठ के प्रारंभ में और समाप्ति में अपने दोनों हाथ से गुरु के दोनों पाद को ग्रहण करें हाथ का जोड़ना ब्रह्माञ्जली कहाती है। ७१। गुरु के समुख होकर दहिने हाथ से दहिने पाद को और बाएँ हाथ से बाएँ पाद को ग्रहण करें। ७२। शिष्यों के पढ़ाने के समय में गुरु ऐसा बोलें कि अधीक्षभो (अर्थात् पढ़ो) तब शिष्य पढ़ें और जब कहें कि विगामोस्तु (अर्थात् बस करो) तब शिष्य चुप रहें इसका तात्पर्य यह है कि गुरु की आज्ञा से पढ़ें और चुप रहें। ७३। प्रति दिन पाठ के प्रारंभ में और समाप्ति में प्रणव (अर्थात् ओंकार) को कहें और न कहें तो पढ़ा भूल जाता है। ७४। पूर्व दिशा में कुश का अग्र भाग करके उस पर बैठकर पवित्र मंत्र में पवित्र होकर तीन बार प्राणायाम करें तब ओंकार कहने के योग्य होता है। ७५। अकार उकार मकार इन तीनों अक्षरों के और भूः भुवः स्वः इनको भी ब्रह्मा ने तीनों वेद में (अर्थात् ऋग्यजुसाम में) निकाला। ७६। इन्हीं तीनों

वेद से एक एक पाद गायत्री का ब्रह्मा नें निकाला । ७७। ऊँभूः भुवः स्वः इसको और गायत्री के तीनों पाद को दोनों संध्या में जप करे वेद पढ़ने-
वाला ब्राह्मण तो संपूर्ण वेद के पुण्य से युक्त होवे । ७८। बाहर जाके हजार बार इन्हीं तीनों को पढ़े तो एक महीना में बड़े पाप से छूटे जैसे
केंचुर से साँप छूटता है । ७९। अपने काल में जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीनों से रहित हैं सो साधु लोगों में निन्दा को पाते हैं । ८०। यही तीनों
(अर्थात् ऊँभूः भुवः स्वः गायत्री) वेद का मुख है और परमात्मा के मिलने का द्वार है । ८१। जो मनुष्य आलस्य को छोड़कर तीन वर्ष तक प्रति दिन
यही तीनों को पढ़े सो वायु रूप होकर ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होवे । ८२। जो यह परब्रह्म है प्राणायाम (अर्थात् वायु का रोकना) यह परम तप है गायत्री
से बड़ा कोई नहीं है चुप रहने से मृत्यु बोलना अच्छा है । ८३। जो संपूर्ण किया वेद में लिखी है सो सब बिनाश सहित है और अंकार रूप जो ब्रह्म
है सो अविनाशी है । ८४। यज्ञ में दस गुण अधिक जप है सो उपांशु (अर्थात् पाम के रहनेवाले भी न सुनें) करे सो मुन परने से सब गुण अधिक है

। ७६। त्रिभ्यएवतुवेदेभ्यः पादम्यादमटूदुहत् तदितृष्टोच्चाः सावित्र्याः परमेष्ठीप्रजापतिः । ७७। एतदक्षरमेताञ्चजपन् व्याहृति-
पूर्विकाम् संध्योर्वेदविद्विप्रोवेदपुण्येनयुज्यते । ७८। सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्यवहरेतत्त्रिकं द्विजः महतोप्येनसोमासास्वचेवाहिर्मुच्यते-
। ७९। एतर्चयाविसंयुक्तः कालेचक्रिययास्वया ब्रह्मक्षत्रियविद्योनिर्गर्हणायातिसाधुपु । ८०। अंकारपूर्विकास्तिस्त्रैमहाव्याह-
तयो ऽव्ययाः त्रिपदाचैवसावित्रीविज्ञेयम्ब्रह्मणोमुखम् । ८१। योधीते ऽहव्यहन्येताव्रीणिवर्षाण्यतंद्रितः स ब्रह्मपरमभ्येतिवायु
भूतः खमूर्तिमान् । ८२। एकाक्षरम्परंब्रह्मप्राणायामाः परन्तपः सावित्र्यास्तुपरंनास्तिमौनात्सत्यंविशिष्यते । ८३। क्षरन्तिसर्वा
वेदिक्योजुहोतियजति क्रियाः अक्षरंदुष्करंज्ञेयम्ब्रह्मचैव प्रजापतिः । ८४। विधियज्ञाज्जपयज्ञोविशिष्टोद शभिर्गुणैः उपांशुः
स्याच्छतगुणः सहस्रोमानसः स्मृतः । ८५। येपाकयज्ञाश्चत्वारोविधियज्ञसमन्विताः सर्वेतेजपयज्ञस्पकलांनाहंतिपोउशीम् ।
८६। जप्येनैवतुसंसिध्येब्राह्मणोनाचसंशयः कुर्यादन्यन्नवाकुर्यान्नैवोब्राह्मणउच्यते । ८७। इन्द्रियाणाम्विचरतांविषयेष्वप-
हारिषु संयमेयन्नमातिष्ठेद्विद्वानयंतेववाजिनाम् । ८८। एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानिपूर्वमनीषिणः तानिसम्यक्प्रवक्ष्यामियथा

और मन में जप करे ओंठ न हिलने पावे सो उपांशु से हजार गुण अधिक है । ८५। जो पाक यज्ञ चार है (अर्थात् वैश्वदेव होम बलिकर्म नित्य
आहुति अतिथि भोजन) और विधी यज्ञ (अर्थात् अमावास्या पूर्णमासी के होम आदि ये सब जप यज्ञ के मोरहवां भाग भी नहीं पामकते । ८६। ब्राह्मण
सब जीव से मित्रता रखे (अर्थात् यज्ञ करने में हिंसा होती है उसको न करे) केवल जप ही को करे तो ५५ सिद्धि होती है । ८७। अपने अपने
विषयों से इन्द्रियों को रोके (अर्थात् रूप रस गंध स्पर्श शब्द ये पाँचों विषयों में नेत्र जिह्वा नासिका त्वचा कर्ण ये पाँचों इन्द्रिय लगने न पावें
जैसे सारथी कुशल से घोड़ा को रोकता है । ८८। जो पूर्व पंडितों में एकादश इन्द्रिय कहा है तिन सब को ठीक ठीक क्रम से कहेंगे । ८९। श्रोत्र त्वक्
चक्षु जिह्वा नासिका पायु उपस्थ हस्त पाद बाणी तिस में पायु (अर्थात् मार्ग) उपस्थ (अर्थात् भग लिंग) । ९०। इन सबों में पहिली पाँच ज्ञान इन्द्रिय कहाती
हैं दूसरी पाँच कर्म इन्द्रिय कहाती हैं । ९१। अगरहवां मन है अपने गुण करके दोनों (अर्थात् ज्ञान इन्द्रिय और कर्म इन्द्रिय) कहाता है जिस

मन के जीतने से ये सब दृशव जीते जाते हैं । ८२ । इन्द्रियों के प्रसंग से जीव दोषी होता है और इन्द्रियों का निग्रह करे (अर्थात् विषयों में न लगावे तो जीव सिद्धि को पाता है । ८३ । जिस वस्तु में मन की इच्छा है उस वस्तु के मिलने से मन को तृप्ति हो मो कभी नहीं होती जैसे घी को पाके अग्नि बड़त ही है । ८४ । जिस मनुष्य को मन का इच्छित पदार्थ सब मिलता है और जो मिले हुए पदार्थों को त्याग करता है इन दोनों में त्याग करनेवाला बड़ा है । ८५ । विषयों को सेवा बिना किए उन्हीं का त्याग नहीं होता किंतु उन्हीं में दोष देखने से त्याग होता है । ८६ । जिसका स्वभाव दुष्ट है उसको वेद त्याग यज्ञ नियम तप ये सब सिद्धि को नहीं दे सकते । ८७ । जो मनुष्य मन के कू के देख के भोग करके संच के न हर्ष को पाता और न इसके बिना शोक को पाता सो जितेन्द्रिय कहाता है । ८८ । सब इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय अपने विषय में लगी तो जीव की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जैसे चलनी से पानी का निकालना । ८९ । उपाय से सब इन्द्रियों को और मन को बस करके जिस में शरीर को दुःख न होने पावे ऐसी रीति से

वदनुपूर्वशः । ८९ । श्रीब्रह्मकचक्षुषी जिह्वानासिकाचैवपञ्चमी पायूपस्थं हस्तपादं वाचैव दशमी स्मृता । ९० । बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रीवादीत्यनुपूर्वशः कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पायादीनि प्रचक्षते । ९१ । एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् यस्मिन् जितेजिवतावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ । ९२ । इन्द्रियाणाम्प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं न्नियच्छति । ९३ । नजातुकामः कामानामुपभोगेन शाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्द्धते । ९४ । यश्चैतांग्राप्नुयात्सर्वान् पथैताङ्के-वलांस्त्यजेत् प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते । ९५ । न तथैतानि शक्यन्ते सन्नियन्तुमसेवया विषयेषु प्रजुष्टानियथाज्ञा-नेन नित्यशः । ९६ । वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमांश्च तपांसि च न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं न्नियच्छन्ति कर्हिचित् । ९७ । श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः न हृष्यति स्लायति वा स विज्ञेयोजितेन्द्रियः । ९८ । इन्द्रियाणान्तु सर्वे पांयघेकं क्षरतीन्द्रियम् तेनास्य क्ष-रतिप्रज्ञादृतेः पात्रादिवोदकम् । ९९ । वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा सर्वान्संसाधयेदर्थानि शिखनयोगतस्तनुम् । १०० । पूर्वासंध्यां जपं स्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् पश्चिमांतु समासीनः सम्यग्दृष्टविभावनात् । १०१ । पूर्वासंध्यां जपं स्तिष्ठ

सब अर्थों को सिद्धि करे । १०० । प्रातःकाल में गायत्री का जप करत रहे जब तक मूर्ध का दर्शन न होवे और इसी रीति से सायंकाल में जब तक तारा का दर्शन न होवे । १०१ । प्रातःकाल की संध्या करने से रात्रि का पाप कूटता है और सायंकाल संध्या करने से दिन का पाप कूटता है । १०२ । जो मनुष्य दोनों काल की संध्या को नहीं करता है सो शूद्र को नाई संपूर्ण दिज कर्म से बाहर निकल जाता है । १०३ । वन में जाकर जल के समीप नित्य विधि करके निचित होके केवल गायत्री का पढ़े । १०४ । वेद के जो अंग हैं (अर्थात् शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ज्योतिष इंद) और जो नित्य कर्म है होम के मंत्र हैं इन सबों में अनध्याय का आदर नहीं है । १०५ । जो नित्य कर्म में मंत्र पढ़े जाते हैं सो अनध्याय भी पुण्य ही है । १०६ । जो मनुष्य एक वर्ष तक विधि पूर्वक पवित्र होकर नित्य हो वेद को पढ़ता है उसको वही वेद नित्य ही दूध दही घी मधु को देता है । १०७ ।

जिसका यज्ञोपवीत ज्ञा हो वह समावर्तन (१०८) वेद पढ़ने की समाप्ति तक अग्नि में इंधन लगावे भिक्षा मांगे भूमि में सेवे गुरु का हित करे । १०८ । आचार्य का पुत्र सेवा करने करनेवाला ज्ञान देनेवाला पवित्रता से रहनेवाला वांधव ग्रहण धारण समर्थ साधु जातिवाला द्रव्य देनेवाला ये दश धर्म पूर्वक पढ़ाने के थे । १०९ । बिना पूछे कोई बात किसी को न कहना अन्याय से पूछे तो भी न कहना जाने ऊँच भी बुद्धिमान लोक में जड़ की गार्ह रहे । ११० । जो अर्थ से कहता है और जो अर्थम से पूछता है दोनों में से एक सर जाता है अथवा शत्रुता को पाता है । १११ । जिस स्थान में धर्म अर्थ और सेवा जैसा कहा है शास्त्र में तैसा नहीं तिस स्थान में विद्या को न बोना जैसे मुन्दर बीज ऊसर भूमि में नहीं बोया जाता है । ११२ । विद्या के सहित वेद पढ़नेवाला दृष्टा पूर्वक मरि जावे परन्तु कैसी भी विपत्ति में उस विद्या का ऊसर भूमि में न बोवे । ११३ । विद्या ब्राह्मण

नैशमेनोव्यपोहति पश्चिमांतुसमासीनामलं हंति दिवाहृतम् । १०२ । नतिष्ठतितुयः पूर्वांनोपास्तेयश्चपश्चिमाम् सशृद्रवदू-
हिष्कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः । १०३ । अपांसमीपेनियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः । १०४ । वेदोपकरणैश्चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके नानुरोधोऽस्य न ध्यायेद्दोषमन्वेष्टुं चैव हि । १०५ । नैत्यकेनास्य न ध्यायेद् ब्रह्मसचं
द्वितत्स्मृतम् ब्रह्माहुतिर्हृतिम्पुण्यमनध्यायवपद्रुतम् । १०६ । यः स्वाध्यायमधीते बद्धं विधिनानियतः शुचिः तस्य नित्यं शरत्पे-
पयोदधिष्ठितं मधु । १०७ । अग्नीन्धनमैक्षचर्यामधः शय्यांगुरोर्हितम् आसमावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनोद्विजः । १०८ ।
आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदोषार्मिकः शुचिः आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वाध्यायादशर्मतः । १०९ । नाष्टुष्टः कस्यचिद्व्यान्त्रचा-
न्यायेनच्छतः जानन्नपि हि मेधावी जडवस्त्रोक्त आचरेत् । ११० । अधर्मेण च यः प्राह्यश्चाधर्मेण पृच्छति तयोरन्यतरः प्रैतिवि-
द्वेषस्वाधिगच्छति । १११ । धर्मार्थैश्च न स्यातां शुश्रूषावापितद्विधा तच्च विद्यानवसव्याशुभं बीजमिवोपरे । ११२ । विद्ययैव-
समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना आपद्यपि हि द्योरायां न त्वेनामिरिणेव पेत् । ११३ । विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेषविस्तेस्मिरक्षमाम्
असूयकायमांसादास्तथास्यां वीर्यवत्तमा । ११४ । यमेव तु शुचिं विद्यान्वितं ब्रह्मचारिणम् तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपाया
प्रमादिने । ११५ । ब्रह्मयस्त्वननुज्ञातमधीयानादवापुयात् स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकम् प्रतिपद्यते । ११६ । लौकिकं च वैदिक-
स्वापितथाध्यात्मिकमेव च आददीत यतो ज्ञानान्तमूर्ध्वमभिवादयेत् । ११७ । सावित्रीमात्रसारोपिवरं विप्रः सुयंचितः नायन्त्रि

के पास आकर कहती है कि मैं तुम्हारी निधि हूँ मेरी रक्षा करो निंदक को मुझे न दो तो मैं वज्रत बौर्य सहित रहूंगी । ११४ । जिसको पवित्र और ब्रह्मचारी निधि का रक्षा करनेवाला सावधानता से रहनेवाला जानो उस ब्राह्मण को मुझे दो । ११५ । गुरु की आज्ञा बिना पढ़ते पढ़ाते मुनके जो वेद को जानता है सो वेद का चोर है और नरक में जाता है । ११६ । लौकिक ज्ञान अथवा वैदिक ज्ञान वा ब्रह्मज्ञान इन सब को जिससे पावे उसके पहिले प्रणाम करे । ११७ । केवल गायत्री को जानता हो परन्तु शास्त्रोक्त नियम से सहित हो सो मान के योग्य है और तीनों वेद को पढ़े हो सब दस्त का बचनेवाला हो शास्त्रोक्त नियम से सहित हो निषिद्ध भन्त का भोजन करनेवाला हो सो मान के योग्य नहीं होवे । ११८ । बने लोग जिस आसन पर

वा जिस शय्या पर बैठे हों उस पर न बैठे और आपशय्या अथवा आसन पर बैठा हो तो उठके बड़े लोगों को प्रणाम करें । ११८ । बड़े लोगों को आने से छोटे लोगों का प्राण ऊपर जाने की इच्छा करता है और छोटे लोग जब उठके प्रणाम करते हैं तब उस प्रणाम को पाते हैं । ११९ । जो मनुष्य बड़े लोगों को नित्य ही प्रणाम करता है और सेवा करता है उसकी विद्या आयुष्य यश धन ये चारों बढ़ते हैं । १२० । बड़े लोगों को प्रणाम के उपरान्त में फलाना हूँ ऐसा अपना नाम कहे । १२१ । जो मनुष्य प्रणाम करने की वाक्य को नहीं जानते सो केवल अपने नाम ही को कहें और स्त्री भी इसी प्रकार से कहें । १२२ । प्रणाम करत अपने नाम के अंत में भोः ऐसा कहे भो शब्द जो है सो नाम का स्वरूप है यह अधियां ने कहा । १२३ । आश्रीर्वाद देने में आयुष्माश्रवमौम्य ऐसा कहना चाहिए नाम के अन्त में अकारादि स्वर को सुत (अर्थात् त्रिसात्रात्मक) कहना । १२४ । जो मनुष्य आश्रीर्वाद

तस्मिन्नेदोपि सर्वाशीसर्वविक्रयी । ११८ । शय्यासने ऽध्याचरितेऽप्रेयसानसमाविशेत् शय्यासनस्थैश्चैवैनंप्रत्युत्थायाभिवादयेत् । ११९ । ऊर्ध्वप्राणाद्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आरति प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यामुनस्तान्प्रतिपद्यते । १२० । अभिवादनशीलस्य नित्यं दृष्टोपसेविनः चत्वारितस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशो वस्त्रम् । १२१ । अभिवादात्यरम्भिप्रोज्यायांसमभिवादयन् असौ नामाहमस्मीति स्वन्नामपरिकीर्तयेत् । १२२ । नामधेयस्य ये केचिदभिवादन्न जानते तान्प्राप्नोति ह्यमिति ब्रूयात्स्त्रियस्त्वास्तथैव च । १२३ । भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नामो अभिवादाने नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभावश्चपिभिः स्मृतः । १२४ । आयुष्मान्भवसौम्येति वाच्यो विप्रो अभिवादाने अकारश्चास्य नाम्नोन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः सुतः । १२५ । यो न वेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् नाभिवाद्यः स विदुषायथाशूद्रस्तथैव सः । १२६ । ब्राह्मणकुशलम्पृच्छेत्क्षत्रवन्धुमनामयम् वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमा रोग्यमेव च । १२७ । अवाच्यो दीक्षितो नाम्नाय वीर्यायानपियो भवेत् भो भवतु पूर्वकन्वेन मभिभाषेत धर्मवित् । १२८ । परपत्नी तु यास्त्री स्यादसम्बन्धाच्च यो नितः ताम्ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च । १२९ । मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरान्दत्तवैजोगुरुन असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः । १३० । मातृपुत्रसामातुलानीश्वशूरश्च पितृपुत्रसाम्पूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभर्यया ।

देने की वाक्य को नहीं जानता है उसको प्रणाम नहीं करना जैसा शूद्र तैसा वह है । १२५ । ब्राह्मण से कुशल सन्धि से अनामय वैश्य से क्षेम शूद्र से आरोग्य पूछना चाहिए । १२६ । जो मनुष्य अपने से छोटा है और यज्ञ करता है उसको यज्ञ में भो भवत ऐसे शब्द से बोलना उसका नाम न लेना । १२७ । जो स्त्री अपने कोई संबंध में नहीं है उसको भवती सुभगे भगिनी ऐसा कहना । १२८ । मामा चाचा श्वशुर दत्तवैज (अर्थात् यज्ञ करानेवाला) गुह ये सब अपने वय से छोटे भी हों तो उसको मैं फलाना हूँ ऐसा कहकर उठके प्रणाम करे । १२९ । मौसी मामी सासु फुफू ये सब गुरु की स्त्री के सम हैं इस लिये गुरु की स्त्री की भाई इन सब का पूजा करना उचित है । १३० । जेठे भाई की जो सवर्णा स्त्री है (अर्थात् दूसरे वर्ण की नहीं है) उसका पाद हूँ के नित्य ही प्रणाम करना और जाति संबंध की जो स्त्री है उसका पाद हूँ के प्रणाम करना विदेश से आके अपने देश में रहे तब पाद को

न कृत्रे प्रणाम मान करे । १३२ । फूफू मोंभी जेठी भगिनी इन सब को माता के समान जानना माता तो इन सबों से बड़ी है । १३३ । एक राम वा एक पुर को रहने वाले गुण से रहित हो और दस वरम जेठा हो तो उस के साथ मित्रता का व्यवहार होता है और गुणी हो पांच वरम जेठा हो तो भी मित्रता ही का व्यवहार होता है और वेद पढ़े हो तो न वरम जेठा हो तो मित्रता ही होती है और मध्यम में हो तो थोड़े हो काल में मित्रता होती है सर्वत्र जो काल कह आए हैं उन्हीं ऊपर ज्येष्ठता का व्यवहार होता है । १३४ । दस वरम का ब्राह्मण और भी वरम का क्षत्रिय दोनों आपुम में पिता पुत्र की नाईं रहें तिम में ब्राह्मण पिता है और क्षत्रिय पुत्र है । १३५ । द्रव्य बन्धु बय कर्म विशा ये पांच मान्य के स्थान हैं इस में पूर्वपृथ से उत्तर उत्तर बढ़ा है । १३६ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के इन पांचों के मध्य में जिस में जितना अधिक वरम रहे सो मान्य के योग्य है नब्बे ८० वरम के ऊपर बय हो तो शूद्र भी मान के योग्य है । १३७ । जो ग्य पर चढ़ा है और जो नब्बे ८० वरम के ऊपर का बय वाला है गौरी है बोज़ लिय है खो है ब्रह्मचारी है राजा है विवाह करने के लिए जो दर है इन सब को राह छोड़ देना (अर्थात्

१३१ । आतुर्भार्य्यापसंग्राह्यासवर्णाहन्यहन्यपि विप्रोष्यतपसंग्राह्याज्ञातिसम्बन्धियोपितः । १३२ । पितुर्भगिन्यामातृश्रज्यायस्यांचस्वसर्ष्यपि मातृवहृत्तिमातिष्ठेन्माताताभ्योगरीयसी । १३३ । दशाब्दाख्यंपौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यंकलामृताम त्र्यब्दपूर्व-
श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापिस्वयोनियु । १३४ । ब्राह्मणन्दशवर्षन्तुशतवर्षन्तुभूमिपम् पितापुत्रोविजानीयाद्ब्राह्मणस्तुतयोः पिता ।
१३५ । वित्तस्वन्धुवयः कर्मविद्याभवतिपञ्चमी एतानिमान्यस्थानानिगरीयोयच्चदुत्तरम् । १३६ । पञ्चानाञ्चिपुवर्णेषुभूयां सिगुण
वन्ति च यच्चस्यः सोऽन्नमानार्हः शूद्रोऽपिदशमीज्ञतः । १३७ । चक्रिणोदशमीस्थस्वरोगिणोभारिणः स्त्रियाः स्नातकस्यचराक्ष्य
पन्थादेयोवरस्य च । १३८ । तेषान्तुसमवेत्तामांमान्यौस्नातकपार्थिवौ राजस्नातकयोश्चैवस्नातकोन्मृपमानभाक् । १३९ ।
उपनीयतुयः शिष्यंवेदमध्यापयेद्भिजः सकल्पंसरहस्यञ्चतमाचार्यम्पुचक्षते । १४० । एकदेशन्तुवेदस्यवेदाङ्गान्यपिवापुनः
योध्यापयतिदृढ्यर्थमुपाध्यायःसउच्यते । १४१ । निषेकादीनिकर्माण्यः करोतियथाविधि सम्भावयतिचान्नेनसोविप्रोगुरुह-
च्यते । १४२ । अग्न्याधेयस्याकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मन्त्रान् यः करोतिदृढतोयस्यसतस्यर्त्विगिहोच्यते । १४३ । य आहणोत्य-

इन सबों में कोई एक और से आता हो और उसको समोप दूसरी और से कोई आता हो तो वह राह छोड़ देवे इन सबों के जाने के लिये । १३८ । और चरम पर आपुम में ब्रह्मचारी को और राजा को राह देंगे और राजा को ब्रह्मचारी में राजा राह देवे । १३९ । यज्ञोपवीत करके कल्प हो रहस्य (अर्थात् गोप्य दम्भ) रहित वेद को पढ़ाये वह आचार्य कहलाता है । १४० । वेद का एक देश और वेद के ऋ अंग (अर्थात् शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ज्योतिष हन्द) इन सब को जीविका के लिए जो पढ़ाता है सो उपाध्याय कहलाता है । १४१ । गर्भाधान आदि कर्म की विधि सहित जो कराता है और अन्न से बढ़ाता है सो ब्राह्मण गुण कहलाता है । १४२ । वरण लेके अग्नि होच कर्म अष्टका आहु आदि अग्निष्टोम आदि यज्ञ इन सब को करता है सो ऋत्विक् कहलाता है । १४३ । जो देवों को यज्ञ की वेद से संपर्ण करता है सो माता है और पिता है उस से द्रोह कधी न करना । १४४ । उपाध्याय से दस गुण आचार्य बढ़ा है आचार्य से दस गुण पिता बढ़ा

है पिता से हजार गुण माता बड़ी है । १४५ । जन्म देने वाला और वेद पढ़ानेवाला इन दोनों में वेद पढ़ाने वाला बड़ा है वेद पढ़ने से जो जन्म होता है सो जित्य (अर्थात् नाश रहित) है । १४६ । माता पिता अपने काम के बस होकर पुत्र को उत्पन्न करते हैं इस लिए उत्पत्ति को योनि है । १४७ । जो जन्म गायत्री करके आचार्य करता है सो जन्म मत्त है अजर है असर है । १४८ । थोड़ा वा बड़ा वेद के पढ़ाने से जो उपकार करता है उस को भी गुरु जानना । १४९ । अपने वय में छोटा है और वेद को पढ़ाता है धर्म को सिखाता है वह भी गुरु कहाता है । १५० । अंगिरा के लड़का ने अपने चाचों को पढ़ाया और बेटा ऐसा कहा क्यो कि ज्ञान से बड़ा रहा इस लिए । १५१ । वे चाचा लोग क्रोध पाके देवताओं से पूछा सब देवताओं ने मिलके कहा कि तुमारे लड़के ने अच्छा कहा । १५२ । क्योंकि जो

वितथं ब्रह्मणाश्रवणावभौसमातामपिताग्रेयस्तन्नुदुहोत्कदाचन । १४४ । उपाध्यायान्दशाचार्यश्चाचार्याणां शतं पिता सहस्रं तु पितृन्मातागौरवेणातिरिच्यते । १४५ । उत्पादकब्रह्मदाचोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ब्रह्मजन्माहविप्रस्यप्रेत्यचेहचशाश्वतम् । १४६ । कामान्मातापिताचैनंयदुत्पादयतोमियः संभूतिं तस्यतांविद्याद्यघोनावभिजायते । १४७ । आचार्यस्त्वस्ययांजातिं विधिवद्देदारगः उत्पादयतिसावित्र्यासासत्यासाजरामरा । १४८ । अल्पंवाबहुवायस्यश्रुतस्योप करोतियः तमपीहगुरुंविद्याच्छ्रुतोपक्रिययातया । १४९ । ब्राह्मस्यजन्मनः कर्तास्वधर्मस्यचशासिता वालोपिविप्रोवृद्धस्यपिताभवतिधर्मतः । १५० । अथ्यापयामासपितृन् शिशुरांगिरसः कविः पुत्रकादतिहोवाचज्ञानेनपरिगृह्यतान् । १५१ । तेतमर्थमष्टच्छन्तदेवानागतमन्यवः देवाश्चेतान्समेत्योचुर्न्याय्यस्वः शिशुरुक्तवान् । १५२ । अज्ञोभवतिवैवालः पिताभवतिमंचदः अज्ञंहिवालमित्याहुःपितेत्येवतुमंचदम् । १५३ । नहार्यर्नैर्नपलितैर्नवित्तेननबंधुभिः ऋषयश्चक्रिरेधर्मोयोनूचानः सनेमहान् । १५४ । विप्राणां ज्ञानतोज्यैश्चांश्चिद्याणान्तुवीर्यतः वैश्यानांधान्यधनतः शूद्राणामेवजन्मतः । १५५ । नतेनवृद्धोभवतियेनास्यपलितंशिरः योवैयुवाप्यधीयानस्तन्देवाः स्थविरंविदुः । १५६ । यथाकाष्ठमयोहस्तीयथाचर्ममयोमृगः यथविप्रो नधीयानस्त्रयस्तेनामविश्रति । १५७ । यथापण्डोफलः स्त्रीपुयथागौर्गविचाफला यथाचात्रेफलंदानं तथाविप्रोऽन्तचाफलः । १५८ । अहिंसयैवभूतानांकार्यंश्रेयोनु-

कृष्ट नहीं जानता वह बालक कहाता है और जो मंत्र देता है सो पिता कहाता है । १५३ । घरम और केश का पाकना द्रव्य बन्धु इन सबों करके बड़ा नहीं होता किन्तु ऋषि लोगों ने यही धर्म कहा है कि हमारे सब में अंग महित वेद का पढ़नेवाला जो है मोई बड़ा है । १५४ । ब्राह्मणों में ज्ञान से बड़ाई है लक्षियों में दान से वैद्यों में धन धान्य से शूद्रों में जन्म से बड़ाई है । १५५ । केश के पकने से वृद्ध नहीं कहाता युवा है और पढ़े है उभी को देवताओं ने वृद्ध कहा है । १५६ । काष्ठ को हाथी चाम का मृग मूष ब्राह्मण इन तीनों के बल नाम ही को धारण करते हैं काम कृष्ट नहीं कर सकते । १५७ । जिस प्रकार से मण्डक मनुष्य स्त्रियों में निष्फल है और गौ गौ में निष्फल है जिस प्रकार से मूष ब्राह्मण को दान देना निष्फल है तिम प्रकार से वे पशु ब्राह्मण निष्फल है । १५८ । जिस में सब जीवों को

पीडा न हो ऐसा कल्याण करनेहार जो कर्म उस कर्म को आजा देना चाहिण और मधुर चिह्नन बाणी बोलना चाहिण धर्म की इच्छा करने वाल को । १५८ । जिसकी बाणी और मन शुद्ध है सर्वकाल में रहित है सो वेदान्त के फल को पाता है । १५९ । दुःखित हो तो भी ऐसी बात न बोलें कि जिस में किसी को मर्म पाव हो पराण के द्रोह कर्म में वृद्धि को न राखें जिस बात में किसी का जीव उद्वेग को प्राप्त हो ऐसी बात न बोलें । १६१ । सम्मानते ब्राह्मण उरता रहे विष की नाई और अपमान को इच्छा करें अमृत की नाई । १६२ । अपमान पाके सुख पूर्वक सोता है और सुख पूर्वक जागता है इस लोक में धूमता है और अपमान करनेवाला नाश को पाता है । १६३ । इस प्रकार में संस्कार को पाके धीरे धीरे गुरु कुल में बस करता ऊँचा ब्रह्म को प्राप्ति करने वाली तप को करे । १६४ । माला प्रकार के तप और व्रत को करके रहस्य (अर्थ तपोप्य वस्तु) सहित वेद को पढ़े । १६५ । ब्राह्मण तप करता ऊँचा वेद ही को पढ़े यही उस का परम तप है । १६६ ।

शासनम् वाक्चैवमधुराश्रयणाप्रयोज्याधर्ममिच्छता । १५८ । यस्यवाङ्मनसोऽनुद्वेगसम्पद्गुप्तेचसर्वदा सर्वैरसर्वमवाप्नोतिवेदान्तोपगतंफलम् । १५९ । नारुन्तुदः स्यादातोपिनपरद्रोहकर्मधीः ययास्योद्विजतेवाचानालोक्यान्तामुदीरयेत् । १६१ । सम्मानाद्ब्राह्मणोऽनित्यमुद्विजतेविषादिव अमृतस्येवचाकांक्षेदवमानस्यसर्वदा । १६२ । सुखं ह्यवमतः शेतिसुखंचप्रतिबुध्यते सुखश्चरति लोकेस्मिन्नवमंताविनश्यति । १६३ । अनेनक्रमयोगेनसंस्कृतात्माद्विजःशनैः गुरौवसन्सञ्चिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकन्तपः । १६४ । तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्चविधिचोदितैःवेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्योद्विजन्मना । १६५ । वेदमेषसदाभ्यस्येत्तपस्तप्सन् द्विजोत्तमः वेदाभ्यासोऽहिविप्रस्यतपः परमिहोच्यते । १६६ । आहैवसनखाग्रेभ्यः परमन्तप्यतेतपः यः सगर्व्यपिद्विजोऽधीते स्वाध्यायंशक्तितोऽन्वहम् । १६७ । योऽधीत्यद्विजोवेदमन्यचकुरुतेऽग्रमम सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वयः । १६८ । मातुरग्रेधिजननं द्वितीयमौजिवंधने तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्यश्रुति चोदनात् । १६९ । तच्चयद्ब्रह्मजन्मास्यमौजीवंधनार्चिन्हितमततचास्यमातासावित्रीपितात्वाचार्य्य उच्यते । १७० । वेदप्रदानादाचार्य्यमितरंपरिचक्षते न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौज्जिवंधनात् । १७१ । नाभिव्याहारयेद्ब्रह्मस्वधानिनयनाहते शूद्रेण हि स मस्तावद्यावद्देहेन जायते । १७२ । कृतोपनयनस्थास्यव्रतादेशनमिष्यते ब्रह्मणोऽग्रहणश्चैवक्रमेणविधिपूर्वकम् । १७३ । यद्यस्यविहितंचर्मयत्सूचंयाच मेखला योदण्डायच्चवसनं

पांव से लेके मख तक परम तप वह करता है जो माला पहिरे ऊँ भी वृद्धिमान शक्ति पूर्वक दिन दिन वेद को पढ़ता है ब्रह्मचारी को माला पहिरना निषिद्ध है इस लिए निषिद्ध कर्म करके भी वेद को पढ़े तो भी वह तप ही है । १६७ । जो ब्राह्मण वेद का पढ़ना छोड़के शास्त्रों के पढ़ने में परिश्रम करता है सो जीता ऊँचा अपने वंश सहित शूद्र के भाव को प्राप्त होता है । १६८ । वेद में यह बात है कि ब्राह्मण का जन्म तीन है प्रथम माता से दूसरा यज्ञोपवीत होने से तीसरा यज्ञ करने से । १६९ । तिस में जो यज्ञोपवीत होने से जन्म है उस में गायत्री माता है आचार्य्य पिता है । १७० । वेद के देने से आचार्य्य पिता कहाता है जब तक यज्ञोपवीत नहीं होता तब तक उस लड़के का अधिकार कोई काम में नहीं होता । १७१ । यज्ञोपवीत के भण बिना लड़के का अधिकार आहु करने में होता है

और तब तक शृङ्ग के समान होता है । १७२ । चओपवीत के उपरान्त व्रत करना चाहिए और विधि पूर्वक नैवेद्य ग्रहण करना चाहिए । १७३ । जिस का जो चर्म जो सूत्र जो मेखला जो दाण्ड जो बख है भाई व्रत में भीर है । १७४ । ब्रह्मचारी गुरु कुल में वास करता हुआ इन्द्रियों को बस करके अपने तप के वर्ज के लिए भागे जो कहेंगे नियम उस को सेवन करें । १७५ । नित्य ही स्नान करके पवित्र होकर देव ऋषि पितरों का तर्पण करें देवतों का पूजन करें अग्नि में लकड़ी डाले । १७६ । मधु खांस गंध माला रस खाए और शुक्ल (अर्थात् जो स्वभाव से सफ़ेद है) काल पाके उल्लूक करके आदित्य हो जावे) प्राणियों का मारना । १७७ । अवटग काजल जूता हाता काम क्रोध लोभ नाच गीत बाजा । १७८ । जृष्णा ऋगङ्गा पराण का झूठा दोष कहना स्त्रियों को देखना और शिल्पा पराण का नाश इन सब को बगवे । १७९ । अकेला मोवे वीर्य को न गिरावे और जो दृच्छा से वीर्य को गिराता है सो अपने व्रत को नाश करता है । १८० । मृग में बिना इच्छा से वीर्य गिरा होता नहा के सूर्य को पूजा करके पुनर्भा दम संघ को तीसरे जप करें । १८१ । जल का घड़ा पुण्य गावर मांटी कुशा इन सब को

तत्तदस्य व्रतेऽपि । १७४ । सेवेतेमांस्तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन सन्नियम्येन्द्रियग्रामन्तपोऽर्च्यमात्मनः । १७५ । नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च । १७६ । वज्रयेन्मधुमांसं च गंधं माल्यं रसान्स्त्रियः शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनाश्चैव हिंसनम् । १७७ । अभ्यक्तमञ्जनञ्चाशुणोरुपानच्छत्वधारणम् कामं क्रोधं लोभं च नर्तनं क्रोतवादनम् द्यूतञ्च जनवादञ्च परिवादन्तश्चानृतम् स्त्रीणाञ्च प्रेक्षणं लम्भमुपघातम्यरस्य च । १७८ । एकः शयीत सर्वचरैः तैः स्कन्दयेत्कचित् कामाद्विस्कन्दयन् रेतो हि नास्ति व्रतमात्मनः । १८० । स्वप्नेऽपि त्का ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः स्नात्वा कर्मचर्यं दत्त्वा चिः पुनर्मांसितुं च श्रेयते । १८१ । उदकुम्भं मुनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान् आहरेद्यावदर्थानि भैक्षञ्चाहरहश्चरेत् । १८२ । वेदयज्ञैरहीना गां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ब्रह्मचाव्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतो न्वहम् । १८३ । गुरोः कुलं न भिक्षेत न जाति कुलवंधुषु अलाभे त्वन्यगेहानाम् पूर्वम्पुर्वस्मिन् व्रजेत् । १८४ । सर्वस्वापि चरेद्भाम्पुर्वीक्तानामसंभवे नियम्य प्रयतो वाचमभि शस्तांस्तु व्रजेत् । १८५ । दूरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद्विहाय सि सागम्यात्तश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः । १८६ । अकृत्वा भैक्षचरणमसमि-

अपने कार्य के अनुसार ल्यावे और भिक्षा को नित्य ही मांगे । १८७ । जो अनुग्रह वेद और यज्ञ और अपने अच्छे कर्मों से सज्जित हो उसी को गृह में भिक्षा ल्यावे । १८८ । गुरु के कुल में जाति के कुल में बन्धु के कुल में भिक्षा न मांगे दूसरे गृह में न मिल सके तो पहिले पहिले का कोड़ा देवे । १८९ । जो स्व कहि आए हैं इन सबों का अभाव हो तो सब गाँव में भिक्षा मांगे और जो के इन्द्रियों को बस करके परन्तु पापियों का गृह कोड़ा देवे । १९० । दूर से लकड़ी लाकर आकाश में गाँवे उसी लकड़ी में सायंकाल में और प्रातःकाल में होम करे आलस्य को कोड़ा देवे । १९१ । समर्थ रहते होते मातृ दिन तक भिक्षा न मांगे और अग्नि में होम न करे तो अब कीर्त्तिका का व्रत जो आगे कहेंगे उस व्रत को करे । १९२ । भिक्षा मांग के नित्य ही भोजन करे परन्तु एक ही के अन्न न भोजन करे भिक्षा मांग के भोजन करगा उपवास के सम है । १९३ । विगवे देव कर्म के निमित्त अथवा पितृ कर्म के निमित्त निमंत्रित हो तो आहुति में इच्छा पूर्वक भोजन करे परन्तु

दोनों कर्म में कम से ब्रती की नार्हें और पदियों की नार्हें रहे अर्थात् व्रत में जैसे मधु मांस आदिक का भोजन निषिद्ध है तैसे ही रहे और क्षपि क्षपि पत्नी तिमकी नार्हें मधु मांस आदि का वर्जन करे यह कर्म में उसके व्रत का लोप नहीं होता) । १८८ । आहु में भोजन करना यह ब्राह्मण ही का काम है और क्षत्रिय वैश्य ब्रह्मचारिणों का नहीं है । १८९ । गुरु की आज्ञा हो चाहें हो परन्तु वेद के पढ़ने में और गुरु के दित कर्म में यत्न करे । १९० । गुरु की मुख की देखता ऊँचा शरीरवाणी बुद्धि इन्द्रिय मन इन सब का वश करके हाथ जोड़े खड़ा रहे । १९१ । आठनें का जो बख है उसके बाहर दक्षिण हस्तकी शिथ्य ही लिए रहे माधु की नार्हें आचार महित रहे चंचलता को छोड़े रहे बैठे ऐसी आज्ञा गुरु की हो तब उन के सम्मुख बैठे । १९२ । गुरु की समीप मर्ष काल में हीन अन्न और हीन वस्त्र में और हीन स्वरूप में रहे (अर्थात् जैसा अन्न गुरु भोजन करें उससे निष्ठुर अन्न भोजन करें और जैसा वस्त्र गुरु पहिरे उससे निष्ठुर वस्त्र पहिरे और जैसा स्वरूप गुरु बनाए रहे उससे निष्ठुर स्वरूप अपना बनाए रहे) गुरु के जागने के पछिले जागे और गुरु के भोजन के पीछे भाये । १९३ । सोता आसन पर बैठा भोजन

ध्यक्षपावकम् अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णव्रतश्चरेत् । १८७ । भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादीभवेद्वती भैक्ष्येण व्रतितो वृत्तिरूपवा-
ससमास्मता । १८८ । व्रतवदेव देवत्येपि चैकस्मिन् यथर्षिवत् काममभ्यर्थितोऽग्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते । १८९ । ब्राह्मणस्यैव कर्मेतदुप-
दिष्टं मनीषिभिः राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्माविधीयते । १९० । चोदितो गुरुणानित्यमप्रचोदितश्च वक्तव्यं दध्यन्नेदत्तमा-
चार्यस्य हितेषु च । १९१ । शरीरश्चैव वाचश्च बुद्धीन्द्रियमनांसि च नियम्य प्राञ्जलिं स्थिष्टे द्विष्यमाणो गुरोर्मुखम् । १९२ । नित्यमुद्ध-
तपाणिः स्यात्साध्याचारः सुसंयतः आस्यतामिति चोक्तस्सन्नासीताभिमुखं गुरोः । १९३ । हीनान्नवस्त्रवेपः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ
उत्तिष्ठेत्प्रथमश्चास्यचरमश्चैव सन्निधौ । १९४ । प्रतिश्रवणं सम्भाषणं नानासमाचरेत् नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नपराङ्मुखः ।
१९५ । आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तुतिष्ठतः प्रत्युज्जम्पता व्रजतः पश्चाद्वा वस्तुधावतः । १९६ । पराङ्मुखस्याभिमुखो दृग्-
स्थस्यैव चान्तिकमप्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः । १९७ । नीचं शय्यासनश्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ गुरोस्तु चक्षुर्विषये न य-
थेष्टासनो भवेत् । १९८ । नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् न चैवास्यानुकुर्वीत गतिर्भाषितर्चाष्टतमः । १९९ । गुरोर्य उप-

करता और विमुख (अर्थात् मुख फेरे) ऊँचा गुरु से न बोले और गुरु की बात न सुनें किन्तु । १९५ । गुरु बैठे हैं तो आप टाट होकर बोलें और बात को सुनें गुरु खड़ा होता आप डोलता ऊँचा बातों को कहें और गुरु डोलते हैं तो सम्मुख जाकर बोलें और बात को सुनें जो गुरु दौड़ते हैं तो आप भी पीछे दौड़कर बोलें और बात को सुनें । १९६ । गुरु विमुख है तो उन के सम्मुख जाकर और दूर है तो समीप आकर जाएँ तो प्रणम कर आज्ञा को लें । १९७ । गुरु की समीप में शय्या अगर न अपना नीचे रखें गुरु के देखते हुए जैसा चाहें तैसा आसन करके न रहें । १९८ । गुरु के पीछे भी केवल उसके नाम को न लें और गुरु के शयन शयण पेटा की नार्हें आप यह तीनों कर्म को न करें । १९९ । जहाँ गुरु का सखा वा झूठा दोष कहा जाता हो वा बिंदा होती हो तहाँ कान्त रावना अथवा दह्ये से उड़ जाय ।

२०० । गुरु का मसा वा झूठा दोष कहने से गदहा होता है और निंदा करने से कुत्ता होता है अनुचित गुरु का धन भोजन करने से कंटा कीड़ा होता है और गुरु की बड़ाई को नहीं सहि सकता सो बड़ा कीड़ा होता है । २०१ । गुरु की पूजा दूर से (अर्थात् किसी से पूजा की मामूली भंज के) न करना और कुछ होके न करना अपनी स्त्री के समीप हो तो भी न करना आप सवारी पर होवा आसन पर बैठा हो तो सवारी से उतर के और आसन को कंहा के प्रणाम करें । २०२ । जो मनुष्य गुरु के देश से शिष्य के देश में आया है और जो शिष्य के देश से गुरु के देश में गया है इन दोनों मनुष्यों के समीप में गुरु के साथ शिष्य न रहे जो बात गुरु को सुनने में न आवे ऐसी कोई बात गुरु की वा और की न कहें (अर्थात् गुरु से क्लिपा कर कोई बात न कहें) । २०३ । बेल घाहा ऊंट इन करके युक्त जोयान (अर्थात् रथ गाड़ी) तिस पर और अटारी चटाई पाथर काठ नाव इन सबों पर गुरु के साथ बैठें । २०४ । गुरु के गुरु में भी गुरु की नाई आचरण करें और गुरु की आज्ञा बिना अपने देश में आण रुण चाचा आदि को प्रणाम न करें । २०५ । इसी प्रकार से आचार्य का कंहा कर उपाध्याय आदि

रीवादीनिन्दावापिप्रवर्तते कर्णौ तर्चापधातव्यौगन्तव्य स्वातन्त्र्यतः । २०० । परीवादात्खरी भवति श्रवावैभवति निन्दकः परिभोक्ता हृमिर्भवति कीटो भवतिमत्सरी । २०१ । दूरस्थानार्चयेदेनं नक्रुद्धोनातिकेस्त्रियाः यानासनस्थैवैनमवरुह्याभिवादयेत् । २०२ । प्रतिवातेऽनुवातेवनासीतगुरुणासह असंश्रयेचैवगुरोर्नकिञ्चिदपिकीर्तयेत् । २०३ । गोऽश्वोऽप्ययानप्रासादस्तरेषु कटेपुष आसीतगुरुणासाङ्गं शिलाफलकनौपुच । २०४ । गुरोर्गुरौसन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् नचानिष्टष्टां गुरुणास्वान् गुरुनभिवादयेत् । २०५ । विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यावृत्तिः स्वयेनिपु प्रतिपेधत्सुचाधर्मान् हितंचोपदिशत्स्वपि । २०६ । श्रेयस्सुगुरुवद्वृत्तिं नित्यं मेव समाचरेत् गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबंधुषु । २०७ । वालः समानजन्मावाशिष्यो वायज्ञकर्मणि अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुदन्मानमर्हति । २०८ । उत्सादनञ्च गात्राणां स्नापनोच्छिष्ट भोजने न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावने जनम । २०९ । गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युस्तवर्णा गुरुर्योपितः असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः । २१० । अभ्यञ्जनं स्नापनञ्च गात्रात्सादनमेव च गुरुपत्न्या नकार्याणि केशानाञ्च प्रसाधनम् । २११ । गुरुपत्नीतु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः पूर्णविंशति वर्षेण गुण दोषौ विजानता । २१२ ।

दश गुरु हैं और संबंधी जो चाचा आदि हैं और जो अधर्म से बचाते हैं और जो हित बात का उपदेश करते हैं इन सबों में नित्य ही गुरु की नाई सब व्यवहार रखे । २०६ । जो बड़े लोग हैं और श्रेष्ठ जो गुरु पुत्र हैं और जो गुरु के बंधु जन हैं इन सबों में गुरु की नाई आचरण करें । २०७ । गुरु का पुत्र अपने बचमे कंटा हो वा बड़ा हो और पढ़ाने में समर्थ हो और अपनी यज्ञ दर्शन के लिये आवे तो उसका मान गुरु की नाई करना चाहिये । २०८ । स्नान कराना उबटन लगाना अठ्ठा भोजन करना पांव धोना ये सब काम गुरु पुत्र का न करना । २०९ । सवर्णा जो गुरु पत्नी हैं उस को पूजा गुरु की नाई करना और असवर्णा जो हैं उस की पूजा तो उठ के प्रणाम करें इतना ही है । २१० । गुरु की स्त्री को तेल और उबटन न लगावे स्नान कराना केश पसारना ये भी न करें । २११ । जो शिष्य बीस वर्ष का हो और गुण दोष को जानता हो वह युवती गुरु पत्नी का पांव पकड़ के प्रणाम न करें । २१२ । मनुष्यों को दुषित करना यह नाशियों का स्वभाव ही है

इस लिये पंडित लोग स्त्री के विषय में सावधानता में रहते हैं । २१३ । काम क्रोध सहित हो पंडित वा मूर्ख हो तो उस को निषिद्ध राह पर लेजाने को स्त्री लोग समर्थ हैं । २१४ । माता भगिनी लड़की इन सबों के साथ एकांत में न रहना इंद्रिय मग्न बनवान हैं पंडितों को भी खींचती हैं । २१५ । युवती गुरु पत्नी को युवा शिष्य इच्छा पूर्वक विधि में से फलाना हं ऐसा कहता ऋषि भूमि में बंदना करें । २१६ । मन्त्रों के धर्म को स्मरण करता ऋषि शिष्य विदेश में आके गुरु पत्नी का पांव पकड़े और प्रणाम तो प्रति दिन करें । २१७ । जिस प्रकार में कुदारी में खनते खनते जल का मनुष्य पाता है तिम प्रकार में सेवा करते करते गुरु की संपूर्ण विद्या का शिष्य पाता है । २१८ । मूढ़ मूढ़ाण वा जटा रखाये अथवा शिखा को जटा मद्गुण बनाए हो परन्तु ब्रह्म चारी को ग्राम में रहते ऊँ सूर्य उदय को और अल को न प्राप्त होवे किंतु ग्राम से बाहर जब ब्रह्म चारी जावे तब ये दोनों कर्म होते । २१९ । कदाचित् ब्रह्म चारी के ग्राम में रहते ऊँ ये दोनों

स्वभाव शयनारीणां नराणामिह दृपणम अतोर्थान्नप्रमाद्यंति प्रमदासु विपर्ययतः । २१३ । अविद्यां समलंनो के विद्वांसमपि वापुनः प्रमदाद्दृप्यथन्नेतुं कामक्रोधवशानुगम् । २१४ । मातास्वखादुहित्रा वानविविक्तासनी भवेत् वलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपकर्षति । २१५ । कामंतुगुरुपत्नीनां युवतीनां युवाभुवि विधिवद्वंदनं कुर्यादसादृशमिति ब्रुवन । २१६ । विप्रोऽथ पादग्रहणमन्वहंचाभिवादम् गुरुदारेपु कुर्वीत सतात् धर्ममनुस्मरन् । २१७ । यथा खलन्खनि चेन्न नरो वार्यधिगच्छति तथा गुरुगताम्बिद्यां श्रुश्रुपुरधिगच्छति । २१८ । मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखा जटः नैनं ग्रामेभिर्निस्त्राचैर्मृत्सूर्यानां भुदियात्कचित् । २१९ । तच्चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः निस्त्राचैर्वाप्यविज्ञानाच्च पन्नुपवसेदितनः । २२० । सूर्यो गच्छाभिर्निर्मुक्तः शयानो भ्युदितश्च यः प्रायश्चित्तम् कुर्वीणो युक्तः स्यान्महत्तै नमा । २२१ । आचम्य प्रयतो नित्यमुभे संध्यो समाहितः शुचौ देशे जपन् जप्पमुपासीत यथाविधि । २२२ । यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चित्समाचरेत् तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वा स्थिरमेतनः । २२३ । धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थो धर्म एव च अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः । २२४ । आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः माता पृथिव्या मूर्तिस्तु आतास्वो मूर्तिरात्मनः । २२५ । आचार्यश्च पिता चैव माता आता च पूर्वजः नार्तेनाप्यदम-

कर्म होवे तो जप करता ऋषि उस दिन उपवास करें । २२० । यह दोनों कर्म भण पोक पूर्व कथित जो प्रायश्चित्त है उसको न करें तो बड़े पाप में युक्त होता है । २२१ । आचमन करके दोनों संध्या में एकाग्र चित्त होकर पवित्र देश में विधि पूर्वक गायत्री का जप करें । २२२ । जो अथवा जटा मनुष्य कोई ऋद्धी बात करता हो तो उस बात को ग्रहण करें अथवा शास्त्र में अविद्वद् जो कर्म है उस में पुरुष का मन संतुष्ट हो सो कर्म करें । २२३ । किसी के मत में धर्म और अर्थ ये दोनों कल्याण करन हार हैं किसी के मत में अर्थ और काम कल्याण करन हार है अथ अपाना एत दाहते ये कि धर्म अर्थ काम ये तीनों परस्पर अविद्वद् हैं पुरुषार्थ साधनता करके कल्याण कारक है (अर्थात् पुरुष का सब वस्तु यही तीनों में होता है) । २२४ । आचार्य परमात्मा की मूर्ति है पिता ब्रह्मा की मूर्ति है माता पृथिवी की मूर्ति है महादेव भाई अपनी मूर्ति है । २२५ । आचार्य पिता जटा भरोदर भाई ये

तीनों का अपमान आप दुःखित हो तो भी न करें ब्राह्मण तो तो अपमान यह पाता है । २२६ । मनुष्य के उत्पत्ति समय में जा केश माता पिता मरते हैं उस केश से उरिण सत्र जन्म के उपकार से भी नहीं हो सपता इस निमित्त से सब देवता रूप हैं इन्हीं का अपमान न करना चाहिये । २२७ । माता पिता आचार्य यह तीनों का प्रिय वित्त ही करना तीनों के संतुष्ट होने में सब तपस्या समान होती है । २२८ । यही तीनों की सेवा परम तप है इन्हीं की आज्ञा बिना कोई दूरग धर्म नहीं करता । २२९ । तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि यही तीनों हैं । २३० । गार्हपत्य अग्नि पिता हैं दक्षिण अग्नि माता हैं आहवनीय अग्नि गुरु हैं यह तीनों अग्नि वज्रत बड़ी हैं । २३१ । यह तीनों के विषय में सावधानता से रहने में तीनों लोक को जीतता है बड़ा तेजस्वी होकर देवताओं की नाई स्वर्ग में आनंद करता है । २३२ । माता पिता गुरु यह तीनों की भक्ति में क्रम करके भू लोक अंतरिक्ष लोक ब्रह्म लोक को पाता है । २३३ । जिस मनुष्य ने

नित्याब्राह्मणेन विज्ञेयतः । २२६ । यमाता पितरौ केशं सहेते सम्भवेष्टणाम नतस्यनिष्कृतिः शक्याकर्तुस्वर्पणतैरपि । २२७ । तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा तेष्टेवचिपु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते । २२८ । तेषां चयाणां शुश्रूषापरमन्त ए उच्यते नतैरभ्यननुज्ञातोधर्ममन्यं समाचरेत् । २२९ । त एवहि चयोलोकास्त एव चय आश्रमाः त एवहि चयोवेदास्त एवोक्तास्त्र योन्नयः । २३० । पिता वैगाहं पत्योऽग्निमाताग्निर्दक्षिणः स्मृतः गुरु राहवनीयस्तु साग्निचेतागरीयसी । २३१ । चिष्टब्रमाद्यन्ने तेषां त्रिंलोकान्विजयेद्बृहद्दीप्यमानः स्वपुपादेववद्विषोदते । २३२ । इमं लोकं मातृ भक्त्या पितृ भक्त्या तु मध्यमम् गुरु शुश्रूषया त्वेवम्ब्रह्म लोकं समश्नुते । २३३ । सर्वं तस्याहता धर्मायस्यै तेचय आहताः अनाह तास्तु यस्यैते सर्वस्तस्याफलाः क्रियाः । २३४ । यावत्त्रयस्ते जीवे युस्तावन्नान्यं समाचरेत् तेष्टेवनित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहितैरतः । २३५ । तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनो वचन कर्मभिः । २३६ । चिष्टेते क्षिति हृत्यंहि पुरुषस्य समाप्यते एष धर्मः परः साक्षादुप धर्माऽन्य उच्यते । २३७ । अहधानः शुभां विद्यामाददीताव रादपि अन्यादपि परं धर्मं स्त्री रत्नं दुष्कुलादपि । २३८ । विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः । २३९ । स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचंसु भाषितम् विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः । २४० । अब्राह्मणा दध्ययन

इन तीनों का आदर किया उस के सब धर्म आदर को पा चुके और जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर नहीं किया उस का सब क्रिया निष्फल भई । २२४ । जब तक ये तीनों जीते रहें तब तक स्वतंत्र होकर दूरग धर्म न करें उन्हीं की सेवा और हित और प्रिय को करें । २२५ । इन्हीं की सेवा पूर्वक दूरग धर्म भी करें तो मन वाणी कर्म करके उन्हीं में कर्हि दें । २२६ । यही तीनों में पुरुष के करने की जो वस्तु है सो हो जाती है यही साक्षात्कर्म है और तो उपधर्म है । २२७ । अह्ना करते उष्ट्र सुंदर विद्या को नीच से भी लेना और चांडाल से भी परम धर्म को लेना स्त्री सुंदरी को दृष्ट कुल से भी लेना । २२८ । बिप बालक शत्रु इन सबों में क्रम करके अमृत सुंदर वचन सुंदर आचरण सुवर्ण इन सब को ग्रहण करना । २२९ । स्त्री रत्न विद्या धर्म पवित्रता सुंदर वचन नाना प्रकार की कारीगरी इन सब को जहाँ से मिलें वहाँ से लेना । २३० । आपत काल आके पड़े तो चंचिय आदि से ब्राह्मण पढ़ें जब तक पढ़ें तब तक उस गुरु के पीछे चर्मा और

सेवा करे । २४१ । उत्तम गति की आकांक्षा करता हुआ मनुष्य जत्रिय आदि गुरु के समीप में और मूर्ख ब्राह्मण के समीप में भी अत्यंत वास न करे । २४२ । जब गुरु कुल में अत्यंत दाम की इच्छा करे तब रावधानता से जब तक शरीर त्याग न हों तब तक सेवा करत वास करे परंतु ब्राह्मण गुरु के कुल में यह वैदिक ब्रह्मचारी कहाता है । २४३ । जो ब्रह्मचारी शरीर त्याग पर्यंत गुरु की सेवा करता है सो परित्यक्त बिना अधिपति जो ब्रह्म लोक है उसको पाता है । २४४ । धर्म का जानने वाला ब्रह्मचारी जब तक पढ़ता रहै तब तक सेवा कीड़ के दूर से उपकार गुरु का न करे जब पढ़ चुके तब समावर्तन के निमित्त (अर्थात् परम के समाप्ति में पितृ कुल में आने के लिये दिवाह के अर्थ) स्नान करता हुआ गुरु की आज्ञा पाके जो गुरु मांगे सो दक्षिणा शक्ति पूर्वक देवे । २४५ । गुरु को प्रसन्न करता हुआ भूमि मुक्त हो जाता जाता जूता आसन साग वस्त्र इन

मापत्काले विधीयते अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं कुरोः । २४१ । नात्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत् ब्राह्मणे चाननूचानेकाङ्गनगतिमनुत्तमाम् । २४२ । यदित्वात्यन्तिकं वासो राचयेत् गुरोः कुले युक्तः परिचरेदेन माशरीरविमोक्षणात् । २४३ । आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तुशुश्रूषते गुरुम् स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्यशाश्वतम् । २४४ । न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मेदित् स्यात्संस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्यागुर्वर्थमाहरेत् । २४५ । शेषं हिरण्यं गामश्वं छचोपानहमासनम् धान्यं शाकं च त्रासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् । २४६ । आचार्यं तु खलुप्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवहून्तिमाचरेत् । २४७ । एतेष्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवानप्रयुञ्जानोग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः । २४८ । एवञ्चरतियो विप्रो ब्रह्मचर्यं सविभुतः स गच्छत्युत्तमं स्थानं नचेहाजायते पुनः । २४९ । इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

षट्त्रिंशदाब्दिकंचर्यं गुरौचैवेदिकम्वृतम् तद्विदिकम्यादिकम्वाग्रहणान्तिकमेववा । १ । वेदानधीत्यवेदौवावेदस्वापियथाक्रमम

सभ को देवे । २४६ । आचार्य के सम्पत्तितर गुरुपुत्र गुण करके युक्त हो वा गुरु को खो हो किम्वा गुरु के सपिण्ड (अर्थात् संबंधी) हो तो इन सबों के गुरु की नाई मानना । २४७ । और जो वैदिक ब्रह्मचारी है सो इन सबों के अभाव में गुरु के त्याग और आसन में विहार करता हुआ अग्नि की सेवा करता अपने देह का साधन करे (अर्थात् जीव को ब्रह्म प्राप्ति योग्य करे) । २४८ । इस प्रकार से जो ब्राह्मण अखंडित ब्रह्मचर्य को करता है सो उत्तम स्थान में जाता है संसार में फिर नहीं आता है । २४९ । इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लुक भट्ट व्याख्यानमुमादिनां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारिकायां श्री मत्कमनो संस्कृत पाठ शालोय धर्म शास्त्रि गुलजार शर्मा पण्डित कृतायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

किसी वर्ष तक अथवा अठारह वर्ष तक वा नव वर्ष तक किम्वा जब तक वेद रक्षण न करे तब तक तीनों वेद के पढ़ने का व्रत करना योग्य है । १ ।

तीनों वेद को वा दो वेद को अथवा एक ही वेद को क्रम में पढ़के अर्वाण्डत अतः वाला पुरुष गृहस्थाश्रम में आवे । २। धर्म का अनुष्ठान करने में प्रसिद्ध जो ब्रह्मा चारी हो और पिता से वेद पढ़ा हो (अर्थात् पिता में पढ़ना मुख्य है और आचार्य आदि से पढ़ना तो गौण है पिता पढ़ने के योग्य न हो तो आचार्य आदि से पढ़ना) माला पहिरे हो शय्या पर बैठा हो तो उस को गो मार के उस के रक्त से मधुपर्क बनाके पूजन करे आचार्य वा पिता । ३। गुरु की आज्ञा पाके स्नान करके विधि से समावर्तन कर्म का प्राप्त होके अपने वर्ण की लक्षण सहित जो कन्या है उससे विवाह करे । ४। जो कन्या माता की सपिण्ड न हो (अर्थात् मातृ कुल के संबंध में पांच पुरुष के भीतर न हो और माता की संगोत्रा न हो) (अर्थात् जब तक जन्मनाम का ज्ञान रहे वंश में तब तक गोत्र कहता है उस में न हो) पिता के गोत्र में और पिता के सपिण्ड में न हो (अर्थात् पितृ कुल के संबंध में मातृ पुरुष के भीतर न हो सपिण्ड शब्द का अर्थ यह है कि पिण्ड कहिए देह तिस का जो अवयव कहिए हाथ पांव नासिका आदि ये सब लड़का लड़की में माता पिता का आता है सो साक्षात् वा परंपरा करके जिस में रहे सो सपिण्ड कहाता है जैसे माता पिता का हस्तपाद आदि पुत्र और कन्या में साक्षात् आता है और पौत्र पौत्री में परंपरा से आता है जैसे पिता का हस्त

अविश्रुतब्रह्मचर्यागृहस्थाश्रममाविसेत् । २ । तस्युतीतस्वधर्मेणब्रह्मदायहरम्पितुः सग्विणंतल्पआसीनमर्हयेत्यथमङ्गवा । ३ । गुरुणानुमतः स्नात्वासमावृत्तो यथा विधि उद्वहेतद्विजोभार्यासवर्णां लक्षणान्विताम् । ४। असपिण्डाचयामातुरस गोचाचयापितुः साप्रशस्ताद्विजातीनांदारकर्मणिमैथुने । ५ । महान्यपिसमृद्धानिगोजाविधनधान्यतः रुचीसंवन्धेदशैतानिकुलानिपरिवर्जयेत् । ६ । हीनक्रियानिष्ठरूपं निष्ठन्दारोमशार्शसम् शय्यामयाव्यपस्मारिशिवचिकुष्ठिकुलानिच । ७ । नोद्वहेत्कपिलांकन्यानाधिकाङ्गीनरोगिणीम नालोमिकांनातिलोमानवाचाटान्नपिङ्गलाम् । ८ । नर्क्षदृक्षनदीनाम्नीनान्यपर्वतनामिकाम् नपक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं नचभीषणनामिकाम् । ९ । अव्यङ्गाङ्गीसौम्यनाम्नीहंसवारणगामिनीम् तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्वहे-

पाद आदि पुत्र में आया और पौत्र में पुत्र का हस्त पाद आदि गया तो वह हस्त पाद आदि पिता महकाठहरा पुत्र के द्वार से यह परंपरा कहाता है इसी प्रकार से सत्र का जानना ऐसी कन्या ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों को दारकर्म और मैथुन कर्म में अच्छी है (अर्थात् जो कर्म स्त्री पुरुष दोनों में होता है जैसे अग्निहोत्र और पुत्रोत्पादन इस कर्म में प्रशस्त है । ५। गो वकरी धन अन्न इन्ह सबों करके बड़ी संपत्ति से युक्त हो तो भी जो आगे दशकुल कहेंगे उस में विवाह न करना । ६। हीन है क्रिया जिस में और पुरुष से रहित है वेद का पढ़ना जिस में नहीं है वज्रत गोम वाले पुरुष और स्त्री जिस में है वावसीर की बीमारो जिस कुल में है लथी (अर्थात् राजयज्ञा) अग्निमंदता गृही अंतकुष्ठ और जो अनेक प्रकार के कुष्ठ हैं इन सभी में से कोई रोग करके युक्त कुल हो तो पूर्ण कथितधनधान्य आदि से युक्त भी हो तो उस कुल में विवाह न करना । ७। कपिल वर्ण की अधिक अंग की (अर्थात् हजुरी) रोगिणी बिना रोम वाली अति लोम वाली वज्रत बालने वाली पिङ्गल वर्ण वाली । ८। नक्षत्र वृक्ष स्नेह पर्वत पक्षी सर्प दास भयानक इन सभी के नाम की नार्द जिस का नाम है उस में विवाह न करना । ९। अंग से हीन न हो और सुंदर जिस का नाम हो हंस और हाथी की गति के समान जिस की गति हो केश लोम दांत

जिस का स्पर्श हो उससे विवाह करना । १० । जिस कन्या के भाई न हो और पिता का नाम न जाना हो उस से विवाह न करना पुत्रि का करण शंका करके और अधर्म शंका करके (अर्थात् विना भाई की कन्या से विवाह करने में पहिला लड़का उस कन्या के पिता का कर्णवंग और पिता के नाम जानें विना अधर्म होगा । ११ । ब्राह्मण छत्रिय वैश्यों के अपाने जाति की स्त्री से विवाह करना श्रेष्ठ है और काम से और जाति की कन्या से विवाह करे तो आगे जो रीति कहेंगे उस रीति से करे परंतु वह श्रेष्ठ नहीं है । १२ । शूद्र के एकही भार्या है (अर्थात् अपने ही वर्ण की है) वैश्य के दो एक अपने वर्ण की और एक शूद्र वर्ण की छत्रिय के तीन एक अपने वर्ण की दो पूर्व वर्ण की ब्राह्मण के चार एक अपने वर्ण की तीन पूर्व वर्ण की । १३ । अब निषेध करते हैं आपत्काल में भी ब्राह्मण छत्रिय को शूद्र वर्ण की भार्या कोई इतिहास में नहीं है । १४ ।

ब्राह्मण छत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण मोह में हीन जाति की कन्या से विवाह करें तो मंतान सहित अपने कुल को झट पट अकुल कर डारते हैं । १५ । शूद्र

स्त्रिचयम् । १० । यस्यास्तुनभवेद्भातानविज्ञायेतवापिता नोपयच्छेतताम्प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया । ११ । सवर्णाग्नेदिजातीनांप्रशस्तादारकर्मणि कामतस्तुप्रवृत्तानामिमाःस्युःक्रमशोवराः । १२ । शूद्रैवभार्याशूद्रस्यसाक्षिचविशःस्मृते तेचस्वाचैवराक्षसताश्चस्वाचाग्रजन्मनः । १३ । नब्राह्मणश्चत्रिययोरापद्यपिहितिष्ठतोः कस्मिंश्चिदपिदृष्टान्तेशूद्राभर्योपदिश्यते । १४ । हीमजातिस्त्रिचयंमोहादुद्धहन्तेहिजातयः कुलान्येवनयंत्याशुससन्तानानिशूद्रताम् । १५ । शूद्रावेदीपतत्यचेरुतपुत्रतनयस्यच शौमकस्यसुतोत्पत्यातदपत्यतयामृगोः । १६ । शूद्रांशयनमारोप्यब्राह्मणोयात्यधोगतिम् जनयित्वासुतंतस्यांब्राह्मण्यादेवहीयते । १७ । दैवपित्र्यातियेयानितत्प्रधनानियस्यतु नाश्रंतिपितृदेवास्तन्नचस्वर्गसगच्छति । १८ । वृषलीफेनपीतस्यनिःश्वासोपहतस्यच तस्यांचैवप्रसूतस्यनिष्कृतिर्नविधीयते । १९ । चतुर्णामपिवर्णानाम्प्रेत्यचेरहिताहितान् अष्टाविमान्सम्भसेनस्त्रीविवाहान्

की कन्या के भाय विवाह करने में पतित होता है यह अत्रि ऋषि का मत है और आतप्य ऋषि का भी यही मत है और उस कन्या में पुत्र होने से पतित होता है यह श्रौतक ऋषि का मत है और पौत्र होने से पतित होता है यह भृगु ऋषि का मत है । १६ । शूद्र की कन्या को शय्या में रख के ब्राह्मण नरक में जाता है और उसमें पुत्र होने से ब्राह्मण के कर्म में हानि होती है । १७ । जिस ब्राह्मण को दैवपितृ कार्य में शूद्र की कन्या प्रधान है (अर्थात् उस कार्य को बही करती है) उस का दिया हव्य और कव्य को देवता और पितर ग्रहण नहीं करते और वह ब्राह्मण स्वर्ग नहीं जाता देवता को देने योग्य वस्तु को हव्य कहते हैं और पितरों को देने योग्य वस्तु को कव्य कहते हैं । १८ । शूद्र की कन्या के आठ को जिस ब्राह्मण ने पुत्रन किये और उस कन्या के श्वास में उस ब्राह्मण का मुखरत भया और पुत्र रूप हो कर आप उस में उत्पन्न भया (अर्थात् पुत्र जो होता है सो अपना स्वरूप है मानो आपही उस में उत्पन्न होता है) उस ब्राह्मण का प्रयश्चित्त (अर्थात् उसपाप को कटने की उपाय) शास्त्र में नहीं है । १९ । चारों वर्णों के इसी लोक में और परलोक में हित अहित करने वाला आठ प्रकार का विवाह है उस को हे ऋषि लोगों हम से जानिए यह बात को भृगु मुनि करते हैं

। २० । ब्राह्मण दैव आर्ष प्राजापत्य आसुर गार्ध्व राक्षस पेशाच दम में आठवां अधम है । २१ । जो विवाह जिस वर्ण की धर्म से युक्त है और जिस विवाह का जो गुण दोष है और जिस विवाह से पुत्र होने में जो गुण अगुण है सो सब आप लोगों में हम बर्सेगे । २२ । प्रथम में वह विवाह ब्राह्मण को अच्छा है और क्षत्रिय के ऊपर का आसुर आदि चार अच्छा है वैश्य शूद्र को भी राक्षस को छोड़के क्षत्रिय को जो कहा है सो अच्छा है । २३ । पहिले में चार विवाह ब्राह्मण को क्षत्रिय को राक्षस वैश्य को आसुर बड़त अच्छा है । २४ । तिस में भी प्राजापत्य गार्ध्व राक्षस ये तीनों धर्म करिके युक्त है गार्मान्य में चारों वर्ण को क्षत्रिय को पूर्व कथित में प्राजापत्य नहीं पाया था उस को आजा दई और गार्ध्व वैश्य शूद्र को पूर्व कथित में नहीं पाया था उस की भी आजा भई । २५ । गार्ध्व और राक्षस ये दोनों क्षत्रिय को प्रति अच्छा है । २६ । द्रव आठो

वोधत । २० । ब्राह्मणोदैवस्तथैवार्पः प्राजापत्यस्तथासुरः गार्ध्वोराक्षसश्चैवपेशाचश्चाष्टमोधमः । २१ । योयस्यधर्मोवर्णस्य-
गुणदोषौ चयस्यथौ तद्वः सर्वम्प्रवक्ष्यामिप्रसवेचगुणागुणान् । २२ । पदानुपूर्व्याविप्रस्यश्चस्यचतुरोपरान् विट्शूद्रयोस्तुताने-
वविद्याहर्म्यान्नराक्षसान् । २३ । चतुरोब्राह्मणस्याद्याः प्रशस्ताः कवयोविदुः राक्षसंक्षत्रियस्यैक मासुरं वैश्यशूद्रयोः । २४ ।
पञ्चानान्तु चयो धर्म्यादावधर्मीस्मृताविह पेशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन । २५ । पृथक् पृथक्वामिश्रीत्वा विवाहौ पूर्वोच्चा-
दितौ गार्ध्वोराक्षसश्चैवधर्मीक्षत्रस्यतौ स्मृतौ । २६ । आद्याद्यचार्चदित्वाच श्रुतिशीलवत्तेरुदम आह्वयदानं कन्याया ब्राह्मो-
धर्मः प्रकीर्तितः । २७ । यज्ञे तु वितते सम्यग्विज्जेकर्म कुर्वते अलङ्कृत्य मुतादानं देवधर्मं प्रचक्षते । २८ । एकंगोमिथुनं द्वेदाव-
रादादायधर्मतः कन्याप्रदानं विधिवदार्पोधर्मः स उच्यते । २९ । स ह नौचरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च कन्याप्रदानमभ्यर्च्य-
प्राजापत्योविधिः स्मृतः । ३० । ज्ञातिभ्योऽद्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तिः कन्याप्रदानं विधि दासुरो धर्म उच्यते । ३१ । इच्छया-
न्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च गार्ध्वः स तु विज्ञेयो भैथुन्यः कामसंभवः । ३२ । हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशं तीरुदतीं गृह्णात्
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते । ३३ । सुतां भर्ता प्रमत्तां वारहेयत्रोपगच्छति स पापिष्ठो विवाहानां पेशाचश्चाष्टमोऽधमः ।

विवाहों का लक्षण कहते हैं वर और कन्या को कपड़ा गड़जा देके वर को बुला के कन्या को देवे वह ब्राह्मण विवाह कहाता है । २० । यज्ञ में श्रुतिक को अलङ्कार सहित कन्या को देवे वह देव विवाह कहाता है । २१ । एक वा दो गो और बैल दम में लंके कन्या को देवे वह आर्ष विवाह कहाता है । २२ । वर और कन्या ये दोनों साथ धर्म को करे पंसा वाणी में कहके वर की और कन्या को पूजा कर के कन्या को देवे वह प्राजापत्य विवाह कहाता है । २३ । कन्या को और कन्या की जाति को द्रव्य देके कन्या ग्रहण करना यह आसुर विवाह कहाता है । २४ । वर और कन्या की परस्पर इच्छा करके जो संयोग भया सो गार्ध्व विवाह कहाता है वह भैथुन के स्ति है और काम से उत्पन्न है । २५ । मारि के छेदि के भेदि के हठ करके रोती पुकारती कन्या को गृह में ले आना यह राक्षस विवाह है । २६ । एसा है मन्त्रीय द्रव्य करिके मन्त्र है वातिकर्षितिक ऐमिक साक्षिपानिक दुःख करिके

प्रसक्त है उस में एकांत में भाग करना मो पेशाव विवाह है वह सब विवाहों में अधम है । २४ । ब्राह्मण को जल में कन्यादानकरना अच्छा है क्षत्रिय आदि को विना जल ही परस्पर की इच्छा में वाणीमात्र को कहने में विवाह होता है । २५ । जिस विवाह का जो गुण मनुजी ने कहा है मो है ब्राह्मण लोगो हम अच्छे प्रकार में कहते हैं आप लोग सुनिण । २६ । ब्राह्म विवाह में पुत्र उत्पन्न हो और अच्छे कर्मों को करे तो दश पुरुष ऊपर को और दश पुरुष नीचे को एकोसवां अपां को पाप में कृताता है । २७ । दैव विवाह में उत्पन्न पुत्र अच्छे कर्मों को करने वाला होता मो मात पुरुष ऊपर को और मात पुरुष नीचे को और अपां को पाप में कृताता है आर्य विवाह में उत्पन्न तीन तीन ऊपर और नीचे को प्राजापत्य विवाह में उत्पन्न छ छ नीचे ऊपर पुरुषों को पाप में कृताता है अच्छे कर्मों को करने वाला हो यह सर्वत्र जानना । २८ । ब्राह्म आदि चार विवाह में उत्पन्न पुत्र बड़ा तेजस्वी होता है और भले लोगों के संमत होता है । २९ । रूप गुण धन यश भाग्य धर्म इन सबों में युक्त होता है और सब वर्ष

। ३४ । अङ्घ्रिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानम्विशिष्यते इसरेषान्तु वर्णानामितरेतरकाम्यया । ३५ । यो यस्यैषाम्विवाहानां मनुना कीर्तितो गुणः सर्वं शृणुत तं विप्राः सर्वं कीर्त्तयतो मम । ३६ । दशपूर्वान्परास्वश्यानात्मानं चैकविंशकम् । ब्राह्मीपुत्रः सुकृतक श्लोचयेदेनसः पितृन् । ३७ । देवोढाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान् आपोढाजः सुतस्त्रीं स्त्रीन् पटपट कायोढजः सुतः । ३८ । ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ध्वानुपूर्वशः ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः । ३९ । रूपसत्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जी वन्ति च शतं समाः । ४० । इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसामृतवादिनः जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः । ४१ । अनिन्दितैः स्त्रो विवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत् । ४२ । पाणिग्रहणसंस्कारः सत्रलोत्सपदिश्यते असवर्णा स्वयं ज्ञेयो विधिरुद्धाहकर्मणि । ४३ । शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वै श्यकन्यया वसनस्य दशाग्राह्या शूद्रयोत्तृष्टवेदने । ४४ । ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा पर्ववर्जं व्रजेच्चनां तद्वतो रतिकाम्यया । ४५ । ऋतुः स्वा

जोता है । ४० । और जो चार विवाह हैं उस में जो उत्पन्न पुत्र होता है मो घातक होता है और झूठ वज्रत बोलता है ब्रह्म धर्म का शत्रु होता है । ४१ । अनिन्दित विवाह में अनिन्दित प्रजा उत्पन्न होते हैं और निन्दित विवाह में निन्दित प्रजा उत्पन्न होते हैं इस सिद्धि निन्दित विवाह को नहीं करना चाहिये । ४२ । अपने वर्ण को जो कन्या है उसी में हस्त ग्रहण का संस्कार जानना और दूसरे वर्ण की कन्या के साथ विवाह करने में आगे जो विधि कहेंगे मो जानना । ४३ । क्षत्रिया कन्या वाण को ग्रहणकरे और वैश्य की कन्या पयसा (अर्थात् लृषभ को हांकने की वस्तु) को ग्रहण करे शूद्र की कन्या वस्त्र को दश को ग्रहण करे बड़ी जाति वाले में विवाह करने में । ४४ । ऋतुकाल (अर्थात् प्रतिमास में स्त्रियों के चानिदार में रुधिर का नि करना और गर्भधारण के योग्य स्त्रियों की अवस्था विशेष जो मो ऋतु कहता है) में स्त्री मो भोगकरे और दूसरे की स्त्री में गरुज को नहीं करे परन्तु अपना स्त्री के साथ गमन करने में ऋतुकाल में भी पर्व को वगैर देव पर्व ये कहते हैं कि कृष्णपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी अमा वास्या पूर्णिमा

रवि संक्रांति और स्त्रीका मग हो तो बिना षतुकाल भी संभोग करे यह नियम है षतुकाल में समोप रहे और सामर्थ्य करित हो पुरुष तो अवश्य गमन करे नहीं तो बड़ा दोष होता है । ४५ । षतुकाल की मोलह रात्रि है । ४६ । तिस में पहिली चार और दगारहीं तेरहीं रात्रि निन्दत है दश रात्रि अच्छी है । ४७ । समरात्रि में पुत्र होता है (जैसे कठई अठई दशई बारहों चौदहीं मोलहीं) और विषमरात्रि में कन्या होती है (जैसे पंचई सतई नवई दगारहीं तेरहीं पंद्रहीं) इस लिये पुत्रार्थी पुरुष समरात्रि में स्त्री संभोग को करे । ४८ । पुरुष को वीर्य अधिक से पुत्र होता है विषमरात्रि में भी और स्त्री के वीर्य अधिक से कन्या होती है समरात्रि में भी इस लिये अच्छे वस्तुओं के भोजन से अपने वीर्य को अधिक करे और निकाम वस्तु के भोजन से और थोड़ा खिलाने से स्त्री के बीज को कम करे और स्त्री पुरुष का बीज समर है तो गर्भक होता है अथवा कन्या और पुत्र दोनों उत्पन्न होते हैं और स्त्री पुरुष दोनों का वीर्यकमर है (अर्थात् निस्सार रहे) तो गर्भ की संभाव नहीं होती । ४९ । निंदायुक्त

भाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडशस्मृताः चतुर्भिरितरैस्सार्द्धमष्टोभिः सद्विगर्हितैः । ४६ । तासामाद्याद्यतस्तु निन्दितैकादशी च या चयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दशरात्रयः । ४७ । युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोयुग्मासु रात्रिषु तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदा-
र्तवे स्त्रियम् । ४८ । पुमा नृपंसोधिके शुके स्त्रीभवत्यधिके स्त्रियाः समेऽपुमानुंस्त्रियौ वा स्त्रीण्येव च विपर्ययः । ४९ । निंदास्व-
ष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ब्रह्मचार्यैव भवति यच्चतस्याश्रमे वसन् । ५० । न कन्यायाः पिता विद्वान्युक्तीया षुक्ता-
मस्त्वपि यत्कृतं शुक्लं हि लाभन स्यान्नरोपत्यविक्रयी । ५१ । स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बांधवाः नारीयानानि वस्त्रं वा-
ते पापा यान्त्यधो गतिम् । ५२ । आर्षे गोमिथुनं शुक्लं केचिदाहुर्मृषैव तत् अल्पोप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः । ५३ । यासां
नाददते शुक्लं ज्ञातयो न स विक्रयः अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्वं च केवलम् । ५४ । पितृभिर्धार्मिकैः पतिभिर्देवैस्तथा पू-
ज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः । ५५ । यचनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तच्च देवताः यचैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तथापि कल्याणः । ५६ ।

जो आठ रात्रि है तिस में स्त्री गमन नहीं करने में जिस आश्रम में रहे तिस में ब्रह्म चारी भी कहाता है । ५० । पिता कन्या का थोड़ा भी शुक्ल अर्थात् किछु लेके कन्या देना) न लेवे लाभ करके शुक्ल लेने से कन्या बेचने वाला कहाता है । ५१ । स्त्रियों का धन यान (अर्थात् सवारो) बख इन सभकों मोह से लेके उपजीवन करते जो बांधव लोग हैं सो बड़े पापी हैं और नरक में जाते हैं । ५२ । कोई अपिने आर्षविवाह में दोगा लेना कहा है सो झूठ है थोड़ा वा बहुत जो लेना हैं सो बेचनै कहाता है । ५३ । जिस कन्या के शुक्ल को जाति लोग नहीं लेते सो बेचना नहीं कहाता शुक्ल न लेना यह तो कुमारी का पूजन है और दया है । ५४ । बहुत कल्याण की इच्छा करनहार जो पिता भई पति देवर हैं ये सब गहना और वस्त्र से स्त्रियों की पूजा करें । ५५ । जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है उस कुल से देवता रमण करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहाँ सभकिया निष्पल होती है । ५६ । जिस कुल में स्त्री लोग शोक को करती हैं वह कुल इट पट नष्ट हो जाता है और जिस कुल में स्त्री लोग शोक को नहीं करती हैं वह कुल बड़ा बढ़ता

है। ५०। पूजा को बिनापाए स्त्री लोग जिस कुल को शाप देती हैं वह कुल चागे और से नष्ट हो जाता है। ५८। इस लिये विभूति का दृष्टा करने का पुत्र है सो गहना वस्त्र भोजन से स्त्रियों की पूजा सदा करे। ५९। जिस कुल में स्त्री से पति प्रसन्न रहता है और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है उस कुल में भवकरके कल्याण है। ६०। जब स्त्री पति को प्रसन्न न रखे तो संतति कहाँ से होगी। ६१। स्त्री के प्रसन्न रहने से कुल प्रसन्न रहता है और स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल अप्रसन्न रहता है। ६२। निन्दित विवाह क्रियालोप वेद का न पठना ब्राह्मण का अपमान इन सभी में कुल शकुलता को पाता है। ६३। वित्रलेखन आदि कर्म व्याज लेने के निमित्त धन देना कंवल शूद्र जाति की स्त्री से पुत्रोत्पत्ति गो चोड़ा गध इन सभी को भोजन लेना और बेचना खेती करना राज सेवा करना इन सभी में। ६४। और यज्ञ कराने के योग्य नहीं हैं उस को यज्ञ कराने से और मंत्र के अभाव से झट

शोचन्तिजामयोयच विनश्यत्याशु तत्कुलम् शोचन्ति तु यच्चैता वर्द्धन्ते तद्धि सर्वदा। ५७। जामयो यानि गेहानि शपन्त्य प्रतिपूजिताः तानि हृत्या हतानीव विनश्यन्ति समन्ततः। ५८। तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारे पूत्सवेषु च। ५९। संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्ता भार्या तथैव च यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणन्त च वैधुवम्। ६०। यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते। ६१। स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् तस्यान्वरोचमानायां सर्वमेव नरोचते। ६२। कुर्विवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च कुलान्यकुतां यान्ति ब्राह्मणाति क्रमेण च। ६३। शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया। ६४। अयाज्य याजनैश्चैव नास्ति कोन च कर्मणाम् कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः। ६५। मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः। ६६। वैवाहिकेऽपि कुर्वीत गृह्यं चर्म यथा विधि पञ्च यज्ञ विधानञ्च पंक्तिश्चान्वाहिकीं गृही। ६७। पञ्चखना गृहस्थस्य चुल्ली पेपण्युपस्करः कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्। ६८। तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः पञ्चकृतामहायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्। ६९। अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् होमो दैवो वलिर्भोतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्। ७०।

पट कुल विनाश के प्राप्त होता है। ६५। जो कुल मंत्र में सहित है और बहुत धन भण्डित है सो बड़ा कुल कहाता है बड़ा यज्ञ को पाता है। ६६। गृह्यमूत्र में जो कर्म कहे हैं और पंचयज्ञ (अर्थात् वेद का पठन देव ऋषि पितृ का तर्पण होम वलि अतिथि के भोजन) का विधान नित्य भोजन पाक इन सभी को विवाह समय की अग्नि में विधि से करना। ६७। गृहस्थ को चूल्हा भील लोठां बठनी आखरी रुमर जल का धड़ा ये पांच मृत्ता (अर्थात् वधका स्थान) इन सभी का कर्म करने से जीव का नाश होता है। ६८। इस पांच मृत्ता के प्रायश्चित्त के लिये पांच महा यज्ञ को गृहस्थ लोग नित्य ही करें। ६९। वेदका पठना देव ऋषि पितृ का तर्पण करना होम करना वलि देना अतिथि का पूजन करना इन सभी के प्रसंगे ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ कहते हैं। ७०। शक्तिपूर्वक इन पांचो महायज्ञों को जो त्याग नहीं करता है सो गृहमेवासकरते भी मृत्ता दोष से लिप्त नहीं होता। ७१। जो

मनुष्य देवता अतिथि मृत्यु पितर इन सभी को और अग्नि को भोजन नहीं देता सो जोते ऊँह मुद्रा है । ७२ । अहुत ऊँह प्रहुत ब्राह्मण प्रशित यं पांच पञ्च है । ७३ । इन पांचों को जप होम भूतबलि अतिथिपूजा पितृर्पण क्रम में कहते हैं । ७४ । जो मनुष्य नित्यही वेदपठता है अग्निमें होम करता है सो संपूर्ण संसार को धारण कर सकता है । ७५ । अग्नि में जो आहुति पड़ती है सो मृत्यु को स्मृति जाती है मृत्यु में वृष्टि होती है वृष्टिमें अन्न होता है अन्नमें प्रजा होती है । ७६ । जिस प्रकार से वायु को आश्रय करके सभीजीव रहते हैं तिसी प्रकारसे गृहस्थाश्रम को आश्रय करके सभी आश्रम रहते हैं । ७७ । वेद के अर्थकाकथन करके अन्नकादानदेके तीनों आश्रमोंको गृहस्थाश्रमों दिन दिन धारण करता है इस लिये गृहस्थाश्रमी जीए है । ७८ । परलोक में

पञ्चैतान यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः स गृहेऽपि वसन्नित्यं सृनादोपैर्न लिप्यते । ७१ । देवतातिथिमृत्यानां पितृणामात्म नश्च यः ननिर्वपति पञ्चानामुच्छसन्न स जीवति । ७२ । अहुतश्च हुतश्चैव तथा प्रहुतमेव च ब्राह्म्यं हुतं प्राशितश्च पञ्च यज्ञान प्रचक्षते । ७३ । जपोहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्न्यार्चा प्राशितं पितृर्पणम् । ७४ । स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादैवे चैवेह कर्मणि देव कर्मणि युक्तो हि विभ्रतीदश्चराचरम् । ७५ । अग्नौ प्रास्ता हुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते आदित्याज्जायते वृष्टिर्दृष्टेरन्नन्ततः प्रजाः । ७६ । यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः । ७७ । यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहन् गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्येष्ठाश्रमो गृही । ७८ । स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमश्नयमिच्छता सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽध्यार्यो दुर्वलेन्द्रियैः । ७९ । ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं भिजानता । ८० । स्वाध्यायेनार्चयेत्तर्पिन् होमैर्देवान्यथा विधि पितृन् आर्ह्यं नृननैर्भूतानि वलिकर्मणा । ८१ । कुर्याद्दहरहः आहुमन्नाद्येनोदकेन वा पयो मूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन । ८२ । एकमप्यशयेद्विप्रं पि चर्ये पाञ्चयज्ञिके न चैवावाणयेत्किञ्चिद्वैश्वदेस्पृतिद्विजम् । ८३ । वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येग्नौ विधिपूर्वकम् आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् । ८४ । अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च । ८५ ।

अन्य स्वर्गकी और इसलोक में सबकी इच्छा करनेवाला पुरुष उभ गृहस्थाश्रमको नित्यही धारण करे जो दुर्बल इन्द्रिय वालों में धारण नहीं होसकता । ७९ । ऋषि पितर देवता अतिथि यं सब गृहस्थों में भोजन की आगो करते हैं इसलिये इन सबको अन्न और जल देना चाहिए । ८० । वेद पठना होम करना आहुत करना अन्न देना बलिकर्म करना इन सभी में ऋषि देवता पितर मनुष्य भूत इन सभी का क्रम में विधि सहित पूजा करना । ८१ । पितरों को प्रीति करता ऊँहा अन्न जल दूध मूल फल इन सभी में दिन दिन में पावण आहुत करे । ८२ । पंचमहा यज्ञ के मध्य में पितरों के निमित्त बलिकर्म जो कहा है सो नबनपड़े तो एक को अथवा वहुत ब्राह्मण को भोजन करावे परंतु वैश्वदेवके निमित्त ब्राह्मण भोजन न करावे । ८३ । संस्काररहित आवसथ नाम की अग्निमें जो आगे देवताकाहं में उनको दिन दिन में विधिमहित आहुति देवे । ८४ । अग्निमाम अग्नीषाम विषं देवभक्त्यः । ८५ । कुरु मनुमति प्रजापति आवाप-

पृथिवी स्विष्टकृत् इन सब को आहुति देवे । ८६ । अच्छे प्रकार से होम करके सब दिशा में प्रदक्षिण क्रम से इन्द्र वरुण यम चंद्र इन सब को और इन्द्रों के खेवकी को बलि देवे । ८७ । दारदेश में मरुत् को जल स्थान में जल को मूसल आखरी के स्थान में वनस्पति को । ८८ । वास्तु पुरुष के शिर पाद मध्य में क्रम से श्री भद्र काली वास्तोष्पति इन सब को देवे । ८९ । विश्वे देव दिन में फिरने वाले भूत रात्रि में फिरने वाले भूत इन सब को आकाश में देवे । ९० । वास्तु पुरुष के पीठ में सर्वात्म भूति को बलि देवे बलि देने से जो शेष अन्न है सो दक्षिण दिशा में पितरों को देवे । ९१ । कुक्कुर पतित होम पाप रोगी को आ छोटा कोड़ा इन सभी को धीरे से भूमि में देवे । ९२ । इस रीति से जो ब्राह्मण सब जीवों को नित्य ही पूजन करता है सो तेज रूप होकर कोमल मार्ग

कुह्यै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च सह द्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेनतः । ८६ । एवं सम्यग्घविर्हत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् इन्द्रांतकाप्यतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो वलिं हरेत् । ८७ । मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदस्वद्भ्य इत्यपि वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलो लूखले हरेत् । ८८ । उच्छीर्षके अथै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ब्रह्मा वास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये वलिं हरेत् । ८९ । विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो वलिमाकाश उत्क्षिपेत् दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तञ्चारिभ्य एव च । ९० । पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत वलिं सर्वात्मभूतये पितृभ्यो वलिशेषन्तु सर्वन्दक्षिणतो हरेत् । ९१ । शुनां च पतितानाञ्च श्वपचां पापरोगिणाम् वायसानां कृमीणाञ्च शनकैर्निक्षिपेद्भुवि । ९२ । एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति स गच्छति परं स्थानन्तेजोमूर्तिपथर्जुना । ९३ । कृत्वैतदलिकर्मैवमतिथिम्पूर्वमाशयेत् भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे । ९४ । यत्पुण्यफलमाप्नोति गान्दत्वा विधिवद्भुरोः तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षान्दत्वा द्विजो गृही । ९५ । भिक्षामप्युदपाचन्वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् वेदतत्त्वार्थविषेदु ब्राह्मणायोपपादयेत् । ९६ । नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहादज्ञानि दातृभिः । ९७ । विद्या तपः सम्ब्रह्मेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् । ९८ । सम्प्राप्ता यात्वतिथये प्रदद्यादासनो-

मे बड़े स्थान को जाता है । ९३ । इस प्रकार से बलि कर्म करके गृह जन के भोजन के पहिले अतिथि को भोजन करावे और ब्रह्मचारी भिक्षुक को भिक्षा देवे । ९४ । विधि पूर्वक गुरु को गौ देने से जो फल होता है सो फल भिक्षुक को भिक्षा देने से गृहस्थाश्रमी पाता है । ९५ । वेद का सिद्धांत अर्थ का जानने वाला ब्राह्मण को आदर से विधि पूर्वक भिक्षा को अथवा जल को देवे । ९६ । भस्म सदृश ब्राह्मण में (अर्थात् मूर्ख ब्राह्मण में) देवता और पितर के निमित्त जो बस्तु मोह से दाता लोग देते हैं सो सब नष्ट हो जाता है । ९७ । विद्या तप करके युक्त जो ब्राह्मण उस की मुख रूपी अग्नि में जो होम किया जाता है सो बड़े पाप से होम करने वाले को झुड़ाता है । ९८ । आप से जो अतिथि आया उस को आदर से विधि पूर्वक अथवा अग्नि आसन अथवा जल इन सब

को मनुष्यदेवे । ८८ । वे पूजित ब्राह्मण अतिथि गृह में बास करे तो गृहवाला बड़ा तेजस्वी भी हो और शिल उंछ से जीवन करता हो पंचाग्नि को संवत करता हो तो भी उस को मुक्त को वह लेता है शिल उंछ पंचाग्नि इस का अर्थ लिखते हैं कि खेतो करने वाले खेत का अन्न काटि के ले जाते हैं उस में जो बालि गिरी रहती है वह शिल कहाता है और बलिआं लोग मायंकाल में अन्न की ठेरी को दुकान में रख देते हैं उस ठेरी के स्थान पर जो अन्न गिरा रहता है वह उंछ कहाता है चेता आवश्य्ण सभ्य यह पञ्चाग्नि कहाता है । १०० । तण भूमि जल मीठी बाणी इन बस्तुओं से सज्जनों का गृह कभी शून्य नहीं रहता । १०१ । एक रात्रि निवास करने से अतिथि कहाता है उस का रहना नित्य ही नहीं है इस लिये अतिथि कहाता है । १०२ । भार्या अग्नि इन दोनों से युक्त जो गृहस्थ है उस के गृह में वैश्व देव के समय में आया हो तो एक गांव का रहने वाला और विचित्र हंसी कथा आदि से संगति करके आने वाला अतिथि

दके अन्नश्चैव यथा शक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् । ८९ । शिलानप्युच्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणो नर्चितो वसन । १०० । तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सृष्टता एतान्यपि सताङ्गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन । १०१ । एकरात्रन्तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते । १०२ । नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकन्तथा उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोपि वा । १०३ । उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः तेन ते प्रेत्यपशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् । १०४ । अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योदो गृहमेधिना काले प्राप्तस्तु काले वा न स्यान् अन्नं गृहे वसेत् । १०५ । न वै स्वयंतदग्नौ यादतिथिं यन्न भोजयेत् धन्यं यश्च स्वमायुष्यं स्वर्ग्यं चातिथिपूजनम् । १०६ । आसनावसथौ शय्यामनं ब्रज्यामुपासनाम् उत्तमपूतमं कुर्याद्दीनं हीने समे समम् । १०७ । वैश्वदेवे तु निर्हन्ते यद्यन्योतिथिराव्रजेत् तस्याप्यन्नं यथा शक्तिं प्रदद्यान्न वस्त्रं हरेत् । १०८ । न भोजनार्थं स्वेविप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् भोजनार्थं हि ते शंसन् वान्ताशीत्युच्यते वृधैः । १०९ ॥

यही कहाता है । १०३ । बुद्धि रहित जो गृहस्थ परपाक की उपासना करते हैं उस के करने में परपाक में अन्न देने वाले का पशु होते हैं । १०४ । मृत्यु के अग्न समय में अतिथि आया हो तो उस को भोजन जल अवश्य देना काल में प्राप्त हो अथवा दूसरे काल में प्राप्त हो परंतु भोजन किए बिना गृह में बास न करने पावे । १०५ । जो बस्तु अतिथि को भोजन न करावे उस बस्तु को आप भोजन न करे और अतिथि को भोजन देना यह तो धन यश आयुष स्वर्ग इन्हीं का हित करने वाला है । १०६ । आसन गृह शय्या पीठे चलना सेवा इन सब को उत्तम मध्यम हीन पुरुष में क्रम से नक्षम मध्यम हीन करना । १०७ । वैश्व देव कर्म करने के पीछे दूसरा अतिथि आवे तो उस को यथा शक्ति अन्न देवे बलि कर्म न करे । १०८ । भोजन के निधे ब्राह्मण अपना कुल और गांव को न कहें कदाचित् कहें तो उगली बस्तु का भोजन करने वाला कहाता है इस बात को पण्डितों ने कहा है । १०९ । ब्राह्मण के गृह में जन्मिय वैश्य शूद्र मिश्र जाति (अर्थात् अपना कुल) गुरु ये सब अतिथि नहीं कहाते क्योंकि जन्मिय आदि तीन

वर्ण ब्राह्मण से नीचे है और मित्र कुल इस में अपना संबंध है और गुरु तो अपना प्रभु है इस लिये जो अपने में बड़ा हो और संबंध में प्रभुता से भिन्न हो सो अतिथि सब वर्ण में कहाता है । ११० । जब अतिथि के धर्म से ब्राह्मण के गृह में लक्ष्य आवे तो ब्राह्मण के पीछे उस को भी भोजन देना । १११ । इस रीति से दया करके वैश्य शूद्र को भी श्रुत्या के साथ भोजन देना । ११२ । प्रीति सहित मित्र आदि गृह में आए हों तो सत्कार सहित यथा शक्ति स्त्रियों के भोजन समय में उन्हीं को भोजन देना । ११३ । पताहूँ बिवाही लड़की कोटा लड़का रोगी गर्भिणी इन सभी को अतिथि भोजन के पहिले भोजन देना इस में विचार न करना । ११४ । भोजन के योग्य जितने कह आए हैं उन सब को भोजन कराए बिना

न ब्रह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते वैश्य शूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च । ११० । यदि त्वतिथि धर्मेण श्रद्धया गृहमाव्रजेत् भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु कामन्तमपि भोजयेत् । १११ । वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेतिथिधर्मिणौ भोजयेत्सहसृत्ये स्ता वान्दशस्यं प्रयोजयन् । ११२ । इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् सत्कृत्यान् यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया । ११३ । सुवासिनीं कुमारींश्च रोगिणोगर्भिणीस्त्रियः अतिथिभ्योऽय एवैतान्भोजयेद्विचारयन् । ११४ । अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्व-भुङ्क्ते विचक्षणः स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः । ११५ । भुक्तवत्स्य विप्रेषु स्वेदुमृत्येषु चैव हि भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टन्तु दम्पती । ११६ । देवान् ऋषीन्मनुष्यांश्च पितृन् गृह्याश्च देवताः पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेष-भुग्मवेत् । ११७ । अयं सकेवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् यज्ञं शिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्मन्विधीयते । ११८ । राजर्त्विक् स्नातकगुरुन् प्रियश्वशुरमातुलान् अर्हयेन्मधुपर्केण परि संवत्सरात्पुनः । ११९ । राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ मधुपर्केण सम्पूज्यौ नत्वयज्ञ इतिस्थितिः । १२० । सायंत्यन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमंचवलिं हरेत् वैश्वदेव हि नामैतत्सायं प्रात-र्विधीयते । १२१ । पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुष्येऽग्निमान् पिण्डान्वाह्यकं आहं कुर्यान्मासानुमासिकम् । १२२ ।

बुद्धि होम जो पुरुष आप भोजन करता है सो यह नहीं जानता है कि हमारी शरीर को ककुर और गिद्ध भोजन करेंगे । ११५ । ब्राह्मण और संबंधी श्रुत्या इन सब को भोजन कराके जो बचे उस को गृह स्वामी अपनी स्त्री सहित भोजन करे । ११६ । देवता ऋषि पितर मनुष्य भृत इन सभी के निमित्त जो यज्ञ है उस को करके और इन सभी को भोजन कराके जो बचे उस को गृहस्थ भोजन करे । ११७ । केवल अपने ही के लिये जो मनुष्य पाक करता है सो पाप को भोजन करता है यज्ञ का शेष जो अन्न है सो भले लोगों के भोजन में उचित है । ११८ । राजा और यज्ञ कराने वाला विद्या और व्रत इन दोनों से पक्का जो ब्रह्म चारी गुरु प्रिय श्वशुर मामां इन सभी का प्रति वर्ष में मधु पर्क में पूजा करना । ११९ । राजा और वेद पढ़ने वाला इन दोनों की पूजा मधु पर्क में यज्ञ कर्म में करना दूसरे समय में नहीं यह शास्त्र की मर्यादा है । १२० । सायंकाल में जो सिद्ध अन्न है उस से मंत्र रहित वलि कर्म को पत्नी करे यह पंच महा यज्ञ गृहस्थों के लिये है । १२१ । प्रति मास की प्रमाणात् में पितृ यज्ञ करके

अग्नि होषी ब्राह्मण आहु करे । १२२ । प्रति मास में पितरों की आहु को अन्वाहार्य कहते हैं उस आहु को शुद्ध मास में करना चाहिए प्रथम मास में परन्तु मास करके आहु करना कलि युग में मना है । १२३ । उस आहु में जो भोजन कराने के योग्य है और जो योग्य नहीं है और जितने चाहिए और जैसे अन्न करके भोजन कराना चाहिए सो सब कहेंगे । १२४ । आहु में दो कर्म हैं एक पितृ कर्म दूसरा देव कर्म तिस में कैसा भी धनी हो तो देव कर्म में एक को और पितृ कर्म में दो को भोजन करावे अथवा दोनों कर्म में एक एक को भोजन करावे ब्रह्म विस्तार में प्रसन्न न होवे । १२५ । सत्कार देश काल पवित्रता श्रेष्ठ ब्राह्मण इन सभी का नाश विस्तार करता है इस लिये विस्तार न करना । १२६ । अमावास्या में आहु करने से पितरों का उपकार होता है उस से पितर स्वर्ग आहु करने वाले को गुणवान पुत्र पौत्र धन आदि सब वस्तु को देते हैं इस लिये आहु को अवश्य करना चाहिए । १२७ । देवता और पितरों के देने योग्य जो वस्तु

पितृणां मासिकं ग्राह्यमन्वाहार्यम्विदुर्बुधाः तच्चाभिषेण कर्तव्यम्यशस्तेन समन्ततः । १२३ । तच्च ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः । १२४ । दौ देवे पितृकार्ये चीनेकैकमुभयत्र वा भोजयेत्समृद्धौ पि न प्रसज्येत विस्तरे । १२५ । सत्क्रियां देशकालौ च शौचमब्राह्मणसम्पदः पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेतविस्तरम् । १२६ । प्रथिता प्रेत छत्यैषा पिब्यन्नाम विधुक्षये तस्मिन्मुक्तस्यैति नित्यं प्रेतछत्यैव लौकिकी । १२७ । आचियायैव देयानि हव्यकव्यानिदातृभिः अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तमहाफलम् । १२८ । एकैमपिविद्वांसं दैवे पिब्ये च भोजयेत् पुष्कलम्फलमाप्नोति नामंचक्षान्वह्ननपि । १२९ । दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणम्बेदधारगम् तीर्थन्तुहव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः । १३० । सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यच्च भुञ्जते एकस्तान्मंचवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः । १३१ । ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च न हि हस्तावस्तुग्दिग्धौ रुधिरैर्गैव शुद्ध्यतः । १३२ । यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमंचवित् तावतो ग्रसते प्रेत्यदीप्तशूलर्ष्ययो गुडान् । १३३ । ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे तपः स्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठा-

है सो वेद पाठी बड़ा पूज्य जो ब्राह्मण है उसी को देना चाहिए उस के देने से महा फल होता है । १२८ । देव पितर कर्म में एक भी पण्डित ब्राह्मण के भोजन कराने से बड़ा फल होता है और ब्रह्म मुख ब्राह्मण के भोजन कराने से वैसा फल नहीं होता है । १२९ । दूर से वेद पढ़ने वाले ब्राह्मण को परीक्षा करना देवता और पितरों की वस्तु का ग्रहण करने वाला बन्धी है । १३० । दश लाख मुख ब्राह्मण के भोजन कराने से जो फल होता है सो मंच जानने वाला एक ब्राह्मण के भोजन कराने से होता है । १३१ । ज्ञानी ब्राह्मण को हव्य और कव्य (अर्थात् देवता और पितरों के देने की वस्तु) को देना क्योंकि रुधिर से लिप्त हस्त रुधिर करके धोने से नहीं कूटता । १३२ । देवता और पितरों के अन्न को जै रास मुख ब्राह्मण भोजन करता है तै बार आहु करने वाला अग्नि से तप्त शूल और अष्टि अर्थात् दो धारा ब्रह्म) और सोह पिण्ड इन सब को भोजन करता है । १३३ ।

चार प्रकार के ब्राह्मण हैं ज्ञानी तपस्वी वेद पाठी कर्मकाण्डी । १३४ । पितरों के देने योग्य वस्तुओं को ज्ञानी ब्राह्मण को देना और देवनों के देने योग्य वस्तुओं को यथा न्याय (अर्थात् पहिला न मिले तो दूसरा) चारों को देना । १३५ । जिस का मूर्ख पिता हो और आप वेद पाठी हो अथवा वेद पाठी पिता हो और पुत्र उस का मूर्ख हो । १३६ । इन दोनों में जिस का पिता वेद पाठी है सो बड़ा है और दूसरा भी वेद के पढ़ने से सत्कार के योग्य है । १३७ । आहु में मित्र को भोजन न कराना धन दंके मैत्री करना श्रुता से मित्रता से रहित जो ब्राह्मण है उस को भोजन कराना । १३८ । जिस मनुष्य के देवपितृ संबंधी कार्य में मित्र ही प्रधान है (अर्थात् मित्रता ही से भोजन कराता है) उस को भोजन कराने का फल परलोक में नहीं होता । १३९ । जो मनुष्य आहु में भोजन ही के निमित्त मित्रता करता है सो स्वर्ग लोक में भ्रष्ट होता है और वह ब्राह्मणों में अधम है । १४० । ऐसा भोजन पिशाचों का है इसी लोक में फल दायक है सब मनुष्य जानेंगे कि उत भोजन कराया है जिस प्रकार

स्तथापरं । १३४ । ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्णपि । १३५ । अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्देदपारगः अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्देदपारगः । १३६ । ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता मन्त्रसंपूजमार्थन्तु सत्कारमितरोहति । १३७ । न श्राद्धे भोजयेन्मित्रन्धनैः कार्य्यस्य संग्रहः नारिन्द्रमित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् । १३८ । यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च तस्य प्रेत्यफलव्नास्ति श्राद्धेषु च हविष्यु च । १३९ । यः संगतानि कुरुते मोहाच्छाद्धेन मानवः सस्वर्गाश्च्यवते लोकाच्छाद्धमित्रोद्विजाधमः । १४० । सम्भोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि । १४१ । यथेरिणे वीजमुत्तानवत्ता लभते फलम् तथानृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् । १४२ । दातृन्प्रतिग्रहीतृश्च कुरुते फलभागिनः विदुषे दक्षिणान्दत्त्वा विधिवत्प्रेत्यवेह च । १४३ । कामं श्राद्धे चयेन्मित्रान्नाभिरुपमपित्वरिम दिपता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्यनिष्फलम् । १४४ । यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे वत्तृचं वेदपारगम्

से अंधी गो एक ही गृह में रह सकती है तिस प्रकार से वह भोजन इसी लोक में रहता है परलोक में काम नहीं आता । १४१ । जिस प्रकार से ऊपर भूमि में बीज बोने से बोने वाला फल को नहीं पाता तिसी प्रकार से मूर्ख ब्राह्मणों के देवता को बल को भोजन कराने से दाता फल को नहीं पा सकता है । १४२ । पण्डित ब्राह्मण को विधि पूर्वक दक्षिणा देने से दाता और प्रति ग्रहीता ये दोनों फल को पाते हैं इस लोक में और परलोक में भी । १४३ । आहु में मित्र को भोजन करावे तो चिंता नहीं परंतु शत्रु जब पण्डित भी हो तो उस को भोजन नहीं कराना क्योंकि उस को भोजन कराने से परलोक में भोजन कराने के फल को दाता नहीं पाता है । १४४ । वेद के दो भाग हैं एक मंत्र भाग है दूसरा ब्राह्मण भाग है ऋग्वेद के दोनों भाग को पढ़े हो अथवा यजुर्वेद के दोनों भाग को पढ़े हो तो ब्राह्मण को वत्त पूर्वक आहु में भोजन करावे

अथवा संपूर्ण एक शाखा के पत्रे हो तो उस को भी आहु में भोजन करावे । १४५ । इन वेद पाठियों में से एक को भी पूजा करके आहु में भोजन करावे तो सात पुरुष तक पितरों की वृत्ति होती है । १४६ । हव्य और कव्य इन दोनों के दान में मुख्य पक्ष कदा अब भले लोगों ने जिस का स्वीकार किया है ऐसा जो गौण पक्ष है उस को जानो । १४७ । नाना मामा भैंने अश्वर विद्या गृह दौहित्र (अर्थात् लड़की का बेटा) दामाद मौसी का पुत्र आदि और अलिक (अर्थात् यज्ञ कराने वाला) यजमान इन इशों को भोजन कराना मुख्य पक्ष के अभाव में । १४८ । देव कर्म में ब्राह्मण को परीक्षा नहीं करना और पित्र कर्म में तो यत्र से ब्राह्मणों की परीक्षा करना । १४९ । आहु में भोजन कराने के अयोग्य जो ब्राह्मण मनु जी ने कहा है जो ये हैं चार महापातकी नपुंसक नास्तिक । १५० । ब्राह्मण चारी मूर्ख दुष्ट धर्म वाला जूआ खेलने वाला बज्र को यज्ञ कराने वाला । १५१ । वैद्य मजुरी लेकर तीन वर्ष तक देवता की मूर्ति का पूजन करने वाला मांस बेचने वाला बगियों के कर्म से जीन

शाखांतकमथाध्वर्युर्दोगन्तु समाप्तिकम् । १४५ । एषामन्यतमोयस्य भुंजीत आहुमर्चितः पितॄणां तस्य वृत्तिः स्याच्छाश्वती साप्त पौरुषी । १४६ । एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सङ्गिरनुष्ठितः । १४७ । मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वशुरं गुरुम् दौहित्रं विदपतिस्त्वन्मृत्विग्याजौ च भोजयेत् । १४८ । न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मेवित् पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः । १४९ । ये स्तेनपतितल्कीवा ये च नास्तिकवृत्तयः तान् हव्यकव्ययोर्वि प्राननर्हान्ननुरवधीत् । १५० । जटिलश्चानधीयानं दुर्दलं कितदन्तश्चायाजयन्ति च ये पृगां स्नाय्य आह्ने न भोजयेत् । १५१ । चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा विपणनं च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः । १५२ । प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुमखी श्यावदन्तकः प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुपिस्तथा । १५३ । यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराहृतिः ब्रह्महृत् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च । १५४ । कुशीलवोवकीर्णं च वृषलीपतिरेव च पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपत्तिर्युहे । १५५ ।

वाला । १५२ । मजुरी लेके ग्राम बासियों का अथवा राजा का आज्ञा करनेवाला निकाम गखवाला जन्म से काला दांत वाला गृह का विहङ्ग कर्मा करनेवाला अधिकार रहत संते अग्नि होच का त्याग करनेवाला ब्याज से जीनेवाला (अर्थात् अण देके ठड्डि घरण करके जीनेवाला) । १५३ । जय रोग वाला पशु के पालन से जीने वाला परिवेत्ता (अर्थात् अविवाहित जेठा भाई के रहते ऊण विवाह करनेवाला कोटा भाई) पंच महा यज्ञ को नहीं करनेवाला ब्राह्मणों से अचुता कराने वाला परिवित्तिः (अर्थात् विवाहित कनिष्ठ भाई का अविवाहित जेठा भाई) गणाभ्यन्तर (अर्थात् सब जीवों के बास के लिये जो बड़े लोगों ने मठ आदि बनाया अथवा सब जीवों के निमित्त धन दिया उस से जीने वाला) । १५४ । नाच से जीने वाला स्त्री संभोग में भ्रष्ट ब्रह्म चारी शूद्रा स्त्री का पति प्रथम पति को छोड़ के दूसरा पति करने वाली स्त्री का पुत्र काणा और जिसके गृह में उपपति (अर्थात् दूसरा पति) है वह भी । १५५ । मजुरी लेके पढ़ाने वाला मजुरी देके पढ़ने वाला शूद्र का शिष्य शूद्र का गृह कठोर बोलने वाला पतित के पढ़ाने वाला कुण्ड (अर्थात् पति के जीते ऊण दूसरे पति से उत्पन्न) मोलक (अर्थात् पति के मूत्र ऊण

दूसरे पति से उत्पन्न) । १५६। कारण बिना माता पिता गुरु का त्याग करने वाला पतित से पढ़ने वाला पतित के पढ़ाने वाला पतित से विवाह आदि संबंध करने वाला । १५७। गृह में अग्नि लगाने वाला विष का देने वाला कुण्ड के अन्न को भोजन करने वाला सोम सता का बेचने वाला समुद्र में जाने वाला वंदी (अर्थात् स्तुति पढ़ने वाला) तैल के निमित्त तिल आदि वीज का पीसने वाला मिथ्यावाद करने वाला । १५८। पिता से विवाद करने वाला आप पाषा खेलने नहीं जानता और अपने अर्थ दूसरे को पासा खेलाने वाला मुरा को छोड़कर मद्य पीने वाला कुटी अभिषेक (अर्थात् पाप के निर्णय बिना पापी कहाने वाला बहाने से धर्म करने वाला रस (अर्थात् मधुर आमिल कडुआ खवण कषाय तीत इन्हों का बेचने वाला) । १५९। वाण धनुष का करनेवाला अयेदिधू पति (अर्थात् जेठी सगी भगिनी के विवाह बिना छोटी से विवाह करने वाला मित्र से द्रोह करनेवाला जूआ से जीने वाला पुत्र से पढ़ने वाला) । १६०। मिरगी गण्डमाला मपेद कुष्ठ इन रोगों में से कोई एक रोग वाला दुर्जन उन्मत्त अंधा वेद का निंदा करने वाला । १६१। हाथी बयल घोड़ा ऊंट इन सभी के बीर्य का नाश करने

भूतकाध्यापको यश्च भूतकाध्यापितस्तथा शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोसकौ । १५६। अकारणपरित्यक्ता माता-पितृगुरोस्तथा ब्राह्मैर्यौनैश्च संबंधैः संयोगं पतितैर्गतः । १५७। अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी समुद्रयायी वन्दी च तै लिकः कूटकारकः । १५८। पिचाविवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा पापरोग्यभिषस्तश्च दांभिको रसविक्रयी । १५९। धनुश्शराणां कर्ता च यस्याग्रे दिधिषूपतिः मित्रधुक द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च । १६०। आमरी गण्डमाली च त्रिचयैपिशुनस्तथा उन्मत्तोऽंधश्च वर्ज्या स्युर्वेदनिन्दक एव च । १६१। हस्तिगोश्वाश्वदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति पक्षिणां पोषको यश्च युष्ठाचार्यस्तथैव च । १६२। सोतसां भेदको यश्च तेषाञ्चावरणे रतः गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च । १६३। श्वकीडी श्येनजीवी च कन्या दूषक एव च हिंसो वृषलवृत्तिश्च गणानाञ्चैव याजकः । १६४। आचरहीनः क्रोवश्च नित्यं याचनकस्तथा लपिजीवी स्त्रीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च । १६५। औरसिको माहिपिकः परपृथ्वापतिस्तथा प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः । १६६। एतान्विगहिताचारानपाङ्क्तोऽयान् द्विजाधमान् द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयच

वाला (अर्थात् वधिआ करनेवाला) ज्योतिष विद्या से जीने वाला पक्षी पालने वाला मंगाम के लिये शस्त्र विद्या का उपदेश करने वाला । १६७। बंधे जल को दूर से खान में लेजाने वाला बहने जल को रोकने वाला गृह बनाने की विद्या से जीने वाला दूत (अर्थात् संदेश लेजाने वाला) मजुरी लेके वृक्ष लगाने वाला । १६८। कुर्छों से कीड़ा करने वाला बाज पक्षी से जीने वाला कन्या (अर्थात् विवाह जिस का नहीं हुआ) का गमन करने वाला हिंसा करने वाला गृहों में जीने वाला बल्लत मनुष्यों के यज्ञ कराने वाला । १६९। आचार हीन मनुष्य नित्य ही मारने वाला खेतों से जीने वाला स्त्रीपदी (अर्थात् माटा पांव वाला) भले लोगों से निंदा को पाने वाला । १७०। भेड़ भैंसि इस से जीने वाला विवाहित पति को छोड़ कर दूसरे पुरुष से विवाह करने वाली जो स्त्री उस का दूसरा पति मजुरी लेके मृग मृग मनुष्य को दाब करने वाला । १७१। ये सब निन्दित आचार वाले हैं और ब्राह्मणों में अधम हैं पंगति में बैठाने के योग्य नहीं हैं इन सभी को

देव पितर कर्म में वर्जन करे जो पण्डित ब्राह्मण अष्ट हैं सो । १६७ । जैसे हण की अग्नि स्रट पट प्रांत हो जाती है तैसा ही मृष ब्राह्मण है इस लिये द्रव्य और कव्य उस को न देना राज में होम नहीं होता है । १६८ । जो निदित ब्राह्मण कहे हैं उन्हीं के द्रव्य कव्य देने से परलोक में जो फल होता है उस संपूर्ण फल को हम (अर्थात् भृगु जी) कहेंगे । १६९ । पूर्व कथित निदित ब्राह्मण जो भोजन करते हैं सो राजस भोजन करते हैं (अर्थात् फल रक्षित होता है । १७० । अविवाहित बहादर जेठा भाई के रहते ऊए छोटा भाई विवाह करे और अग्नि होच करे तो जेठा भाई परिवर्त्ति कहलाता है और छोटा भाई परिवेत्ता कहलाता है । १७१ । परिवर्त्ति परिवेत्ता परिविवा (अर्थात् जिस कन्या से विवाह हुआ है) सो और उस कन्या को देने वाला विवाह करावे वाला ब्राह्मण ये पांचों नरक में जाते हैं । १७२ । मरे ऊए भाई की स्त्री में जो आगे गमन करने की विधि कहेंगे उस विधि से भी अपनी इच्छा से गमन करने वाला दिधिषू पति कहलाता है । १७३ । परस्त्री में दो पुत्र होते हैं एक कुंड दुसरा गोलक तिस में जीवत पति वाली में कुंड कहाता है मृत पति वाली

विधर्जयेत् । १६७ । ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते । १६८ । अपाङ्क्त दाने यो दातुर्भवत्यृक्फलोदयः दैवे हविषि पित्र्येवातत्पुवक्ष्याम्यशेषतः । १६९ । अव्रतैर्यद्विजैर्भुक्तं परिवेषादिभिस्तथा अपाङ्क्ते यैर्यदन्यैश्च तदै रक्षांसि भुज्जते । १७० । दाराग्निहोचसंयोगं कुरुते योग्यजस्थिते परिवेत्ता स विघ्नैः परिवर्त्ति स्तुपूर्वजः । १७१ । परिवर्त्तिः परिवेत्ता यथा च परिविद्यते सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपञ्चमाः । १७२ । भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योनुरज्येत कामतः धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः । १७३ । परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तारि गोलकः । १७४ । तौ तु जातौ परस्त्रे प्रणिमौ प्रेत्य चेह च दत्तानि हव्यकव्यानि माशयेते प्रदायिनाम् । १७५ । अपाङ्क्तो यावतः पाङ्क्तान्भुज्जानाननुपश्याति तावताञ्च फलमप्येत्य दाताभ्रात्रोति वालिशः । १७६ । वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः पक्षेः श्विचो शतस्य तु पापयोगो सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् । १७७ । यावतः संसृशेदङ्गैर्ब्राह्मणान् शूद्रयाजकः तावतां न

में गोलक कहाता है । १७४ । इन दोनों के देव पितर कर्म में भोजन कराने से दान देने से परलोक में दाता को फल नहीं होता । १७५ । पंघति के योग्य जो ब्राह्मण नहीं हैं सो पंघति के योग्य जितने ब्राह्मण भोजन करने को देखता है तितने का फल दाता नहीं पाता है इस लिये वह दाता बुद्धि राक्षित कहाता है । १७६ । अंधा काण सपेद कुंडवाला पाप रोग (अर्थात् राज रोग वाला इन सभी के देखने से क्रम करके ८० । ६० । १०० । १००० । इतने ब्राह्मण भोजन कराने का फल नहीं होता है भोजन कराने वाले को इस में यह संदेह है कि अंधा तो देख नहीं सकता किस प्रकार से फल को मात्र करेगा तो इस का उत्तर यह है कि देखने के योग्य स्थान में बैठा हो (अर्थात् भोजन कराने वाले ब्राह्मण के समीप में बैठा हो । १७७ । शूद्र के यज्ञ में यज्ञ करने वाला ब्राह्मण अपने अङ्गों से जितने ब्राह्मणों को कूटा है तितने ब्राह्मणों को देने का फल दाता नहीं पाता और शूद्र में भी अपने ब्राह्मणों को पंघति से शूद्र के यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण बैठ के भोजन करे तो जितने ब्राह्मण भोजन करते हैं उन सभी के भोजन कराने के फल को दाता नहीं

पा सकता । १७८ । ब्रूह के यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण से लोभ करके वेद पढ़ने वाला भी ब्राह्मण प्रतिग्रह करे (अर्थात् दाग लेवे) तो अष्ट पट नाश के प्राप्त होता है जैसे माटी का कच्चा पात्र जल में । १७९ । सोम लता के वंशने वाले ब्राह्मण को दाग देने से दाता दूसरे जन्म में विष्टा भोजन करने वाली योनि में उत्पन्न होता है और इसी रीति से जीविका के लिये औषध करने वाले ब्राह्मण को दाग देने से पीव, रक्त पीने वाली योनि में दाता उत्पन्न होता है और मजूरी लेके तीन वर्ष तक देव मूर्ति का पूजा करने वाले ब्राह्मण को और व्याज लेने वाले ब्राह्मण को दाग देने से दाग का फल नहीं होता है । १८० । वनित्रा के कर्म से जीने वाले ब्राह्मण को दाग देने से इस लोक में और परलोक में दाग का फल नहीं होता और प्रथम पति के छोड़ के दूसरा पति करने वाली जो स्त्री है उस में दूसरे पति से उत्पन्न जो पुत्र सो पौनर्भव कहता है उस को दाग देना कैसा है जैसे भस्म में होम करना । १८१ । जो पंचति में बैठने योग्य नहीं हैं उन को दाग देने से दूसरे जन्म में दाता मेद (अर्थात् हृदय का मांस) रक्त मांस मज्जा हाड इस

भवेद्दातुः फलन्दानस्य पौर्तिकम् । १७८ । वेदविच्चापि विप्रस्य लोभात् कृत्वा प्रतिग्रहम् विनाशं ब्रजति क्षिप्रमामपाचमिवाभसि १७९ । सोमविक्रयिणे विष्टा भिषजे पूयशोणितम् नष्टन्देवलके दत्तमप्रतिष्ठन्तु बार्हुपौ । १८० । यत्तु वाणिजके दत्तन्नेह नामुच तद्भवेत् भस्मनीव हुतं हव्यन्तथा पौनर्भवे द्विजे । १८१ । इतरेषु त्वपाङ्क्तोपु यथोदिष्टेषु साधपु मेदोस्तङ्गांसमज्जास्थि वद-
न्यन्नमनीपिणः । १८२ । अपाङ्क्तोपहता पङ्क्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः तान्निवोधत कात्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान् । १८३ ।
अग्र्यास्तर्ज्येषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ओचियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः । १८४ । त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः प-
ङ्क्तवित् ब्रह्मदेयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च । १८५ । वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः प-
ङ्क्तिपावनाः । १८६ । पूर्वेषुरपरेषुर्वा आहुकर्मण्युपस्थिते निमंचयेत् चवरान् संम्यक् विप्रान् यथोदितान् । १८७ । निमंचितो

के भोजन करने वाली योनि में उत्पन्न होता है । १८२ । चार आदि ब्राह्मण से दूषित पंचति में बैठने से उस पंचति को पवित्र करने हारे जो ब्राह्मण उस को सु-
निए । १८३ । जिस कुल में दश पुरुष तक वेद और शास्त्र इन का पढ़ना पढ़ाना चला आया है उस कुल में उत्पन्न हो और चारों वेद को व्याकरण आदि छ अंग को
पढ़ाने वाला हो सो ब्राह्मण पंचति को पवित्र करने वाला है । १८४ । त्रिणाचिकेत (अर्थात् अथर्व वेद भाग) और उस की व्रत यह जिस को है) और अग्नि होत्री
चिसुपर्ण) अर्थात् ऋग्वेद भाग और उस की व्रत यह जिस को है) व्याकरण आदि छ अंग का पढ़ने वाला ब्राह्मण विवाह से उत्पन्न साम वेद के आरण्यक भाग को
पढ़ने वाला ये छ पंचति के पवित्र करने वाले हैं । १८५ । वेदार्थ का जानने वाला और कहने वाला ब्रह्मचारी हो और हजार गो देने वाला सौ बरस का हो सो
पंचति के पवित्र करने हार है । १८६ । आहु करने के पूर्व दिन में अथवा उसी दिन में तीन से ऊपर मिल सकें अष्ट ब्राह्मण तो उस को नेवता देना न मिल सके
तो एक हो तीन को भी नेवता देना । १८७ । नेवता पाके ब्राह्मण उस रात्रि दिन में मैथुन कर्म को न करें और वेद को भी न पढ़ें आहु करने वाला भी ये

दोनों कर्म को न करें । १८८ । नेवता पाए ऊए ब्राह्मणों के समीप में पितर लोग खड़े रहते हैं वायु रूप होकर ब्राह्मणों के पीछे चलते हैं । १८९ । देव कर्म में अथवा पितृ कर्म में नेवता को पाके ब्राह्मण कोई प्रकार से भोजन को न करे तो उस पाप से दूसरे जन्म में ब्रूकर खोल को प्राप्त होता है । १९० । आहु कर्म में नेवता को पाके ब्रूडा स्त्री के साथ संगम करे तो आहु करने वाले का संपूर्ण पाप को पाता है । १९१ । क्रोध रहित भीतर बाहर से पवित्र राग (अर्थात् अभिमत वस्तु का अभि लाषा) द्वेष (अर्थात् अनभिमत वस्तु के न पाने में क्रोध) इन दोनों से रहित स्त्री संभोग से रहित युद्ध को छोड़े ऊए दया आदि आठ गुण से युक्त महाभाग अनादि देवता का पितर है इस कारण से आहु करने वाला और आहु में भोजन करने वाला दोनों क्रोध से रहित हों । १९२ । जिस से इन सभी की उत्पत्ति है और जिन नियमों करके जिन का सेवन है उन सब को जानिए । १९३ । ब्रह्मा के पुत्र मनु जो के मरीचि आदि पुत्र जो हैं तिनो के जो पुत्र हैं सो पितृगण

द्विजः पितृभ्यो नियतात्मा भवेत्सदा न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धञ्च तद्भवेत् । १८८ । निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् वायुवसानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते । १८९ । केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः कथञ्चिदप्यतिक्रामन् पापः शूकरतां व्रजेत् । १९० । आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषत्या सह मोदते दातुर्यहुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते । १९१ । अक्रोधमाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः न्यस्तशस्त्रामहाभागाः पितरः पूर्वदेवताः । १९२ । यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्य- शेषतः ये च यैरुपचर्य्यः स्युर्नियमैस्तान्निवोधत । १९३ । मनोर्हैरख्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः । १९४ । विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः अग्निघ्राताश्च देवानां मारीच्या लोकविश्रुताः । १९५ । दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् सुपर्णकिन्नराणां च स्मृतावर्हिषदोचिजाः । १९६ । सोमपानामदिप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणान्तु सुकालिनः । १९७ । सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वशिष्ठस्य सुकालिनः । १९८ । अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्वर्हिषदस्तथा अग्निघ्रातांश्च सौम्यांश्च दिप्राणामेव निर्दिशेत् । १९९ । य एते तु गणामुख्याः पितृणाम्परिकीर्तिताः तेषामपीह विज्ञेयम्युचपौचमनन्तकम् । २०० । ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थायन्पूर्वशः । २०१ । राजतैर्भाजनैरेषामथोवा

है । १९४ । साध्यगण के पितर विराट् के पुत्र सोमसद हैं देवता के पितर अग्निघ्रात हैं ये सब मरीचि के पुत्र हैं और लोक में प्रसिद्ध हैं । १९५ । ईश्वर हाग्न्य कव्य गंधर्व उरग राक्षस सुपर्ण किन्नर इन सभी का पितर अचि का पुत्र वर्हिषद है । १९६ । ब्राह्मण ऋषि वैश्व ब्रूड इन सभी का पितर क्रम से सोमप हविर्भुज आज्यप सुकाली है । १९७ । अग्निदग्ध अनग्निदग्ध काव्य वर्हिषद आज्यप सुकाली है । १९८ । कवि अंगिरा पुलस्त्य वशिष्ठ इन्हीं का पुत्र क्रम से सोमप हविर्भुज आज्यप सुकाली है । १९९ । अग्निघ्रात सौम्य ये सब ब्राह्मण ही के पितर हैं । २०० । ये सब पितर मुख्य हैं इन्हीं का पुत्र पौत्र अनन्त हैं । २०१ । ऋषियों के पितर उत्पन्न हैं पितरों के देवता और मनुष्य उत्पन्न हैं देवता से क्रम करके जन्म स्थावर संपूर्ण जन्म उत्पन्न है । २०२ । इन सब पितरों को हव्य के पात्र में अथवा दद्या से युक्त जो पात्र है

उस में जल मात्र भी देवे तो उस से अक्षय मुख होता है । १०२ । ब्राह्मण चर्चिय वैश्यों के देव कार्य से पितृ कार्य बड़ा है इस कारण से देव कार्य प्रथम भए से पितृ कार्य का पूर्णता होती है । १०३ । पितृ कार्य का रक्षा करनेहार देव कार्य को पहिले करना रक्षा रहित कार्य को राक्षस लोप करते हैं । १०४ । पितृ कार्य के आदि अंत में देव कार्य करना और देव कार्य के आदि अंत में पितृ कार्य करने वाला अपने वंश संहित छूट पट पाश को प्राप्त होता है । १०५ । एकान्त पवित्र दक्षिण और उत्तर देश को गोबर से लेप करे । १०६ । स्वभाव से शुद्ध वन आदि जो देश नदी तीर निर्जन देश ऐसे स्थान में श्राद्ध करने में सर्वदा पितर संतुष्ट रहते हैं । १०७ । पृथक् पृथक् कुत्र के आसनों से नैवते ब्राह्मणों के खान आचमन कराके बैठाने । १०८ । प्रथम देव कार्य में नैवते ब्राह्मणों के गंधमाला आदि से पूजन करे पीछे पितृ कार्य में नैवते

राजतान्वितैः वार्यपि अश्वया दत्तमश्वयायोपकल्प्यते । २०२ । देवकार्याद्विजातीनां पितृकार्यम्बिशिष्यते दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् । २०३ । तेषामारक्षभूतं तु पूर्वन्दैवं नियोजयेत् रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् । २०४ । दैवाद्यन्तन्तदीहेत पिचाद्यन्तम् तद्देवत् पिचाद्यन्तन्वोहमानः क्षिप्रमश्रयति सान्वयः । २०५ । शुचिन्देशं विविक्तञ्च गोमयेनोप-लेपयेत् दक्षिणाप्रवणञ्चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् । २०६ । अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पि-तरस्सदा । २०७ । आसनेषूपकृतेषु बर्हिष्मत्सु पृथक् पृथक् उपस्पृष्टोदकान सम्यक् विप्रांस्तानुपवेशयेत् । २०८ । उपवेश्यतु ता-न्विप्रानासनेष्वजगुहितान् गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् । २०९ । तेषामुदकमानीय सपविचांस्तिलानपि अग्नौ कुर्या-दनुवातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैस्सह । २१० । अग्नेस्सोमयमाभ्याञ्च कृत्वाप्यायनमादितः हविर्हानेन विधिवत्पश्चात्सन्त्ययेत्पितृन् । २११ । अग्न्यभावेतु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् यो ह्यग्निस्सद्विजो विप्रैर्भवेदर्शिभिरुच्यते । २१२ । अक्रोधनान रुप्रसादान्मदन-त्येतान् पुरातनान् लोकस्याप्यायने युक्तान् श्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान् । २१३ । अपसव्यमग्नौ हत्वा सर्वमादत्तद्विचक्रम अदरुको न हस्तेन निर्वपेद्दुदकम्भवि । २१४ । चींस्तु तस्माद्विशेषात्पिण्डान् कृत्वा समाहितः श्राद्धकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः । २१५ ।

ब्राह्मणों को भी । १०८ । कुछ तिल रहित जल को ब्राह्मणों के देके उन ब्राह्मणों की आज्ञा पाके उन ब्राह्मणों के सहित अग्नि में होम करे । १०९ । पहिले अग्नि होम यम इव सब को हवि देके पीछे पितरों को अन्न आदि देवे । ११० । अग्नि होवे तो ब्राह्मण को हाथ ही में होम करे जोई अग्नि होई ब्राह्मण से इस बात को संतुष्ट मानने वाले ब्राह्मणों ने कहा है । १११ । क्रोध से रहित प्रसन्न मुख पुरातन लोक छद्भि के निमित्त उद्योग को प्राप्त श्राद्ध को पात्र ब्राह्मण से इस बात को जगु आदि अपिबों ने कहा है इस लिये देवता को श्राद्ध ब्राह्मण के हाथ में देना यह पूर्व कथित विधि का अनुवाद है (अर्थात् छिद्भि का कथन है) । ११२ । अग्नौ करण होम को दक्षिण हाथ (अर्थात् दक्षिण दिशा में करके) प्रपन्न करके दक्षिण हाथ से पिण्ड धरने की भूमि में जल देना । ११३ । जल से बची जो हवि है उस से तीन पिण्ड बना के दक्षिण हाथ से एकाग्रचित्त और दक्षिण मुख होकर कुक्षी पर उन पिण्डों को देवे । ११४ । अपने कर्म कण्ड के द्युत में कथित विधि से कुक्षी

पर उभ पिण्डों को देकर पिण्ड के गोचे का जो दृश है उस के मूल में हाथ को पीछे दृष्टप्रपितामह आदि तीन पुरुषों के दक्षिण के स्थिते । २१६ । मंत्र जानने वाला उत्तर मुख होकर आचमन और तीन प्राणायाम को यथा शक्ति करके वसन्त आदि ऋतुओं को और पितरों को नमस्कार करे । २१७ । पिण्ड दान के पहिले पिण्ड रखने की भूमि में जो जल दिया है उस पात्र में गचा जो जल है उस को सब पिण्डों के समीप में क्रम से देवों पीछे उन पिण्डों को एकाग्र चित्त होकर क्रम से सुंवे । २१८ । पिण्डों में थोड़ा थोड़ा अन्न को क्रम से लेकर उस को नेवते हुए बैठे ब्राह्मणों को विधि पूर्वक पहिले भोजन करावे । २१९ । पिता के जोते हुए मरे हुए जो पितामह आदि तीन पुरुष उन को आहु करे अथवा पिता का जो ब्राह्मण है उस के स्थान में अपने पिता ही को भोजन करावे और पितामह प्रपितामह को पिण्ड देवों दोनों के निमित्त ब्राह्मण भोजन भी करावे । २२० । जिस का पिता मर गया हो और पितामह जीता हो सो पिता का नाम लेकर प्रपितामह का नाम लेवे । २२१ । अथवा जिस प्रकार से जोते पिता को भोजन कराया कहा है उसी प्रकार से जोते पितामह को भोजन

न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् तेषु दर्भेषु तं हस्तन्निमृज्यास्त्रेपभागिनाम् । २१६ । आचम्योदकपरावृत्यपि रायम्य शनैरस्नन् पटुतंथ नमस्तुर्यात्पितृनेव च मंचवित् । २१७ । उदकस्निनयेच्छेपं शनैः पिण्डान्तिके पुनः अर्वाजिघ्रेष्व तान् पिण्डान्यथान्युत्तान् समाहितः । २१८ । पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः तानेव विप्रानासीनांस्त्रिधिवत्पूर्वमाशयेत् । २१९ । धियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् विप्रवद्वापितं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् । २२० । पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीघेक्षापि पितामहः पितुस्सनाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् । २२१ । पितामहो वा तच्छाड्भुञ्जीतेत्य ब्रवीन्मनः कामं वासमनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् । २२२ । तेषान्दत्त्वा तु हस्तेषु सपविचन्तिलोदकम् तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत् स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् । २२३ । पालिभ्यान्तृपमं गृह्य स्वयमन्नस्य वर्द्धितम् विप्रान्तिके पितृन् ध्यायन् शनैरुपनिक्षिपेत् । २२४ । उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते तद्विप्रलुपन्त्य सुराः सहसा दुष्टचेतसः । २२५ । गुणांश्च रूपशाकाद्यान् पयो दधि घृतममधु विन्यसेत्प्रयतः पूर्वभूमावेव स गाहितः । २२६ । भक्ष्यभोज्यञ्च विविधं मूलानि च हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च

करावे पिता प्रपितामह को पिण्ड देवे इस बात को मनु जी ने कहा है अथवा पितामह को आज्ञा पाके पिता प्रपितामह दृष्टप्रपितामह को पिण्ड देवे पितामह को भोजन करावे । २२२ । उन ब्राह्मणों के हस्त में तिल जल कुश को देके पिण्डों में निकाला जो थोड़ा थोड़ा भाग है उस को पिता आदि तीनों के जो ब्राह्मण है उन को क्रम से देवे इस बात को पहिले कह आए हैं बीच में और प्रसंग चला इस लिये उसी का स्मरण कराया है । २२३ । आप दोनों हाथों से अन्न संपूर्ण पात्र को रमोर्ध के गृह में लाकर पितरों का चिंतन करता ऊँचा ब्राह्मणों के समीप में धीरे से परोसै । २२४ । एक हाथ से लाए हुए अन्न को अक्षुर लोग क्षीन लेते हैं इस लिये दोनों हाथों से लाना चाहिए । २२५ । एकाग्र चित्त होकर भूमि में गिरने न पावे ऐसी रीति से अन्न दाल जग दूध दही जो मधु दूध सब को भूमि में स्थापन करे । २२६ । भक्ष्य (अर्थात् लड्डु आदि) भोज्य (अर्थात् जाउर आदि) नाना प्रकार फल मल आदि हृदय के प्रिय मांस

सुगंध सहित पीने की वस्तु इन सभी को भी स्थापन करें। २२७। एकाग्रचित्त होकर सब पदार्थों को ब्राह्मणों के समीप लाकर कम से यह मधु^१ वह आम्रिल^२ हैं ऐसा सभी के गुण को कहत मंते परोसै। २२८। रोदन क्रोध असत्य भाषण इन को छोड़ देवे पाँच से अन्न को न छूवे उल्लास उल्लास अन्न को पाच में न राखे। २२९। रोदन कोप असत्य भाषण पाँच से छूना अन्न को उल्लाना इन सभी से कम करके प्रेत शत्रु कुक्षुर राक्षस पाप करने वाला इन सभी को वह अन्न जाता है। २३०। मसर (अर्थात् और के ग्रुभ में देष करना) को छोड़कर जो जो वस्तु ब्राह्मणों के हूँ उस उस वस्तु को देवे परमात्मा के निरूपण की कथा को कहें पितृगणों के यह दृष्ट हैं। २३१। वेद धर्म शास्त्र आख्यान (अर्थात् गरुड मित्रावरुण आदि की कथा) महा भारत पुराण श्री सृक्त शिव सङ्कल्प सृक्त इन सब को ब्राह्मणों को सुनावे। २३२। आप संतुष्ट होकर प्रिय वाणी कथन आदि से ब्राह्मणों का संतुष्ट करे जहदी न करे यह अच्छा सङ्ग है यह अच्छी जाति है इस रीति से

। २२७। उपनीय तु तत्सर्वं शनकैस्सुसमाहितः। परिवेषयेत् प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन्। २२८। नासमापातयेज्जातु न कुप्य न्नातृत्वदेत्। न पादेन स्पृशेदन्नन्न चैतदवधूनयेत्। २२९। असङ्गमयति प्रेतान् कोपेरी न नृतं शुनः। पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम्। २३०। यद्यद्रोचेत् विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः। ब्रह्मोपाय कथाः कुर्यात्पितृणामेतदीप्सितम्। २३१। स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि। आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च। २३२। हर्षयेत् ब्राह्मणां स्तुष्टौ भोजयेच्च शनैः शनैः। अन्नाद्येनासक्तैस्तान्गुणैश्च परिचोदयेत्। २३३। व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्। कुतपश्चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम्। २३४। चीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः। चीणि चाच प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम। २३५। अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्बुद्धीरन्स्तेपि वाग्यताः। न च द्विजातयो ब्रूयुर्दद्यात् पृष्टा हविर्गुणाः। २३६। यावदुष्णमभवत्यन्नं यावदश्राप्ति वाग्यतः। पितरस्तावदश्रन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः। २३७। यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः। सोपामत्कथं यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते। २३८। चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च। रजस्वला च घण्टश्च नेष्टेरन्नश्रीति द्विजान्। २३९। होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिनीक्ष्यते। दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तन्नश्चैत्यथा यथम्। २४०। प्राणेन श्करो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः।

वस्तुओं के गुण को कथन करत मंते भोजन करावे। २३३। दौहित्र (अर्थात् लड़की का लड़का) व्रत में भी होता उस को यत्न पूर्वक श्राद्ध में भोजन करावे नेपाली कंबल का आसन देवे श्राद्ध की भूमि में तिल को छीटे। २३४। श्राद्ध में तीन वस्तु पवित्र हैं दौहित्र नेपाली कंबल तिल और तीन दस्त की प्रशंसा है श्राद्ध में वह तीनों वस्तु ये हैं कि पवित्रता शान्ति धीरता। २३५। वे ब्राह्मण सब मौन होकर अति गरम अन्न को भोजन करें वस्तुओं के गुण को दाता पृक्त कुक्षु न बोलें। २३६। जब तक अन्न गरम है और भोजन करने वाले बोलते नहीं हैं तब तक पितर लोग भोजन करते हैं। २३७। शिर को बांधे ऊपर और दक्षिण मुख बैठे ऊपर जूता को पहिने ऊपर जो भोजन करते हैं वह भोजन राक्षस को पङ्कचता है। २३८। चाण्डाल बाराह (अर्थात् शूकर) मृग कुक्षुर रजस्वला नपुंसक ये सब ब्राह्मणों के भोजन करते ऊपर न देखें। २३९। देव कर्म में अथवा पितृ कर्म में इन सभी के देखने से सब कर्म नष्ट हो जाता है। २४०। शूकर मृग कुक्षुर शूद्र

वे एक कम करके खंभनाथ की कण्डू दृष्टि स्वर्ग देव यमें में दास करते हैं । २४१ । खञ्ज वा काणा दाता का टहलू भी हो खञ्ज हीन खंभनाथ नामा किम्बा अधिक खंभनाथ हो तो इन दोनों को आहु के देव से निकाल देवे । २४२ । ब्राह्मण अथवा भिक्षु के दोनों भोजन के अर्थ आए हो तो मंत्रों ब्राह्मणों की आज्ञा पाके प्रथि पूर्वक उन्हीं का प्रति पूजन करे । २४३ । सर्व प्रकार के अन्न आदि को अजस्र आदि में मिलाकर जल डालके उस अन्न को भोजन किए जो ब्राह्मण हैं उन्हीं को आगे भूमि में कुश के ऊपर डाल देवे । २४४ । जो बाजक अग्नि दाह के योग्य नहीं हैं और मर गए हैं और जो दाघ से रहित कुल स्त्रियों को त्याग करने वाले हैं और मर गए हैं उन दोनों को वह अन्न मिलता है जो कुश के ऊपर डाला गया है । २४५ । भूमि में जो जूठा अन्न है सो सब दास वर्ग का है परन्तु वह दास वर्ग कुटिलता और बंधकता के दोनों दोषों में रहित होवे । २४६ । ब्राह्मण तत्रिय वर्गों के मरण दिन से ऋषिण्डो क्रिया तक बिना देव के रिमिन्न ब्राह्मण भोजन न

था तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शनावरवर्णजः । २४१ । खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्यापि वा भवेत् । हीनातिरिक्तगात्रो दातम-
प्यपनयेत्युनः । २४२ । ब्राह्मणस्मिष्टकस्वापि भोजनार्थमुपस्थितम् । ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातशक्तितः प्रतिपूजयेत् । २४३ । सार्धवर्षिक-
मन्त्रार्थं सक्तीया साध्वारिणा । समुत्सृजिदुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि । २४४ । असंस्कृतप्रसीतानां त्यागिनां कुल्योपिताम् ।
उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरन् यः । २४५ । उच्छेषणभूमिगतमजिह्वस्याशठस्य च । दासवर्गस्य तत्पितृभ्यो भागधेयं प्रचक्षते ।
२४६ । आसपिण्डक्रियाकर्म्मविजातेः संस्थितस्य तु । अदैवभोजयेच्छाद्विष्पिण्डोऽनेकान्तु निर्वपेत् । २४७ । सह पिण्डक्रियायान्तु
क्षतायामस्य धर्मतः । अनदैवावृता कार्यामिण्डनिर्वपणं मुनिः । २४८ । आहमभ्रजा य उच्छिष्टं दृपलाय प्रयच्छति । समूहो नरकं
याति कालसूचमवाकशिराः । २४९ । आहमभ्रवृषलोत्पन्तदृष्ट्योऽधिगच्छति । तस्याः पुरीषे तन्मासमितरस्तस्य शेरति । २५० ।
पृष्ठा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः । आचान्ताथानुजानीयादभितो रम्यतामिति । २५१ । स्वधास्त्वित्येवं तं वृयुर्वाह्णस्त-
दनन्तरम् । स्वधाकारः पराद्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु । २५२ । ततो मुक्तवतास्तेषामन्नशेषश्चिबेदयेत् । यथा वयुस्तथा कुर्याद
मुष्मातस्ततो द्विजैः । २५३ । पितृभ्यो स्वदितमित्येव वाच्यत्रोष्टे तु सुश्रुतम् । सम्पन्नमित्यभ्युदये दैवे हचितमित्यपि । २५४ । अपरा-

करणे किंतु प्रेत के निमित्त एक ब्राह्मण को भोजन करावे और एक पिण्ड को देवे । २४७ । ऋषिण्डो करके उत्तर समावासा की आहु के विधान से चयाह में भी पिण्ड को पुत्र देवे । २४८ । आहु के अन्न को भोजन करके जूठा अन्न शूद्र को जा देता है सो मूठ गोचि शिर किए हुए काल खूब नाम नरक में जाता है । २४९ । ब्राह्मण भोजन करके उस दिन रात्रि में कोई स्त्री के साथ जो गमन करता है उसका फिर एक मास तक उसी स्त्री के बिठा में ब्रयन करते हैं । २५० । अक्षे प्रकार से भोजन किया ऐसा पूर के तप्त आग को आचमन करमा तदनन्तर आहु ऐसा बोले आहु करने वाला । २५१ । तदनन्तर वे सब ब्राह्मण स्वधास्तु ऐसा बोले अर्घ्य पिण्ड कर्म में स्वधा ऐसा करना बड़ा आशीर्वाद है । २५२ । तदनन्तर सब ब्राह्मणों को शेष अन्न को निवेदन करे ऐसा वह ब्राह्मण कहें ऐसा करे । २५३ । वही द्रिष्ट आहु में अग्नि अन्न के अर्थ कथित ऐसा कहना चाहिए दृष्टि आहु में सम्पन्न ऐसा कहना चाहिए देवता को निमित्त जो आहु है उस में हचित ऐसा कहना

चाहिए । २५४ । अपराल काल कृग गोबर आदि से भूमि का शोधन तिल उदारता अन्न आदि का संस्कार पंचति के पवित्र करनेहार ब्राह्मण ये सब पार्षण आहु में सम्पत्ति है । २५५ । मंत्र पर्वाल काल हविष्य भूमि शोधन जो पूर्व कह आए हैं ये सब देव कर्म के सम्पत्ति हैं । २५६ । मुनिघों के अन्न दूध शोभलता का रस विकार रहित मांस विना बनाया लवण येंधा आदि ये सब स्वभाव से हवि कहते हैं । २५७ । गोष्ठी आहु (अर्थात् द्वादश प्रकार के आहु गणना में गोप्याग्नि-स्वार्थमष्टमम् ऐसा विश्वामित्र ने कहा है) में सृष्टं ऐसा कहना चाहिए उन ब्राह्मणों को बिदा करके आहु करने वाला पवित्र होकर निश्चित दक्षिण दिशा की ओर कीर्त्तन करत पितरों से आगे जो बर कहेंगे मांगें । २५८ । हमारे कुल में दाता वेद संतति ये सब बड़े अहु बनी रहें बहूत धन आदि देने की वस्तु हों । २५९ । इस रीति से पिण्डों को देकर तदनंतर उन पिण्डों को गौ ब्राह्मण वकरा अग्नि इन सभी में से एक को भोजन करावे अथवा जल में डाल देवे । २६० । कोई

ल्ल तथा दर्भा वास्तुसम्पादनतिष्ठाः । सृष्टिर्मुष्टिद्विजाद्याग्राः आहुकर्मसु सम्पदः । २५५ । दर्भाः पवित्रं पृषालो हविष्याणि च सर्वशः । पवित्रं यच्च पूर्वोक्तम्विज्ञेया हव्यसम्पदः । २५६ । मुन्यन्नानि वयः सोमो मांसं यच्चानुपस्तृतम् । अक्षारलवणेष्वैव प्रकृत्या हविरुच्यते । २५७ । विमृज्य ब्राह्मणां स्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः । दक्षिणां दिशमाकांक्षन् याचे तेमान्वरान्पितृन् । २५८ । दातारो नोभिवर्द्धतां वेदास्तन्तिरेव च । अहु च नो माव्यगमद्वहुदेयश्च नोऽस्त्विति । २५९ । हवन्निर्वपणं कृत्वा पिण्डां स्तांस्तदनन्तरम् । गां विप्रमजमग्निं या प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् । २६० । पिण्ड निर्वपणं केचित्पुरस्तादेव कुर्वते । वयोभिः खाद्यन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनल्पेभ्यः । २६१ । पतिव्रता धर्मरत्नी पितृपूजनतत्परा । मध्यमन्तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी । २६२ । आयुमंतं सुतं हते यशो मेधा समन्वितम् । धनवन्तम्पूजावन्तं सात्विकन्धार्मिकन्तथा । २६३ । प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायम्पूजयेत् । ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानपि भोजयेत् । २६४ । उच्छेपणन्तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । ततो गृहवलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः । २६५ । हविर्यच्चिररात्राय यच्चानंत्याय कल्प्यते । पितृभ्यो विधिवदत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः । २६६ । तिस्रेर्त्रिहिवैभोपेरद्विर्मुन्यपानेन वा । दत्तेन नासन्तृप्यन्ति विधिवन्पितरो नृणाम् । २६७ । द्वौ मासौ

आचार्य कहते हैं कि ब्राह्मण भोजन के पीछे पिण्ड दान करना कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि उन पिण्डों को पत्थियों से भोजन करना कोई आचार्य जल में अथवा अग्नि में डालना ऐसा कहते हैं । २६१ । पति व्रता अपनी स्त्री पितरों की पूजा करने वाली लड़का होने की इच्छा करती पितामह पिण्ड को अच्छे प्रकार से भोजन करे । २६२ । बड़ी आयुष्य यश बुद्धि संतति सबगुण धरा इन सभी से युक्त पुत्र हों । २६३ । हाथ को धोके आचमन करके बचे अन्न में जाति को भोजन करावे तदनंतर संबंध वाले को भोजन करावे । २६४ । ब्राह्मणों का जूठ तब तक रहे जब तक ब्राह्मण बिदा न हों ब्राह्मणों के बिदार् के अनन्तर जूठे स्थान को धोवे तदनंतर गृह बलि करे यह धर्म व्यवस्था के प्राप्त है । २६५ । जो हवि बहूत काल तक दक्षि को करती है और जो हवि अनंत काल की लिये होती है पितरों की विधि पूर्वक देने से भी सब कहेंगे । २६६ । तिल धान्य यत्र उरुद उल्ल दल्ल पल्ल दल्ल में से कोई एक वस्तु को शास्त्र की रीति करके देने से १ मास तक पितरों की

हति होती है । २६० । मकली हरिण भेड़ा पक्षी इन सभी के मांस को देने से क्रम करके २ ३ ४ ५ महीना तक पितरों की हति होती है । २६८ । बकरा चित्त मृग एण (अर्थात् मृग विशेष) रु रु (एभी मृग विशेष है) इन सभी के मांस को देने से क्रम करके ६ ७ ८ ९ महीना तक । २६९ । गूकर भेसा इन दोनों में से कोई एक के मांस को देने से १० मास तक खरहा ककुआ इन दोनों में से कोई एक के मांस को देने से ११ महीना तक । २७० । गौ के दूध से अथवा उसी दूध की जाउरि से १ वर्ष तक वार्धिणस (अर्थात् नदी आदि में जल को पीते हुए जिस बकरा का दोनों कान जल को डूबे और श्वेत वर्ण हो द्रिष्ट्य जिस की क्षीण है) को मांस से १२ वर्ष तक । २७१ । कालशाक महाशक्का (अर्थात् रुस्त्य विशेष) गैडा लाल बकरा इन सभी में से कोई एक की मांस को देने से और मधु से दोनों से अनन्त वर्ष तक । २७२ । वर्षाकाल में मवायुक्त त्रयोदशी तिथि में कोई वस्तु को मधु से युक्त करके देवे तो भी अच्छे फल को प्राप्त होता है । २७३ ।

मत्स्यमांसेन चीन्मासान हरिणेन तु । औरभेणाय चतुरः शाकुनेजाय पंच वै । २६८ । पण्मासान्छागमांसेन पार्यतेन च सप्त वै । अष्टावेणस्य मांसेन रौएवेण नवैव तु । २६९ । दशमासां स्तु हृष्यन्ति वराह महिषा म्रिपैः । शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु । २७० । सम्बत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन च । वर्द्धीणस्य मांसेन हृष्यन्ति दशवर्षिकी । २७१ । कालशाकं महाशक्काः खड्गलोहामिषमधु । आनंत्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्तानि च सर्वशः । २७२ । यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात् त्रयोदशीम् । तदप्यष्टयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च । २७३ । अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात् त्रयोदशीम् । पादसं मधुसर्पिभ्यां प्राक् छाये कुञ्जरस्य च । २७४ । यद्यद्दाति विधिवत्सम्यक् अद्वा सप्तवितः । तत्तत्पितृणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् । २७५ । दृष्ट्वापक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । आह्वे प्रशस्तास्तियथो यद्येता न तथेतराः । २७६ । युष्टु कुर्वन् दिनर्शेषु सर्वान्कामान्समश्नुते । अयुष्टु तु पितृः सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् । २७७ । यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते । तथा आह्वय पूर्वपक्षादपराह्णो विशिष्यते । २७८ । प्राचीना वीतिना सम्यगपसव्यमतद्विणा । पित्र्यमानिधना-

पितर लोग मनाते हैं कि हमारे कुल में ऐसा पुरुष उत्पन्न होवे कि भाद्र हृष्ण त्रयोदशी तिथि में अथवा उसी मास की दूसरी कोई तिथि में पूर्ण दिशा में दूर्य की छाया गए हुए काल में (अर्थात् अपराह्न काल में) मधु घी से युक्त जाउरि को देवे । २७४ । जो कुछ वस्तु विधि पूर्वक अच्छे प्रकार से अद्वा सहित पितरों को देते हैं उसका अनन्त फल परलोक में होता है । २७५ । दृष्ट्वापक्ष में दशमी से लेकर चतुर्दशी को छोड़कर अमावास्या तक तिथि जैसी आहु में अच्छी है तैसी और नहीं । २७६ । सम तिथि और सम नक्षत्र में आहु करने से सम्पूर्ण कामना को पाता है (जैसे द्वितीया चतुर्थी भरणी रोहिणी में) विषम तिथि और विषम नक्षत्र में आहु करने से धन विद्या से परिपूर्ण संतति को पाता है (जैसे प्रतिपदा तृतीया अश्विनी कृतिका में) । २७७ । जिस प्रकार करके शुक्ल पक्ष से दृष्ट्वापक्ष प्रशस्त है आहु में तिसी प्रकार करके पूर्वाह्न काल से अपराह्न काल प्रशस्त है । २७८ । दहिने कंधे जनेऊ को रखे हुए आलस को छोड़े हुए कुश को हाथ में लिए हुए पित्र

तोर्य करके शास्त्र की रीति से पितरों के कर्म को जब तक करे । २७६ । रात्रि में आहु न करना वह राक्षसी बना कहाती है और दोनों मंथा में और प्रातः काल तीन मुहूर्त तक इसमें भी आहु न करना । २७८ । इस विधि से वर्ष में हेमन्त दोष वर्षा यह तीनों अतु में तीन बेर आहु को करे और पंच महा यज्ञ तो नित्य हो करे । २७९ । अग्नि होंचो को पितृ यज्ञ संबंधी होम लौकिकाग्नि में नहीं होता और अमावास्या बिना आहु नहीं होती । २८० । पंचयज्ञ सम्बन्धी आहु न हो सके तो स्नान करके जो ब्राह्मण जल से तर्पण करता है उसी से सपूर्ण पितृ यज्ञ के फल को पाता है । २८१ । पिता को वसु कहते हैं पिताहम को रुद्र कहते हैं प्रपितामह को आदित्य कहते हैं यह नित्य श्रुति है । २८२ । ब्राह्मणों के भोजन से बचे जो अन्न उस को भोजन करके रहे अथवा यज्ञ करने में बचे जो अन्न उस को भोजन करके रहे । २८३ । भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषि लोगो पंच यज्ञ के विधान को कहा अब ब्राह्मणों की जीविका के विधान को समिए । २८४ ॥ * ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुलुक भट्ट व्याख्या ऽनुमार्गिणां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री मत्कल्याणी संस्कृत पाठशास्त्रीय धर्म शास्त्रि

त्कार्यम्बधिवद्भर्माणिना । २७६ । रात्रौ आहुन्न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा । संध्योरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते । २८० । अनेन विधिना आहुं चिरदस्येह निर्वपेत् । हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहम् । २८१ । न पैतृ यज्ञियो हेमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते । न दर्शेन विना आहुमाहिताग्नेर्दिजन्मनः । २८२ । यदेव तर्पयत्यग्निः पितृन्स्नात्वा द्विजात्मनः । तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् । २८३ । वसुस्त्वदन्ति तु पितृन् रुद्राश्चैव पितामहान् । प्रपितामहां स्तथाऽदित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी । २८४ । विधसाशी भवेन्नित्यन्नित्यस्वामृतभोजनः । विधसा भुक्त्येपन्तु यज्ञेपन्तथा मृतम् । २८५ । एतद्वोऽभिहितं सर्वस्विधानस्याञ्चयज्ञिकम् । द्विजातिमुखवृत्तीनाम्विधानं श्रूयतामिति । २८६ । ॥ * ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगु प्रोक्तायां संहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ अतुर्धमायुषो भागमुपित्वाद्यङ्गुरौ द्विजः । द्वितीयमायुषो भागं हतदारो गृहे वसेत् । १ । नद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः । या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि । २ । याचामाचाप्रसिध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः । अकेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम् । ३ । अतमृताभ्याञ्जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा । सत्यान्तताभ्यामपि

गुल्लजार शर्मा पण्डित हतायां तृतीयोऽध्यायः * ॥ आयुष का चार भाग में पहिला भाग तक गुरु कुल में बास करे दूसरे भाग तक विवाह करके गृह में रहे इस स्नान में यह संदेह हो सकता है कि आयुष का निश्चित काल परिमाण जान नहीं पड़ता चार भाग का पहिला भाग किस प्रकार से जाना जाय कदाचित्त कहे कि सौ वर्ष का पुरुष होते हैं यह श्रुति में लिखा है तो २५ वर्ष चौथा भाग हुआ तो मनु जी ने छत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य करना यह कहा है इस के साथ विरोध पड़ेगा इस लिये जब तक ब्रह्मचर्य होसके सोई आयुष का चौथा भाग है । १ । जीवों को अद्रोह करके अथवा थोड़ा द्रोह करके जो जीविका है उससे बिना आपत्काल में ब्राह्मण जीवन करे । २ । अनिन्दित कर्म से और शरीर को क्षेप न होने पावे ऐसी रीति से अपने भोजन मात्र के लिये धन का संचय करे । ३ । अतममृत मृत प्रमृत मृत सांच इन सब वृत्तियों से जीवन करे । ४ । उद्धमिल को अत कहते हैं बिना मांगे मिले उस को अमृत कहते हैं

भागों में किसी उस को गण कहते हैं खेतों को प्रमृण कहते हैं । ५ । वणिधों के कर्म को मूठ याच कहते हैं सेवा को सुन्ने की दत्ति कहते हैं दक्षिण के सुन्ने की दत्ति को होड़ देवे । ६ । निष्पन्न नैमित्तिक धर्म द्वाय पोष्यवर्ग सहित को तान वर्ग तम भोजन को सके दत्तमें अन्न का संचय करे अथवा पूर्व कथित को एक वर्षतक भोजन करे, सके दत्तमें अन्न का संचय करे अथवा सब को एक दिन को भोजन खे।य अन्न का संचय करे । ७ । चर प्रकार की आश्रय करे हैं इस में जो जो चर करे हैं सो सदैव पूर्व पूर्व से बड़े हैं धर्म से लोक को जीतने वाले हैं । ८ । इन चरों में पहिले ह कर्म (अर्थात् यज्ञ कराना पढ़ाना प्रतिपद्यत आदि जो कह आह हैं) से जीवन करे दूसरा तीन कर्म (अर्थात् यज्ञ कराना पढ़ाना प्रतिपद्य) से जीवन करे तीसरा दो कर्म यज्ञ कराना पढ़ाना से जीवन करे चौथा एक कर्म (अर्थात् पढ़ाना) से जीवन करे । ९ । जिस ब्रह्म देवदेवों में जीवन करे अग्नि हो।च को करे दर्श (अर्थात् समावास्या) पूर्णमासी आदयण (अर्थात् नक्षत्र जब होवे एक तीर्ण) का।स में दृष्टि (अर्थात् यज्ञ) को केवल करे । १० । जीविका के निमित्त अन्न प्रिय कषा विविध बंधी आदि को न करे मूठ गुण कह को और दंभ से जो जीविका है उस को होड़

वा न स्रष्टव्या कदाचन । ४ । अतमुच्छ्रितं श्रेयममृतं स्वादयाचितम् । अतन्तु याचितमैश्वर्यममृतकर्मणं स्मृतम् । ५ । सत्त्वावृत्तन्तु वासिज्यन्तेन वैवापि जीव्यते । सेवाश्रद्धतिराख्याता तस्मात्ताम्परिदर्जयेत् । ६ । कुशलाधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा । अद्वैदिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा । ७ । चतुर्षामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनानाम् । ज्ञायान् परः पगो घेवो धर्मो तेनैव कश्चित्तमः । ८ । षट् कर्मणां भवेन्नित्यन्विभिरन्यः प्रवर्तते । द्वाभ्यामेकयतुर्यस्तु ब्रह्मसत्त्वेन जीवति । ९ । वत्तयंश शिखां छाभ्यामग्निहोचवराग्रयणः इष्टीः पार्थादनास्तीयाः केवला निर्वदेत्सदा । १० । न लोकावृत्तं वर्तेत दृष्टिहेतोः कश्चन । अजिज्ञा ममृतां ब्रुवां जीवेत् ब्राह्मणजीविकाम् । ११ । सन्तोषम्परमास्थाय सुखार्थं संवसे । भवेत् । सन्तोषमूलं हि सुखं दुःसमूलमिवर्जयः । १२ । अतोन्वतमयावृत्त्या जीवेत् स्यात्को द्विजः । स्वर्गारुध्यदृश्यानि दत्तामीमानि धारयेत् । १३ । वेदोदितं स्वकं कर्मात्तु कुर्मावतन्त्रितः तद्विकुर्यन यथाशक्ति प्राप्नोति परमां मतम् । १४ । नेहेतार्थान्प्रसज्येन न दिदृक्षेन कर्मणा । न दिदृक्षान्प्रसज्येन नार्थान्प्रसज्येन यतस्ततः । १५ । इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः । अतिप्रसक्तिश्चैतेषां मनसा सन्निवर्तयेत् । १६ । सर्वान्

कर ब्राह्मणों की ब्रह्म जीविका से जीवन करे । ११ । परम संतोष को पाके सुखार्थ संयम (अर्थात् दृष्टि नियम) को करे क्योंकि इस का अङ्ग संतोष है दृष्टि का अङ्ग संतोष है । १२ । जो पीछे जीविका कहि आए है उसमें से कोई एक जीविका से जीवन करत वेद का पठन समाप्त करके ज्ञान के निमित्त (अर्थात् समावर्त्तन कर्म के निमित्त) संयम (अर्थात् दृष्टियों का नियम) को करे और स्वर्ग यज्ञ आयुष इन सबों के रित करन हार जो व्रत भागे कहिने उन को धारण करे । १३ । अक्षय को छोड़ कर वेद में कथित जो अपना कर्म है उस को करे यथा शक्ति उस कर्म को करने से परमगति को पाता है । १४ । गाना पढ़ाना यज्ञ कराने के योग्य जो नहीं है उस को यज्ञ कराना इन सब कर्मों से जीवन न करे पतित आदि से भी धन का संग्रह न करे । १५ । इन्द्रिय से रूप रस गंध स्पर्श दृश्य इन सबों में प्रसक्त न होवे इन सबों में अति प्रसक्ति को मन से निवृत्ति करे । १६ । वेद पढ़ने का विरोधी जो अर्थ (कश्चित् धन)

उस का त्याग करके जिस किसी प्रकार से वेद को पढ़ता रहै इसी से कृत कृत्य (अर्थत् करने की योग्य जो वस्तु को) हो जाता है । १७ । वष कर्म अर्थ श्रुत (अर्थत् सुना हुआ) देश वेष्टव्यो वृद्धि दन र्भों को मरूपवस्तु को आचरण कृत भवे इस संशय में विचरे । १८ । वृद्धि को बढ़ाने वाला जो शास्त्र है (अर्थत् व्याकरण मीमांसा स्मृति पुराण न्याय आदि) धन को देने वाला जो शास्त्र है (अर्थत् शुक्राचार्य का और दृष्टान्त का दत्तया) (एत करने वाला जो शास्त्र है (अर्थत् वैदिक और ज्योतिष) इन सब को देखना वेदार्थ को कृता वला जो दण्ड है उस को भी नित्य ही देखना । १९ । जैसा जैसा शास्त्र का अभ्यास करता है पुरुष तैसा तैसा विशेष करके जानता है और ज्ञान भी बढ़ता है उस पुरुष को । २० । अपि यज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ मनुष्य यज्ञ पित्रयज्ञ इन सब यज्ञों को यथा शक्ति न छोड़े । २१ । यज्ञ शास्त्र के जानन हार जो पुरुष हैं और इन यज्ञों को करने की इच्छा नहीं करते हैं सो नित्य ही इद्रियों में होम करते हैं । २२ । बाणी और प्राण इन दोनों में अक्षय यज्ञ िद्रि को देखते हुए एक पुरुष प्राण को बाणी में होम (अर्थत्

परित्यजेदर्शान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः । यथा तथा ध्यापयन्तु सा ह्यस्य हतहृत्यता । १७ । वयसः कर्मखोऽयस्य अतस्वाभिज-
नस्य च । वेष्टवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेद्दिह । १८ । वृद्धिदृष्टिकराण्यां धन्यानि च हितानि च । नित्यं शास्त्राख्यवेक्षेत नि-
गमांश्चैव वैदिकान् । १९ । यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति । तथा तथा विजानाति विज्ञानञ्च स्य रोचते । २० । अ-
पियज्ञन्देवयज्ञभूतयज्ञश्च सर्वदा । नृयज्ञस्मिदृष्टश्च यथा शक्ति न ह्यपयेत् । २१ । एतानि के महायज्ञान् यज्ञशास्त्रदिदो जनाः
। श्रुतोऽहमानाः सततमिन्द्रियेष्टेव जुह्वति । २२ । वाच्ये के जुह्वति प्राणं प्राणे वाचश्च सर्वदा । वाचि प्राणे च पशुक्तो दक्षनिर्ह-
तिमक्षयाम् । २३ । ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतेऽस्मै ह स्तदा । ज्ञानमूलं क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानदक्षिणा । २४ । अग्निहोचश्च
जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोऽस्तदा । दर्शेन चार्द्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि । २५ । सस्यान्ते नवस्येष्ट्या तदर्थं ते द्विजोऽध्वरैः । पशु-
ना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिवैस्मेसैः । २६ । नाग्विष्ट्या नवस्येष्ट्या पशुना चाग्निमाग्निद्वजः । नवान्नसद्यान्मांसस्य दूर्धमायु-

संपादान) करते हैं और वाणी को प्राण में होम (अर्थत् संपादन) करते हैं । २२ । संपूर्ण तिया का जड़ ज्ञान है ऐसा ज्ञान रूपी नेत्र से देखते हुए एक पुरुष ज्ञान हो करके इन यज्ञों से यजन करते हैं । २३ । मूर्खोदय में होम करना इस पल में दिन के आदि (अर्थत् प्रातःकाल) में और रात्रि के आदि (अर्थत् सायंकाल) में होम करना उर्य के अर्द्धय में होम करना इस पल में दिन के अंत (अर्थत् सायंकाल) में रात्रि के अंत (अर्थत् प्रातः काल) में होम करना अपरा उर्य के उदय में होम करना इस पल में दिन के आदि में दिन के अंत में होम करना उर्य के अर्द्धय में होम करना इस पल में रात्रि के आदि में रात्रि के अंत में होम करना अमावस्या में और पूर्णमासी में होम करना । २४ । नवीन अन्न के उत्पत्ति समय में नवस्य दृष्टि करके होम करना अतु के अंत में चातुर्मास्य यज्ञ करके होम करना होमो अयत में पशु करके होम करे वर्ष के अंत में अग्निहोम आदि यज्ञ को करे । २५ । बड़ी आहुत का इच्छा करने वाला जो अग्नि होनी चाहिये है सो नवीन अन्न से यज्ञ को बिना किए और पशु से यज्ञ को बिना किए हुए नवाग्न को और मांस को न भोजन करे । २६ । नवान्न

अन्न से और पशु से जो अग्नि तप्त नहीं ऊँई सो नवान्न और मांस के भोजन करने वाले के प्राणी का भोजन करने की इच्छा करती है । २८ । आसन भोजन शय्या जल मूल फल इन सभी में से कोई एक वस्तु से यथा शक्ति विना पजा के पाए हुए अतिथि गृहस्थ के गृह में वास न करने पावे । २९ । पाषण्डो (अर्थात् वेद विरुद्ध व्रत और चिन्ह के धारण करने वाले) निषिद्ध जीविका में जाने वाले बैडाल व्रतिक जिस का लक्षण आगे कहेंगे वेद में जिस की श्रद्धा नहीं है विरोधी तर्क से व्यवहार करने वाले ये सब अतिथि काल में प्राप्त हों तो वाणी मात्र में भी इन्हीं की पूजा न करे परंतु भोजन की तो देवे । ३० । वेद में पक्का और व्रत में पक्का अथवा दोनों में पक्का जो गृहस्थ है उस का पूजा हय और कव्य से करे विपरीत को वर्जन करे । ३१ । जो पाक को नहीं करते है ब्रह्मचारी पाषण्डो मन्यासी आदि इन्हें को शक्ति पूर्वक अन्न को गृहस्थ देवे अपने कुटुंबों के भोजन देके जो वंचे अन्न जल आदि उस में उस आदि जितने प्राणी हैं तिनसे सब को जल देवे । ३२ । स्नातक जो गृहस्थ है सो लुधा करके दुःस्वित हो तो राजा यजमान विद्यार्थी इन्हें सभी में

र्जिजीविपुः । २७ । नवेनानर्चिताद्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः । प्राणानेवात्तमिच्छन्ति नवान्नामिपगर्हिनः । २८ । आसनाशनश-
य्याभिरङ्गिर्मूलफलेन वा । न कस्य चिदसेङ्गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः । २९ । पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान्बकटतीक्ष्णवाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् । ३० । वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः । पूजयेद्बव्यकथ्येन विपरीतांश्च
वर्जयेत् । ३१ । शक्तितो पचमानेभ्यो दातव्यं ऋहमेधिना । सम्बिभागश्च भूतेभ्यो कर्त्तव्योऽनुपरोधतः । ३२ । राजतो धनमन्वि
च्छेत्संसीदन्स्नातकः श्रुधा । याज्यंते वासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः । ३३ । न सीदेत्स्नातको विप्रः श्रुधाशक्तः कथञ्चन ।
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति । ३४ । कृत्तकेशनखश्रुर्हान्तः शुक्राम्बरः शुचिः । स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्म-
हितेषु च । ३५ । वैणवीन्धारयेद्यष्टिं सोदकञ्च कमण्डलुम् । यज्ञोपवीतम्वेदञ्च शुभे रौक्मे च कुण्डले । ३६ । नैक्षेतोद्यन्तमादि-
त्यन्नास्तं यान्तङ्कदा च । नोपसृष्टन्न वारिस्थन्न मध्यन्नभसोगतम् । ३७ । न लंघयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति । न चोदके नि-
रीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा । ३८ । मृदङ्गान्दैवतम्विप्रं घृतममधु चतुष्पथम् । प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् । ३९ ।

धन की इच्छा करे और से नहीं यह शास्त्र की मर्यादा है । २७ । समर्थ जो स्नातक गृहस्थ है सो लुधा करके किसी प्रकार से दुःस्वित न होवे विभव रहत संते जीर्ण और अस्वच्छ वस्त्र से न रहे । २८ । वेदाभ्यास में और अपने हित कर्म में नित्य युक्त रहे और केश नख दाढ़ी इन्हें को काटे किए रहै स्नान वस्त्र पहिरे रहै पवित्रता से रहे दम्बियों के जियह किये रहें । २९ । बांस की लाठी जल सहित कमण्डलु यज्ञोपवीत सुंदर मुवर्ण के दो कुण्डल वेद इन सब को धारण करे । ३० । उदयकाल अस्तकाल मध्याह्नकाल में सूर्य को न देखें राहु करिके यस्त हों तो भी न देखें जल में न देखे । ३१ । वस्त्र को बांधने की रस्सी को लंघन न करे दृष्टि होत संते न धावे जल में अपने रूप को न देखें यह शास्त्र में निश्चय है । ३२ । कहीं जमें लगे और संमुख में उखाड़ी माटी गौ देवता ब्राह्मण घृत मधु और हज्र जाना हुआ घृत ये सब मिले तो इन्हीं के प्रदक्षिण करते ऊँचे गमन करे । ३३ । अति मत्त हो तो भी रज क्लृप्ता स्त्री से गमन न करे समान ब्रह्मपरा स्त्री

को साथ शयन न करे । ४० । रजस्वला स्त्री में जो गमन करता है उसको बुद्धि तेज बल नेत्र आयुष्य ये सब हीन हो जाते हैं । ४१ । रजस्वला स्त्री में जो गमन नहीं करता है उसको बुद्धि तेज बल नेत्र आयुष्य ये सब बढ़ते हैं । ४२ । स्त्री के साथ भोजन न करना और स्त्री भोजन करती है, छींकती है, जंभाती है, मुख से बौंटी आती है तो उसको न देखना । ४३ । आँखों से पृथक् न हो सगती है, घोंघों में घटक दो सगती है, नगी हो चिपकती है तो उसको न देखे जिस ब्राह्मण को तेज का कामना है सो । ४४ । एक बस्त्र को धारण किए हुए भोजन को न करे गंगा पूजा स्नान को न करे ईडा बाली को वा सामान इन सब में न दूँते । ४५ । जो ता खेत जल अग्नि के अर्थ किया जो ईंट का स्मृद्ध पर्वत पुराना देवता का गृह छोटे छोटे कीड़ों में डेर करे, कुई जो माटी इन सभी में न मूँते और न बिछा करे । ४६ । जो व सहित जो गड़हा है उस में और गरुन करते हुए खड़े हुए और नदी का तीर पर्वत का मस्तक (अर्थात् ऊँचा गृह) इस में भी उन दोनों कर्मों को

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्थियमात्तवदर्शने । समानशयने चैव न शयीत तथा सह । ४० । रजसाऽभिभूतान्नाग्नीक्षरस्य क्षपगच्छतः । प्रज्ञा तेजो बलश्चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते । ४१ । ताम्बिर्वर्जयतस्तस्य रजसा समभिक्षुताम् । प्रज्ञा तेजो बलश्चक्षुरायुश्चैव प्रवर्द्धते । ४२ । नाश्रीयाद्धार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्रुतीम् । क्षपतीं जृम्भमाणाम्वा न चासीनां यथा सुखम् । ४३ । नाङ्गदन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामदावृताम् । न पश्येत् सदन्तींश्च तेजस्कामो द्विजोत्तमः । ४४ । नाश्रमदादेकवासो न नग्नः स्नानमाचरेत् । न मूत्रमपि कुर्वीत न भस्मनि न गोमूत्रे । ४५ । न पालुहृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते । न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदा च न । ४६ । न ससत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः । न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके । ४७ । वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाम् । न कदा च न कुर्वीत दिग्लुप्तस्य दिसर्जने म । ४८ । तिरस्कृतोऽस्तेत्वाहो हारणं शांदा । निदम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः । ४९ । मूत्रोच्चार समुत्सर्गान्दिवा कुर्यादुदङ्मुखः । दक्षिणाऽभमुखो रात्रौ सन्ध्योश्च यथा दिवा । ५० । छायादामन्धकारे वा रात्रादहनि वा द्विजः । यथा सुखसुखः कुर्यात्प्राणादाधामयेषु च । ५१ । प्रत्यग्निस्मृतिस्त्वं च प्रति सोमोदकद्विजान् । प्रतिगाम्प्रतिवातश्च प्रज्ञा न शक्ति मे दतः । ५२ । नाग्निमुखे नोपधेन्नाग्नेष्टोत च स्त्रियम् । नामेध्यां प्रक्षिपेद्गमौ न च पादौ प्रतापयेत् । ५३ । अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलषयेत् । न चैनम्यादतः कुर्यान्न प्राणादाधमाचरेत्

न करे । ४० । अग्नि सूर्य जल ब्राह्मण सो वायु इन सभी को देखते हुए उन दोनों बर्गों को न करे । ४१ । रजसा अर्थात् तण वाट रंसा आदि में रूमि को ठाँप को और शिर को बाँध को सब अंगों को ठाँप को भोजन को कर्त और बिछा करे । ४२ । दिन में प्रातःकाल साँवले में उत्तर मुख पाकर और रात्रि में दक्षिण मुख होकर मूत्र और बिछा का त्याग करे । ४३ । छाया अंधकार प्राण वाधा भय इन सभी में रात्रि को अथवा दिन को जिस ओर दूर करे सो मुख सो देव सो और दूर कर मूत्र और बिछा का त्याग करे । ४४ । अग्नि सूर्य सोम जल ब्राह्मण सो वायु इन सब को देखते हुए मूत्र और बिछा का त्याग करने से बुद्धि का पात्र होता है । ४५ । अग्नि को मुख से न फूँकना अग्नि में अपवित्र वस्तु को न डालना और पाँव को न तपाना नगी स्त्री को न देखना । ४६ । पलङ्क के नीचे अग्नि को

न रखना अग्नि को लंघन न करना पांव से न छूना प्राण बाधा न करना । ५४ । सायं काल प्रातः काल में भोजन गमन मृतगा इन तीनों कर्मों को न करना भूमि को रेखा करके न लिखना धारण किया जो फूल की माला है उस को अपने शरीर से आप न निकालना किंतु दूसरा कोई निबाले । ५५ । जल में मूत्र विष्टा खंखार अपवित्र में लिपी उर्द कंठि वस्तु रुधिर विष इन सब को न डाले । ५६ । गृह में अकेला न सोवे विद्या आदि करके अपने से बड़ा हो और मृता हो तो उसको न जगावे, रजस्वला स्त्री में भाषण न करे बिना बुलाए यज्ञ में न जाय दर्शन के निमित्त जाय तो जाय । ५७ । अग्नि का गृह गौ का स्थान ब्राह्मणों के सनीप वेद का पढ़ना भोजन का करना इन सभी में दक्षिण हस्त को निकाले । ५८ । दूध को वा जल को पीती गौ हो तो उस को निवारण न करे और न किसी से कहै आकाश में इंद्र धनुष को देख कर किसी को न देखावे । ५९ । धर्म से रहित और वज्रत व्याधि से

। ५४ । नाश्रीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि सम्बिशेत् । न चैव प्रलिवेद्भूमिन्नात्मनोपहरेत् सजम । ५५ । नाप्सु मूत्रम्पुरी-
यम्वा षोवनम्वा समुत्सृजेत् । अमेध्यलिप्तमन्यदा लाहितम्वा विपाणि वा । ५६ । नैकः स्वपेच्छून्यगेहे शयानम्न प्रवेधयेत् ।
नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञज्ञच्छेन्न चावृतः । ५७ । अग्न्यागारे गवाङ्गोष्ठे ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ । स्वाध्याये भोजने चैव दक्षि-
णम्पाणिमुद्धरेत् । ५८ । न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीतकस्य चित् । न दिवान्द्रायुधगृहस्था वस्यचिद्दर्शयेद्दधः । ५९ । ना-
धर्मिके वसेद्भामे न व्याधिवहुले मृशम् । नैकः प्रपद्येताध्वानम्न चिरम्यर्वते वसेत् । ६० । न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधर्मिकजना-
वृते । न पापण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेत्यजैर्नृभिः । ६१ । न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहनातिसौहित्यमाचरेत् । नातिप्रगे नातिसाबन्ध सा-
यस्यातराशितः । ६२ । न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्यञ्जलिना पिवेत् । नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् आतुस्यात्कुतूहली । ६३ ।
न मृत्येदयवा गायेन् वादिचाणि वादयेत् । नास्फोटयेन् चच्छेदेन् च रक्तो विरावयेत् । ६४ । न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचि-
दपि भाजने । न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते । ६५ । उपानहौ च वासश्च धृतमन्यर्न धारयेत् । उपवीतमलङ्कारं

युक्त जो याम है उस में बास न करे अकेला मार्ग में न चले वज्रत काल तक पर्वत में न बास करे । ६० । शूद्र के राज्य में और अधार्मिक जन पाषण्डो गण
खाण्डालादि का उपद्रव इन्हीं में से कोई एक कर के संयुक्त जो याम आदि है उस में बास न करे । ६१ । तेल जिस का निकाला गया (अर्थात् पीना आदि)
उस को न भोजन करे अति भोजन को न करे अति प्रातः काल में अति सायं काल में भोजन न करे प्रातः काल में अति भोजन किए हो तो सायं काल
में भोजन न करे । ६२ । इस लोक में और पर लोक में अथ से रहित जो व्यापार उस को न करे अंजली से जल को न पीना जंघा पर लङ्गू आदि को रख करके
उस को भोजन न करे बिना प्रयोजन क्या यह ऊँचा ऐसा जानने की इच्छा न करे । ६३ । नाचना गाना बजाना ताड़ी ठोंकना कट कटाना प्रेम सहित गदहा आदि
का शब्द करना इन सब को न करे । ६४ । कास के पात्र में पांव को न धोवे फूटे पात्र में और जिस पात्र में मन को प्रसन्नता न हो उस में भोजन न करे
। ६५ । जूता छाता जनेऊ गहना पुष्प माला कमण्डलु बल्ल इन सब को किसी में धारण किया हो तो उस को दूसरा कोई धारण न करे । ६६ । से सिखाया

ऊआ कुधा और व्याधि से पीड़ित टूट गया है जिस का सींग आंख खुर पींकि ऐसे वृषभ से युक्त रथ पर चढ़के गमन न करें । ६० । मिखाए ऊए शीघ्र चलने वाले लवणों से युक्त वर्ण रूप से सम्यक् ऐसे वृषभ से युक्त रथ पर चढ़के नित्य ही गमन करें और उस वृषभ को पैसा से न मारें । ६८ । प्रातः काल तीन मुहूर्त तक मूर्य का घाम और किसी के मत में कन्या राशिमित मूर्य का घाम जलता ऊआ मुग्दा का घूंआं टूटा आसन इन सब को वर्जन करें नख और लाम को नहीं कंदन करें दांतों में नख को न उखाड़े । ६९ । माटी और ढेला को मर्दन न करें नख में टण को न कंदन करें निष्फल कर्म को न करें जिस कर्म के करने से मुख होने वाला नहीं है उस कर्म को न करें । ७० । ढेला मर्दन करने वाला टण कंदने वाला नख को दांत में उखाड़न वाला चुगुनई करने वाला अपवित्रता में रहने वाला शीघ्र नाश को पाता है । ७१ । लौकिक वार्ता में अथवा शास्त्रीय वार्ता में साभिनिवेश करके (अर्थात्

सज्जनरकमेव च । ६६ । नाविनीतैर्ब्रजेद्दुर्य्येन च क्षुद्याधिपीडितैः । न भिन्नशृङ्गाशिशुरैर्न वालाधिविरूपितैः । ६७ । विनीतैस्तु ब्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणांस्वितैः । वर्णरूपोपसम्पन्नैः प्रतोदेनातुदःशृम । ६८ । वालातपः प्रेतधमो वर्ज्यमिन्द्रन्त-
थासनम् । न हिन्यान्खलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्खान् । ६९ । न मृलोष्टञ्च मृङ्गीयान् हिन्दात्करजैस्तृणम् । न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् । ७० । लोष्टमर्दीं टणच्छेदी नखखादी च यो नरः । स विनाशं ब्रजत्याशु सूचको शुचि रेव च । ७१ । न विगर्ह्य कथाक्कुर्याद्दहिर्माल्यन् धारयेत् । गवाञ्च यानस्पृष्टेन सर्वथैव विगर्हितम् । ७२ । अद्वारेण च नातोयाङ्गामवा वेश्म वा वृतम् । रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् । ७३ । नाशैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयन्मोपानहौ हरेत् । शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थश्च चासने । ७४ । सर्वञ्च तिलसम्बद्धन्नाद्यादस्तमिते रवौ । न च नमः शयीतैश्च न चोच्छिष्टः कचिद्भुजेत् । ७५ । आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु सम्बिभेत् । आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् । ७६ । अवक्षुर्विषयन्दर्गं न प्रपद्येत कर्हि चित् । न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीन्तरेत् । ७७ । अधितिष्ठेन्न केशास्तु न भस्मास्थि

चित्त लगाइ के) (अर्थात् आग्रह करके) कथा न करना केश में माला को धारण न करना धैर्य के पीठ पर बैठ के गमन न करना यह सर्वथा वर्जनीय है । ७२ । घाम अथवा गृह यह दोनों आरुत हो (अर्थात् घेरा हो) तो द्वार को छोड़कर लांचिके उस के भीतर न जाना रात्रि के समय वृक्ष के मूल में न रहें । ७३ । पासा कभी न खेलें अपने जूता को अपने हाथ से एक स्थान से दूसरे स्थान में न लेइ जाना किंतु पांव से स्नेजाय शय्या पर बैठ के और बज्रत अश्व को हाथ में रखके थोड़ा थोड़ा निकाल के आसन के ऊपर भोजन पात्र को रखके भोजन न करें । ७४ । तिल से जिला हुई दस्तु को रात्रि में न भोजन करें नंगा होके न सेवे जूठा ऊआ कहीं न जाय । ७५ । गोला पांव करके भोजन करना और गोला पांव करके सोना नहीं और जो देश नेत्र में देखा नहीं गया है और मरण आदि का संदेह जिस स्थान में है उस देश में कभी न जाना अपने मूत्र को और विष्टा को न देखना नदी को नाऊ से न तैरना । ७७ । बज्रत दिग जीर्ण की

इच्छा करने वाला जो पुरुष है सो केश भस्म हाड़ फूटा टूटा माटी के पाच का टुकड़ा घनउर भूमा इन सभी पर खड़ा न रहै । ७८ । दूसरे घाम के रहने वाले पतित चाण्डाल पुच्छ (अर्थात् निषाद से शूद्रा में उत्पन्न) धन आदि से गर्भित मूर्ख धोखी आदि अत्यावसायी (अर्थात् चाण्डाल से निषाद स्त्री में उत्पन्न) इन्हीं के साथ एक टुक की छाया में न रहै । ७९ । शूद्र को मति न देना दाम से भिन्न जो शूद्र है उस को जूठा अन्न न देना जिस रवि को एक देश का रोम हुआ है और बाक़ी जो रह गया है उस को शूद्र को न देना धर्म और व्रत इस का उपदेश शूद्र को न करना । ८० । जो पुत्र शूद्र का धर्म और व्रत का उपदेश करता है सो उस शूद्र सहित असंवृत नाम नरक में जाता है । ८१ । मिले हुए दोनों हाथों से अपने शिर को न खुजलाना जूठा हुआ पुरुष अपने शिर को न छूवे शिर को छोड़के (अर्थात् गले तक) स्नान को न करे । ८२ । कोप से अपने शिर को और केश को प्रहार न करे और दूसरे को भी शिर में तेल

कपालिकाः । न कार्पासास्थि न तुपान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः । ७८ । न सम्बसेच पतितैर्न चाण्डालैर्न पुच्छैः । न मूर्खैर्न विलिप्तैश्च नान्यैर्नान्यावसायिभिः । ७९ । न शूद्राय मतिन्दद्यान्नाच्छिष्टन्न हविष्कृतम् । न चास्योर्पादिशेड्ढर्मन्चास्य इममादिशेत् । ८० । यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यथैवादिशति व्रतम् । सोऽसम्भृतन्नाम तमः सह तैर्नैव मञ्जति । ८१ । न संहताभ्यास्याणिभ्यां कण्डुयेदात्मनः शिरः । न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च खायाहिना ततः । ८२ । केशग्रहान्प्रहारान्श्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् । शिरः स्नातश्च तैलेन नाङ्गङ्गिश्चिदपि स्पृशेत् । ८३ । न राज्ञः प्रतिगृह्णीयाद्राजन्य प्रसूतितः । शूनाचक्रध्वजवताम्विशेनैव च जीवताम् । ८४ । दश शूना समञ्चक्रन्दश चक्रसमो ध्वजः । दश ध्वजसमो वेशो दश वेशसमो नृपः । ८५ । दश शूना सहस्राणि यो वाहयति शैनिकः । तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः । ८६ । यो राज्ञः प्रतिगृह्णीयाद्बुद्ध्याच्छास्त्रवर्तिनः । स पर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् । ८७ । तामिस्रमन्यतामिस्रमहारौरवरौरवी । नरकङ्कालरुचश्च महानरकमेव च । ८८ । सञ्जीवनमहावीचिन्तपनं सम्पृतापनम् । संहतश्च स काकोलकुङ्कुलम्प्रतिमूर्तिवम् । ८९ । लोहशङ्कुमृजीपश्च पन्थानं शास्त्रलीनदीम् । असिपञ्चवनश्चैव लोहदारकमेव च । ९० । एतदिदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मदादिनः ।

लगाके स्नान करे फेर दूसरे अंग में तेल को न लगावे । ८२ । जो राजा सचिव नहीं है उस से प्रतिग्रह को न करे कसाई तेली कलार इन से प्रतिग्रह को न करे । ८३ । वेद्या की जोविका में जोने वाले जो पुरुष है किन्ना खो है उस से प्रतिग्रह को न लेवे । ८४ । दश कसाई के समान तेली है दश तेली के समान कलार है दश कलार के समान वेद्या है दश वेद्या के समान राजा है । ८५ । जो कसाई अपने लिये दश हजार जीव को मारता है उस के समान राजा है इस लिये उस का प्रतिग्रह धार है । ८६ । लोभी और शास्त्र का अति क्रम करने वाला जो राजा है उस से जो पुरुष प्रतिग्रह करता है सो क्रम से आगे जो एकैक प्रकार नरक कहेंगे उस में जाता है । ८७ । तामिस्र अमन्यता मिस्र महा रौरव रौरव नरक काल सूच महा नरक । ८८ । सञ्जीवन महा वीचि तपन प्रतापन संहत काकोल कुङ्कुल प्रतिमूर्तिक । ८९ । लोहशङ्कु मृजीप शास्त्रली नदी असि पञ्च वन लोहदारक । ९० । इस बात को जानने वाले और

परलोक में कल्याण की इच्छा करने वाले वेद के पढ़ने वाले जो ब्राह्मण हैं सो राजा में प्रतिग्रह को नहीं करते । ८१ । प्रहर रात्रि रहते उठ के धर्म और अर्थ इन दोनों का चिंतन करे धर्म अर्थ का जड़ जो शरीर क्लेश है उस को भी चिन्तन करे वेद का जो तत्व अर्थ है ब्रह्म कर्म उस को चिंतन करे । ८२ । उठ करके आवश्यक कर्मां को करके निश्चित होके शौच करना अपने काल में प्रातः काल मायंकाल की संध्या में बज्जत काल तक जप करता रहे । ८३ । बड़ी संध्या करने से अपि लोगों ने बड़ी आयुष को पाया और बुद्धि यश कीर्ति ब्रह्म तेज इन सब को पाया । ८४ । विधि से श्रावणी अथवा भाद्र पदों में उपाकरण कर्म करके उद्योग को प्राप्त होकर साढ़े चार मास तक वेद को पढ़े । ८५ । साढ़े चार मास के उपरान्त पुष्य नक्षत्र में ग्राम से बाहर जा के छन्द का उत्सर्ग (अर्थात् त्याग) करे जो श्रावणी में उपाकरण किए हो सो और जो भाद्र पदों में उपाकरण किए हैं सो माघ शुक्ल प्रतिपत् में पूर्वाह्ण

न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोभिकांक्षिणः । ८१ । ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्माथी चानुचिन्तयेत् । कायकेशांश्च तन्मूलान्वेदत-
त्वार्थमेव च । ८२ । उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः । पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापराश्विरम् । ८३ । जपयो-
दीर्घसन्ध्यत्वादीर्घमायुरवाप्नुयुः । प्रज्ञां यशश्च कीर्तिञ्च ब्रह्मवर्चसमेव च । ८४ । श्रावण्याम्प्रौष्ठपद्याम्वाप्यापाहृत्य यथा विधि ।
युक्तमृच्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोर्हपञ्चमान् । ८५ । पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्वहिरुत्सर्जनं द्विजः । माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे
प्रथमे हनि । ८६ । बया शास्त्रन्तु कृत्वैव मुत्सर्गं छंदसां वहिः । विरमेत्यक्षिणीं रात्रिन्तिदेवैक महर्निशम् । ८७ । अत ऊर्ध्वं
तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् । वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्ण पक्षेषु सम्पठेत् । ८८ । नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ ।
न निशान्ते परिश्रान्ते ब्रह्माधीत्यप्यनः स्वपेत् । ८९ । यथोदिते न विधिना नित्यं छंदस्तत्सम्पठेत् । ब्रह्मछन्दस्तत्तं चैव द्विजो
युक्तोऽह्नापदि । १०० । इमान्नित्यमनध्यापानधीयानो विवर्जयेत् । अध्यापनञ्च कुर्वाणः शिष्याणां विधि पूर्वकम् । १०१ ।
कर्णं श्रवेणिले रात्रौ दिवा पांसु समूहने । एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते । १०२ । विद्युत्स्तमितवर्षेषु महोत्सूनां

काल (अर्थात् प्रातःकाल से मद्यान्ह तक) में उत्सर्जन करे । ८६ । इस रीति से ग्राम के बाहर यथा शास्त्र उत्सर्ग करके पक्षिणी रात्रि (अर्थात् उत्सर्ग का दिन और आने वाला दिन यह दोनों पक्ष को नाई हैं जिस रात्रि का ऐश्वर्य जो बीच की रात्रि) तक वेद को न पढ़ना अथवा उत्सर्ग का दिन रात्रि तक न पढ़ना । ८७ । इस के उपरान्त नियम से शुक्ल पक्ष में वेद को पढ़े कृष्ण पक्ष में शास्त्र को पढ़े । ८८ । जिस में अक्षर स्पष्ट जाने जाय ऐसा पढ़े शूद्र जन के समीप में न पढ़े रात्रि के चौथे प्रहर में वेद पढ़ने से थकि जाय तो फिर सोवे नहीं । ८९ । जैसी विधि कही है उस विधि से युक्त होकर नित्य ही वेद के दोनों भाग (अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण) को पढ़े । १०० । आगे जो कहेंगे अनध्याय उस में गुह और शिष्य ये दोनों वेद का पढ़ना और पढ़ाना न करें । १०१ । रात्रि समय कान में वायु का शब्द जाना जाय और दिन में धूली उड़ती हो तो उस दिन अनध्याय करना वर्षा काल में इस बात को अध्याय के जानने वाले ने कही है । १०२ । बिजुली का समकना गर्जना वर्षा हो और बड़ा लुक आकाश से गिरे तो उस समय से दूसरे दिन उसी समय तक अनध्याय है इस बात को मनु जी ने कहा है ।

१०३। बिजुली का चमकना गर्जना वर्षा ये तीनों समयकाल में हैं तो वर्षा काल में अनध्याय जानना सर्वदा ही क्योंकि वर्षा काल में तो ये सब होते ही हैं मंध्याकाल में हो तब अनध्याय होती है वर्षा काल से भिन्न काल में मेघ देख पड़े तो अनध्याय करना । १०४। अंतरिक्ष में भया जो उत्पात का शब्द भूकंप चंद्र सूर्य तारा इन सबों का उपसर्ग (अर्थात् उपद्रव) इन्हीं में आकालिक (अर्थात् जिस समय में ये सब हों उस से दूसरे दिन उसी समय तक) अनध्याय सब घटु में जानना । १०५। प्रातः संध्या काल में होम के लिये अग्नि लकड़ी से मचन करके प्रकट भई और उसी समय में बिजुली का चमकना और गर्जना भया परन्तु दृष्टि न भई तो यज्योतिः (अर्थात् दिन भर) अनध्याय है और मायं मंध्याकाल में तीनों पूर्व कथित वस्तु हों तो रात्रि भर अनध्याय जानना आकालिक न जानना । १०६। ग्राम में और नगर में तो नित्य ही अनध्याय है और दुर्गन्ध में भी अनध्याय करना जिन को धर्म को निपुणता कामना है उन को अनध्याय जानना । १०७। ग्राम

च संज्ञवे। आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् । १०३। एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निपु। तदा विद्यादनध्यायम
नृतौ चाभ्यदर्शने । १०४। निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्जने एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि । १०५।
प्रादुष्कृतेष्वग्निपु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने। स ज्योतिः स्यादनध्यायः श्रेषे रात्रौ यथा दिवा । १०६। नित्यानध्याय एवस्याद्वा-
मेपु नगरेषु च। धर्म नैपुण्यकामानां पूतिगंधे च सर्वदा । १०७। अन्तर्गतशवे ग्राम दृष्यस्य च सन्निधौ। अनध्यायो रुद्धमान
समवाये जनस्य च । १०८। उदके मध्य रात्रे च विरामूचस्य विसर्जने। उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत् । १०९।
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम्। त्र्यहन्नकीर्तयेद्ब्रह्म रात्रौ राहोश्च सूतके । ११०। यावदेकानुद्दिष्टस्य गंधोलेपश्च
तिष्ठति। विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् । १११। शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्। नाधीयीतामिष-
ञ्जग्ध्वा सूतकान्नाद्य मेव च । ११२। नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः। अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ।
११३। अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी। ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् । ११४। पांशुवर्षे दिशां दाहे

में मुरदा रहे तो अनध्याय होती है अधार्मिक के समीप में रोदन में दूसरे कार्य के लिये बहुत जनों के मिलाप में अनध्याय जानना । १०८। जल अर्द्ध रात्रि बिछा मूत्र त्याग इस में मन से भी बेद का चिंतन न करना जूठे हुए और श्राद्धान्न भोजन करके भी बेद को न पढ़ना । १०९। एकोद्दिष्ट श्राद्ध कामिमक्षण ग्रहण करके निमंषण दिन से तीन दिन तक बेद को न पढ़ना राजा के सूतक में और चंद्र सूर्य ग्रहण में भी । ११०। जब तक एकोद्दिष्ट श्राद्ध का गंध लेप देह में रहै तब तक बेद को न पढ़े । १११। मांस और मूत्र काश्च इन दोनों में कोई को भोजन करके और मूत्रे हुए आसन पर पांव को राखे हुए दोनों ठेंडों को नीचे किए ऊपर बेद को न पढ़ना । ११२। कुहिरा बाण का शब्द दोनों मंध्या अमावास्या चतुर्दशी पूर्णमासी अष्टमी इन सबों में बेद को न पढ़ना । ११३। अमावास्या गुरु का नाश करती है चतुर्दशी शिष्य का नाश करती है अष्टमी पूर्णमासी ये दोनों बेद का नाश करती हैं इस लिये इन को वर्जन करना । ११४। धूलि की दृष्टि

दिश का दाह सिञ्चारिणी कुत्ता गदहा ऊंट इन्हीं का रोना पंचति इन सभी में न पढ़ना । ११५ । यज्ञान याम गौ का खान इन्हीं के समीप में और मैथुन समय के बख को पहिर के और आड्ड के अन्न को प्रतिगृह करके न पढ़ना । ११६ । प्राण सहित जो वस्तु अथवा प्राण रहित जो वस्तु आड्ड की है उस को ग्रहण करके अनध्याय करना क्योंकि ब्राह्मण पारायास्य (अर्थात् उस का मुख हाथी है) । ११७ । चोरों से उपद्रव के प्राप्त जो याम है उस में और अग्नि के दाह में अमृत कर्म के देखने में आकाशिक अनध्याय जानना । ११८ । उपाकरण में और उत्सर्ग में चिराच अष्टका में एक दिन रात्रि चतु के अंत में एक दिन रात्रि अनध्याय करना इस बात को उसके लिये कहा है जिस को धर्म की निपुणता का मना है और पहिले जो कहि आए हैं उत्सर्ग में पक्षिणी से दूसरे को जानना इस लिये पुनर्हति न ऊई । ११९ । घोड़ा छल हाथी नौका गदहा ऊंट ऊसर भूमि सवारी इन्हीं पर स्थित होके न पढ़ना । १२० । विवाद कलह सेना संग्राम

गोमायुविरुते तथा । श्वखरोष्ट्रे च रुवति पंक्तौ च न पठेद्विजः । ११५ । नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामांते गोव्रजेपि वा । वसित्वा मैथुनम्वासः आद्विकम्प्रतिगृह्य च । ११६ । प्राणि वा यदि वाप्राणि यत्किञ्चिच्छाद्विकम्भवेत् । तदा लभ्याध्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः । ११७ । चौरैरूपस्रुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते । आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च । ११८ । उपाकर्मणि चोत्सर्गेचिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् । अन्वष्टकास्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु । ११९ । नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् । न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः । १२० । न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे । न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वसित्वा न सूतके । १२१ । अतिथिश्चाननुज्ञाप्यमारुते वाति वा मृशम् । रुधिरे च सुते गाचाच्छस्त्रेण च परिक्षते । १२२ । सामध्वनादग्यजुपीनाधीयीत कदा च न । वेदस्याधीत्य बाध्यंतमारण्यकमधीत्य च । १२३ । ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः । सामवेदः स्मृतः पिच्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्द्धनिः । १२४ । एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयी निष्कर्षं मन्वहम् । क्रमतः पूर्वमभ्यस्य पश्चादेदमधीयते । १२५ । पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः । अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् । १२६ । द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः । स्वाध्यायभूमिश्चाशुद्धानात्मानं चाशुचिर्द्विजः । १२७ ।

अजीर्ण बमन (अर्थात् उलटी) इन्हीं में अनध्याय जानना भोजन करके भी न पढ़ना । १२१ । अति वायु चलने में शरीर से रुधिर निकलने में शस्त्र से धाव होने में अतिथि की विना आज्ञा में अनध्याय करना । १२२ । साम वेद को मुन के ऋग्वेद को और यजुर्वेद को न पढ़ें वेद का अंत और आरण्यक प्रकरण इन दोनों में से कोई एक को पढ़ के अनध्याय करना । १२३ । ऋग्वेद का देवता देव हैं यजुर्वेद का देवता मनुष्य हैं सारुवेद का देवता पितर हैं इस लिये सामवेद का ऋषि अपवित्र है । १२४ । इस बात के जानने वाले जो पुरुष हैं सो नित्य ही तीनों वेदों का सारभूत प्रणव (अर्थात् ऊंकार) व्याहृति (अर्थात् भूः भुवः स्वः इत्यादि) गाण्धी इन तीनों को क्रम से पढ़के पीछे वेद को पढ़ते हैं । १२५ । पशु मंडुक बिलारि कुत्ता सर्प नेउर मूसा इन सभी में से कोई एक गुरु शिष्य के बीच से निकल जावे तो एक रात्रिदिन अनध्याय करना । १२६ । पढ़ने की भूमि आड्ड हो और अपनी शरीर अपवित्र हो तो न पढ़ना इन दोनों अनध्याय को यज्ञ

से त्याग करना । १२७ । स्नातक जो ब्राह्मण है सो चतु काल में भी अमावास्या अष्टमी पूर्णमासी चतुर्दशी इन तिथियों में ब्रह्मचारी होवे (अर्थात् स्त्री के साथ भोग न करे) । १२८ । भोजन किए हो और आतुर हो तो स्नान न करे बल्कि सहित बारंबार भी स्नान न करना अर्द्ध रात्र में और जो जलाशय जाना नहीं गया है उस में स्नान को न करे । १२९ । देवता गुरु राजा स्नातक आचार्य कपिल वर्ण यज्ञ करने की दीक्षा को प्राप्त जो मनुष्य है इन सभी में किसी की छाया पर दृष्ट्वा पूर्वक स्थित न रहे । १३० । मध्य दिन अर्द्ध रात्र दोनों संध्या इन सभी में चौरहा स्थान में न जाना यादू की मांस की भोजन करके भी चौरहा में न स्थित हो । १३१ । अबटन को स्त्री की ऊपर स्नान करने से जो जल भूमि में पड़ा है उस में बिष्टा मूत्र वीर्य खंखार दूक बांत (अर्थात् उलटी हुई वस्तु) इन सभी पर दृष्ट्वा पूर्वक स्थित न हो । १३२ । बैरो बैरो का सहाई अधार्मिक चोर परस्त्री इन सभी का सेवन न करे । १३३ । परस्त्री सेवन के सदृश आयुष की बटाने वाली

अमावास्यामष्टमीचपौर्णमासीचतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमपृतौ स्नातको द्विजः । १२८ । न स्नानमाचरेद्भुत्का नातुरो न महा निशि । न वासोभिस्सहाजसं नाविज्ञातै जलाशये । १२९ । देवतानां गुरो रात्रः स्नातकाचार्ययोस्तथा । नाक्रामेत्कामतश्चायाम्बभ्रुणोदीक्षितस्य च । १३० । मध्यन्दिने ऽर्द्ध रात्रे च आहम्भुक्ता च सामिपम् । सन्ध्योरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् । १३१ । उद्वर्तनमपस्नानम्विरामूचे रक्तमेव च । श्लेष्मनिष्पूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः । १३२ । वैरिणोन्नापसेवेत सहायश्चैव वैरिणः । अधार्मिकान्तस्करश्च परस्यैव च योपितम् । १३३ । न होदृशमनायुष्यं लोके किञ्च न विद्यते । यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् । १३४ । क्षत्रियश्चैव सर्पश्च ब्राह्मणश्च बहुश्रुतम् । नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदा च न । १३५ । एतत्त्वयं हि पुरुषन्निर्दहेदवमानितम् । तस्मादेतत्त्वयन्नित्यन्नावमन्येत बुद्धिमान् । १३६ । नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः । आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनामन्येत दुर्लभाम् । १३७ । सत्यम्ब्रूयाम्प्रियम्ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् । प्रियश्च नानृतम्ब्रूयादेष धर्मस्सनातनः । १३८ । भद्रम्भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् । शुष्कं वैरम्विवादश्च न कुर्यात्कोनचित्सह । १३९ । नातिकल्पन्नातिसायन्नातिमध्यन्दिने स्थिते । नाज्ञातेन समङ्गच्छेन्नैको न वृपलैस्सह । १४० । होनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनाम्वयोधिकान् । रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् । १४१ । न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो-

सूयरी कोई वस्तु नहीं है पुरुष को । १३४ । क्षत्रिय सर्प बहुत सुमे ऊँच जो ब्राह्मण ये सब दुर्बल भी हैं तो इन्हीं का अपमान न करे सब वस्तुओं से बढ़ने की दृष्ट्वा करने वाला जो हो सो । १३५ । ये तीनों अपमान पाने से दहन कर डालते हैं इस लिये बुद्धिमान इन तीनों का अपमान न करे । १३६ । दरिद्रता से अपनी आत्मा का अपमान न करे मरने तक लक्ष्मी की दृष्ट्वा करता रहे लक्ष्मी को दुर्लभ न माने । १३७ । सत्य बोलना प्रिय बोलना सत्य भी हो और प्रिय न हो तो उसको न बोलना प्रिय भी हो और सत्य न हो तो उसको भी न बोलना यह नित्य धर्म है । १३८ । अभद्र को भी भद्र बोलना अथवा भद्र ऐसा ही बोलना खरवा बैर और विवाद किसी से न करना भद्र शब्द कल्याण को कहता है । १३९ । अति प्रातः काल अति मध्याह्न काल अति सायं काल में गमन न करना बिना जाना मनुष्य और शूद्र इन्हीं के साथ भी गमन न करना अकेला न गमन करना । १४० । हीन अंग वाला अधिक अंग वाला मूर्ख बड़ बुरूप हीन जात हीन द्रव्य

वाक्ता इन सभी का निंदा न करना (अर्थात् कांणा हैं उस को कांणा कहिके न प्रकारमा । १४१ । जूठा ऊआ ब्राह्मण अपने हाथों में ब्राह्मण गो अग्नि इन को न हूवे जो आतुर नहीं है और अपवित्र हैं सो चंद्र मूर्य आदि तारा को न देखे । १४२ । कदाचित् जिन को छूने को नहीं कहा है उन को हूवे तो आचमन करके हाथ में जल रखके उस जल से इन्द्रियों को और सब शरीर को हूवे नाभो को हथेली से हूवे । १४३ । आतुर जो नहीं है सो कारण बिना अपने इन्द्रियों को न हूवे एकांत के जो होम हैं (अर्थात् लिंग संबंधी कांख संबंधी) उसको भी न हूवे । १४४ । मंगल आचार से युक्त रहै भीतर बाहर से शुद्ध रहै जिते इन्द्रिय होके अप और होम को कर आलस को छोड़ देवे । १४५ । इन सब कर्म को करै और शास्त्र कथित रीति में रहै तो देवता और मनुष्य इन दोनों का किया उपद्रव उस पुरुष को न होवे । १४६ । आलस को छोड़ कर अपने काल में नित्य ही वेद ही का अभ्यास करै यह परम धर्म है दूसरा उप धर्म है । १४७ । निरन्तर वेदाभ्यास पवित्रता तप जोवों का अट्रोह यह

गोब्राह्मणानलान् । न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान्दिवि । १४२ । स्पृष्टैतानशुचिर्नित्यमग्निः प्राणानुपस्पृशेत् । गाचाणि चैव सर्वाणि नाभिस्पाणितलेन तु । १४३ । अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः । रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् । १४४ । मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः । अपेक्ष जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः । १४५ । मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रयतात्मनाम् । जपताञ्जुह्वताञ्चैव विनिपातो न विद्यते । १४६ । वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथा कालमतन्द्रितः । तं ह्यस्याहुः परन्धर्ममुपधर्मान्य उच्यते । १४७ । वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसेव च । अट्रोहेण च भूतानां जातिंस्मरति पौर्विकीम् । १४८ । पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः । ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते । १४९ । साविज्ञान शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः । पितृश्रैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च । १५० । दूरादावसंस्थान्मूर्धं दूरात्यादावसेचनम् । उच्छिष्टसन्निपेक्षञ्च दूरादेव समाचरेत् । १५१ । मैत्रम्प्रसाधनं स्नानं दंतधावनमञ्जनम् । पृषाक्ल एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् । १५२ । देवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् । ईश्वरञ्चैव रक्षार्थं गुरुनेव च पर्वसु । १५३ । अभिवादेदृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् । कृताञ्जलिरूपासीत गच्छतः पृष्ठतोन्विधात् । १५४ । श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्त्रिवर्जं

सब करने से पूर्व जन्म की जाति का स्मरण होता है । १४८ । पूर्व जन्म की जाति को स्मरण करत फेर वेद ही का अभ्यास करता रहै वेदाभ्यास में निरन्तर अनन्त मुख को पाता है । १४९ । पर्व में नित्य ही गायत्री देवता का होम और अरिष्ट निराम के लिये शांति होम को करै अष्टका अन्वष्टका में पितरों का नित्य ही पूजा करै । १५० । अग्नि को गृह से दूर देश में मूत्र पादप्रक्षालन जूठ अन्न वीर्य इन सब को त्याग करै । १५१ । विष्ठा त्याग देह प्रसाधन (अर्थात् अंगार आदि) प्रातः स्नान दंत धावन अंजन देवता का पूजन इन सब कर्म को पूर्वाह्नकाल (अर्थात् दिन का पूर्व भाग) में करना । १५२ । रक्षा के लिये देवता धार्मिक ब्राह्मण गुरु राजा आदि इन सभी का दर्शन पर्वकाल में करना । १५३ । अपने गृह में आए हुए जो ठहरे उन को प्रणाम करै अपना आसन बैठने के लिये देवे हाथ जोड़ के संमुख ठाढ़ रहै चलने लगे तो पीछे होके आप भी चले । १५४ । वेद और धर्म शास्त्र इन दोनों में कहा ऊआ जो भले लोगों का आचार सो धर्म का कारण है उस को आलस

होड़ के नित्य हीं सेवन करे । १५५ । आयुष अश्वी संतति अक्षय धन ये सब आचार से मिलता है और अशुभ फल का जमाने वाला जो देह में स्थित अलक्षण है उस को आचार नाश करता है । १५६ । दुराचारो पुरुष लोक में निन्दित होता है और सर्व काल में दुःखी रहता है व्याधी रहता है थोड़े दिन तक जीता है । १५७ । जो सब लक्षण से हीन है निंदा किसी की नहीं करता है अद्धा से और भले लोगों के आचार से युक्त है सो सौ वर्ष तक जीता है । १५८ । जो जो कर्म दूसरे के अधीन है उस उस कर्मों को यत्न से वर्जन करे और जो जो कर्म अपने अधीन है उस उस कर्मों को यत्न से सेवन करे । १५९ । पर ब्रह्म जो कर्म है सो दुःख है अपने ब्रह्म जो कर्म है सो सुख है संक्षेप से मुख दुःख का यह लक्षण जानो । १६० । जिस कर्म को करते हुए पुरुष के अंतरात्मा को संतोष होवे उस कर्म को यत्न से करे विपरीत (अर्थात् संतोष न होवे) को वर्जन करे । १६१ । आचार्य वेदाध्याय का कहने वाला पिता माता गुरु ब्राह्मण गौ तपस्वी इन सभी

स्वेषु कर्मसु । धर्ममूलविषेवेत सदाचारमतन्द्रितः । १५५ । आचारास्तभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराश्च-
नमस्त्यमाचारो ह्यन्य लक्षणम् । १५६ । दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोल्यायुरेव
च । १५७ । सर्वलक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्तरः । अहधानोनस्त्ययश्च शतम्पर्षाणि जीवति । १५८ । यद्यत्परवशं कर्म
तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् । यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः । १५९ । सर्वम्परवशन्दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । एतद्विद्यात्समासेन
लक्षणं सुखदुःखयोः । १६० । यत्कर्म कुर्वतोस्य स्यात्परितोपोन्तरात्मनः । तत्प्रयत्नेन कुर्वति विपरीतन्तु वर्जयेत् । १६१ ।
आचार्यश्च प्रवक्तारं पितरम्मातरं गुरुम् । न हिंस्याद्ब्राह्मणान् गांश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः । १६२ । नास्तिकस्वेदनिन्दाश्च
देवतानाश्च कुत्सनम् । द्वेपन्दम्भश्च मानश्च क्रोधनैर्दृष्ट्यश्च वर्जयेत् । १६३ । परस्य दण्डमोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत् ।
अन्यच्च पुचाच्छिष्यादा शिष्यार्थन्ताडयेत्तु तौ । १६४ । ब्राह्मणायावगृह्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया । शतम्पर्षाणि तामिसे नरके
परिवर्तते । १६५ । ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् । एकविंशतमाजातीः पापयोनियु जायते । १६६ । अयुध्यमा-
नस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यास्तृगन्ततः । दुःखं सुमहदाम्नेति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः । १६७ । शोणितम्यावतः पांशून्संगृह्णाति मही-

में से कोई एक को भी न मारे । १६२ । नास्तिकपना वेद और देवता इन्हीं की निंदा शत्रुता दंभ मान क्रोध तीक्ष्णता इन सभी को न करना । १६३ । क्रोध पाके दूसरे के मारने के लिये दंड को न फेंके और पराये के शरीर में ताड़न को न करे पुत्र और शिष्य इन दोनों को सिखाने के लिये ताड़न करे । १६४ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये सब ब्राह्मण बध की इच्छा करके हथियार को उठावे और मारे नहीं तो भी तामिस नाम नरक में सौ वर्ष तक रहते हैं । १६५ । क्रोध से इच्छा पूर्वक तृण से भी ताड़न करके एकैस जन्म पाप योगि (अर्थात् सुक्ता आदि) में उत्पन्न होता है । १६६ । युद्ध जो नहीं करता है ब्राह्मण उस के अंग से हथिर को निकाल कर अपनी बुद्धि की हीनता में परलोक में बड़े दुःख को पाता है । १६७ । युद्ध को नहीं करने वाला जो ब्राह्मण उस के अंग में शस्त्र से हथिर निकालने वाला परलोक में महा दुःख को पाता है खड्ग आदि करके ब्राह्मण के अंग से निकला हथिर भूमि पर गिरा हुआ जितने धूलों का झणुक (अर्थात्

दूद परमाणु पर्यंत) को पिछी करता है तितने वर्ष तक परलोक में रुधिर निकालने वाला कुप्ता सिंघार आदि से भोजन किया जाता है । १६८ । इस लिये जानने वाला कधी भी ब्राह्मण को मारने के लिये शस्त्र को न उठावे हथ से भी ताड़न न करे शरीर से रुधिर को न निकाले । १६९ । जो अधार्मिक है और जिस को असत्य धन है जो नित्य ही हिंसा में रत है सो इस लोक में सुख को नहीं पाते । १७० । अधार्मिकों का और पापियों का धन आदि का शीघ्र नाश देखते ऊँध धर्म से कष्ट को पाके भी अधर्म में प्रवृत्त न होवे । १७१ । अधर्म शीघ्र ही नहीं फलता गो (अर्थात् पृथिवी) की नाईं जैसे पृथिवी बीज बोने से शीघ्र फल को नहीं देती किंतु काल पाके देती है यह दृष्टान्त समान धर्म का है और दूसरा अर्थ गा (अर्थात् पशु) जैसे बाहन दोहन से पशु शीघ्र फल को देता है तैसा अधर्म नहीं फल को देता किंतु काल पाके फलता है यह दृष्टान्त असमान धर्म का है अधर्म करने वाले का सर्व नाश होता है यही फल अधर्म का है । १७२ । जब अधर्म का फल

तस्मात् । तावतोऽब्दानमुच्यैः शोणितोत्पादकोद्यते । १६८ । न कदाचिद्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि । न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्प्रावयेदसृक् । १६९ । अधार्मिको नरो यो हि तस्य चाप्यनृतन्यनम् । हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते । १७० । न सीदन्नापि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् । अधार्मिकाणाम्पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् । १७१ । नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव । शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि हन्तति । १७२ । यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्युचेषु न सृषु । न त्वेवन्तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः । १७३ । अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति । ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति । १७४ । सत्यधर्मार्थवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा । शिष्यांश्च शिष्यादधर्मेण वाग्वाहूदरसंयतः । १७५ । परित्यजे दर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ । धर्मश्चाप्यसुखोदकं लोकविक्रुष्टमेव च । १७६ । न पाणिपादचपला न नेत्रचपलाऽनृजुः । न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः । १७७ । येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः । तेन यायात्सतां मार्गमेन गच्छन्नरिष्यते । १७८ । ऋत्विक् पुरोहिताचार्यैर्मातुलाऽतिथिसंश्रितैः । बालवृद्धाऽतुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिवांधवैः । १७९ ।

अधर्म करने वाले को न भया तो उस को पुत्र को होता है उस को भी न भया तो पौत्र को होता है उस को भी न भया तो नाती को होता है अधर्म के फले नहीं रहता । १७३ । अधर्म करने से पहिले बढ़ता है फेर कल्याण को देखता है फेर शत्रु को जीतता है पश्चात् मूल महित नाश को पाता है । १७४ । भले लोगों का आचार सत्य धर्म पवित्रता इन सभी में सर्व काल रतिकों करे भार्या पुत्र दास क्रात्त्र इन सब का रसरी और बांस का फलठा इन दोनों से शासन (अर्थात् ताड़न) को करे बाणी बाँझ उदर इन्हीं का संयम करे बाणी का संयम सत्यभाषण से होता है बाँझ के बल से किसी को पीड़ा न करे तब बाँझ का संयम होता है जो कुछ मिला थोड़ा बस्तु उसी के भोजन से उदर का संयम होता है । १७५ । धर्म से वर्जित जो अर्थ काम है उस का त्याग करना जो है तो धर्म परंतु लोक से विरुद्ध है और आने वाला काल में सुख का देने वाला नहीं है उस का भी त्याग करना । १७६ । हाथ पांव आंख बाणी इन सभी करके चंचल न होवे टंडा न रहे पर द्रोह कर्म में बुद्धि को न राखे । १७७ । बड़त प्रकार का शास्त्रार्थ संभव संते पित पितामहादि करके संगृहीत जो शास्त्रार्थ है उसी का अनुष्ठान

करना उस करके अधर्म में मारा नहीं जाता । १७८ । अतिक्रि पुरोहित आचार्य मामा अतिथि आश्रित वाला बड़का आतुर वैद्य जाति (अर्थात् पितृ पक्ष वाले) संबंधी (अर्थात् मामा आदि) बांधव (अर्थात् मातृपक्ष वाले) । १७९ । यामि (अर्थात् भगिनी पतोह आदि) माता पिता भाई पुत्र भार्या बेटी दासवर्ग इन्हीं के साथ विवाद न करना । १८० । इन्हीं में विवाद को वर्जन करके सब पाप में छूटता है इन सभी में हारने में सब लोक को गृहस्थ जीतता है । १८१ । आचार्य पिता अतिथि अतिक्रि ये सब क्रम करके ब्रह्म लोक प्रजा पति लोक इंद्र लोक देव लोक के स्वामी हैं । १८२ । वहिनि पतोह आदि बांधव संबंधी माता और मामा ये दोनों ये सब क्रम करके अप्सरा लोक वैश्व देव लोक वरुण लोक मृत्यु लोक के स्वामी हैं । १८३ । बाल बट्ट ब्रह्म आतुर ये चारों आकाश लोक के स्वामी हैं ज्येष्ठ भाई पिता के समान है भ्राता पुत्र अपनी शरीर है । १८४ । दास वर्ग अपनी छाया है लड़की गरीब है इस लिये इन सभी की बात को सहन करना मन में होना और दुःख को न लाना सर्व काल में । १८५ । दान लेने में ममर्थ हो तो भी न लेवे दान लेने में ब्रह्म तेज प्राप्त होता है । १८६ । आपत काल में

मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया । दुहित्रा दासवर्गेण विवादन्न समाचरेत् । १८७ । एतैर्विवादान्सन्त्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते । एभिर्जितैश्च जयति सर्वान् लोकानिमान् गृही । १८८ । आचार्या ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः । अतिथि-स्त्वम्भ्रलोकेशो देवलोकस्य चत्विजः । १८९ । यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बांधवाः । सम्बन्धिनो ह्यपां लोके पृथिव्यां मा-तृमातुलौ । १९० । आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः । आताज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वकातनूः । १९१ । छा-या स्वेदासवर्गश्च दुहिता कृपणम्परम । तस्मादेतैरधिष्ठितः सहेता संज्वरस्सदा । १९२ । प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गान्तर्वा-येत् । प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मन्तेजः प्रशाम्यति । १९३ । न द्रव्याणामविज्ञाय विधिन्यस्य प्रतिग्रहे । प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्या-द्वसीदन्नपि क्षुधा । १९४ । हिरण्यभूमिमश्वङ्गामन्नम्वामस्तिलान्घृतम् । प्रतिगृह्णन्निविदांस्तु भस्मी भवति दारुवत् । १९५ । हिरण्यमायुरन्नञ्च भूगैश्चाप्योपतस्तनुम् । अश्वशुक्लचर्मामो घृतन्तेजस्तिलाः प्रजाः । १९६ । अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्र-हरुचिर्द्विजः । अम्भस्यश्मलवेनेव सह तेनैव मज्जति । १९७ । तस्माद्विद्वान्विभियाद्यस्मात्प्रतिग्रहात् । स्वल्पकेनाप्यविदा-र्हि पक्के गौरिव सीदति । १९८ । न वार्यपि प्रयच्छेत् वैडालव्रतिके द्विजे । न वक्रव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् । १९९ ।

जुधा करके दुःखित हो तो भी प्रतिग्रह में द्रव्यों का विधान जो धर्म करके युक्त है (अर्थात् ग्रहण की जो वस्तु है उस का देवता और मंत्र है) उस को बिना जाने अच्छे लोग जो हैं सो प्रतिग्रह को न करें । १९० । हिरण्य भूमि घोड़ा गौ अन्न वस्त्र तिल घृत इन सभी में से कोई एक वस्तु को प्रतिग्रह करने से मूर्ख ब्राह्मण लकड़ों की नाई भस्म हो जाता है । १९१ । हिरण्य और अन्न इन दोनों में से कोई एक वस्तु का प्रतिग्रह मूर्ख ब्राह्मण करे तो आयुष्य का दहन होता है इसी रीति से गौ भूमि शरीर को दहन करते हैं घोड़ा नेत्र को बख लवा की घृत तेज की तिल संतति को दहन करते हैं । १९२ । तप और वेद में रहित है प्रतिग्रह में हथि रखता है ऐसा ब्राह्मण दाता सहित डूबता है जैसे जल में पत्थर की बनाई नौका । १९३ । इस लिये मूर्ख ब्राह्मण छोड़े प्रतिग्रह से भी डरता रहै नहीं तो जैसे गौ काँदो में फंसी ऊई कण्ट को पाती है तैसा वह भी कण्ट को पाता है । १९४ । वैडालव्रतिक वक्रव्रतिक मूर्ख ये तीनों ब्राह्मणों को धर्म जानने वाला

पुत्रजल माच भो न देवै । १८२ । विधि से अर्जित धन को इन तीनों को जब दें तब परलोक में वह दान दाता प्रतिगृहीता को अमर्त्य के लिये होता है । १८३ । जिस प्रकार से पत्थर की बनाई हुई नाव पर चढ़कर जल में डूबता है तभी प्रकार से दाता प्रति गृहीता दोनों नरक में डूबते हैं । १८४ । धर्म ध्वजी (अर्थात् जो वृद्धत मनुष्य के समीप धर्मका आचरण करता है आप से अथवा दूर से जकाता है उसका धर्म जो है सोई ध्वज कहिए किन्तु है इस लिये वह धर्म ध्वजी कहाता है) लोभी बहाने से चलने वाला बचना करने वाला घातुक (अर्थात् घात करने वाला) सब का निंदा करने वाला ऐसा जो है सो वैदालव्रतिक कहाता है (अर्थात् बिलारि कीनार्ई व्रत कहिए आचरण है जिसका सो) । १८५ । नीचहीं देखने वाला निष्ठुर (अर्थात् दया प्रान्य) अपने अर्थ के साधन में तत्पर टेढ़ाई में रहने वाला झूठहीं नम्रता से रहने वाला ऐसा जो है सो वक्र वृत्तिक कहाता है (अर्थात् बकुला की नार्ई व्रत कहिए आचरण है जिसका सो) । १८६ ।

विप्रप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितमन्यम् । दातुर्भवत्यनर्थीय परादातुरेव च । १८३ । यथाश्वेनौपलेन निमज्जत्यदकेतरम् । तथा निमज्जतोपस्तादग्नौ दातृप्रतोच्छकौ । १८४ । धर्मध्वजी सदा लुब्धच्छाद्भिर्लोकदम्भकः । वैदालव्रतिको ज्ञेयो हिंसः सर्वाभिसंधकः । १८५ । अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्याविनीतश्च वक्रव्रतचरो द्विजः । १८६ । ये वक्रव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः । ते पतन्त्यन्तामिसे तेन पापेन कर्मणा । १८७ । न धर्मस्यापदेशेन पापं वृत्वा व्रतचरेत् । व्रतेन पापमप्युच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् । १८८ । प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः । वृद्धना चरितं दृष्ट्वा व्रतं रक्षांसि गच्छति । १८९ । अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति । स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते । २०० । परकीय निपानेषु न स्त्रियाश्च कदाचन । निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते । २०१ । यानशय्यासनान्यस्य कूपेद्यानगृहाणि च । अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीय भाक । २०२ । नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च । स्नानं समाचरेन्नित्यङ्गर्तप्रसवणेषु च । २०३ । यमान्सेवेत सततम् नित्यन्नियमान्बुधः । यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् । २०४ ।

वक्रव्रतिक वैदालव्रतिक ये दोनों अपने पाप में अंध तामिस नाम नरक में जाते हैं । १८७ । पाप करके धर्म को बहाने से व्रतको न करे (अर्थात् करता है प्रायश्चित्त आर खा शूद्र को दम्भ देखाता है कि मैंने धर्म किया है) । १८८ । भेद पढ़ने वाले पुरुष इस लोक में परलोक में ऐसे ब्राह्मणों की निंदा करते हैं कष्ट से व्रत जो है सो राक्षसों को पास जाता है । १८९ । ब्रह्मचारी नहीं है और ब्रह्मचारी के वेष में जीवन करता है सो ब्रह्मचारी के पाप को पाता है और कीट पतंग आदि जेनि में जाता है इसी रीति से सब आश्रम को जानना । २०० । जो बिना उत्सर्ग किया ऊआ परका खनाया बावली कूआं तलाव आदि हैं उसमें नहाना नहीं है कि खनाने वाले के पाप को पाता है । २०१ । सवारी शय्या कूप बगीचा गृह यह सब जिसका है उसके आशा बिना इन सभी का भोग जो करता है सो जिसके ये सब हैं उसके पाप का चर्याश भागी होता है । २०२ । नदी देवतों का खनाया ऊआ तलाव सर (अर्थात् चार हाथ का धनुष होता है आठ हजार धनुष तक जिस की गति नहीं है सो) सरना गड़हा इन सभीमें नित्य ही स्नान करे इस स्थल में ऐसा मंदेह हो सकता है कि इसी मचन करके पराये खनाया

जन्मा वाउलो आदि का निषेध सिद्ध रहा फेर पूर्व वचन काहे को कहा तो इस का उत्तर यह है कि अपना खनाया हो और सब जीवों के लिये उत्पद्य हो (अर्थात् त्याग किया गया हो) तो उस में स्नान करने की आज्ञा है सोभी नदी आदि के अभाव में जानना । २०३ । यम नियम इन दोनों का लक्षण आगे कहेंगे तिस में दम को नित्य ही सेवन करें नियम को नहीं यम को छोड़ के केवल नियम के सेवन करने से पतित होता है । २०४ । मूर्ख याम के त्याग कराने वाला स्त्री मूर्खक इन सभी की वज्र में ज्ञान्य कधी न भोजन करें । २०५ । इन सभी के यज्ञ करना भले लोगों को अस्वीक है अर्थात् लक्ष्मी रहित है और देवता के प्रतिवृत्त है (अर्थात् अच्छा नहीं है) दम लिये उस कर्म को वर्जन करना । २०६ । मत्त क्रुद्ध आतुर इन्हों का अन्न भोजन न करना केश कोट करके मिले अन्न को और दद्या से पांव करके छूया गया जो अन्न है उसको भोजन नहीं करना । २०७ । गर्भ के नाश करने वाले से देखा गया रजस्वला से छूआ गया चिड़िया के चंचु से फोड़ा गया सुत्ता से छूया गया । २०८ । गौ का संघा को भोजन करेगा ऐसा भारी शब्द करके यज्ञ आदि में जो दिया गया ऐसा जो अन्न और समुदाय का अन्न वेष्टों का अन्न इन सब अन्नों का

माश्रोचियतते यज्ञे ग्रामयाजिहते तथा । स्त्रिया जीवेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः कचित् । २०५ । अस्त्रीकमेतत्साधूनां यच्च जु-
ह्वत्यमी हविः । प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । २०६ । मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदा च न । केशवीटादपन्न-
ञ्च पदास्पृष्टञ्च कामतः । २०७ । भूणघ्नावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया । पतत्रिणावलीढञ्च शुना संस्पृष्टमेव च । २०८ ।
गवाक्षान्मुपघातं घुष्टान्च विशेषतः । गणान्नङ्गणिकान्च विदुषाञ्च जुगुप्सितान् । २०९ । स्तेनगायनयोऽद्यान्तक्षोर्दार्ढ्य-
पिकस्य च । दीक्षितस्य कदर्यस्य बह्वस्य निगडस्य च । २१० । अभिशस्तस्य पण्डस्य पंखला दाम्भिवस्य च । शुक्लं पर्युषितञ्चैव
शूद्रस्योष्णमेव च । २११ । चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः । उग्रान्नं स्तृतिकान्च पर्याचान्तमनिर्हणम् । २१२ ।
अनर्चितं वृथा मांसमवीरायाश्च योषितः । द्विषदन्नस्यगर्ग्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् । २१३ । पिशुनान्दतिनोऽयान्नं कर्तुर्विक्रयि-
त्यस्तथा । शैलूपतन्तुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च । २१४ । कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च । सुवर्णकर्तुर्देहस्य प्रस्त्रवि-

निंदा करते हैं पण्डित लोग । २०९ । चार गाने वाला बढई व्याज से जोने वाला यज्ञ में दीक्षित (अर्थात् यज्ञ करता है और यज्ञ समाप्ति नहीं हुई है) द्रव्य बेड़ी में जो पड़ा है । २१० । दोषी नपुंसक व्यभिचारिणी दम्भी इन सभी का अन्न शक्त (अर्थात् काल बीते से और दूसरी वस्तु मिलाये बिना जो आमिल हो गया है) बासी बूद का जूठा । २११ । घैस व्याधा क्रूर जूठ भोजन करने वाला कठोर कर्म करने वाला इन सभी का अन्न छति का (अर्थात् सैरी में जो स्त्री है) कर्म के लिये किया गया जो अन्न एक पंचति में बैठा पुरुष है उसका अपमान करके भोजन करने लगे और दूसरे ने भोजन के समाप्ति की आदमन की उस रक्त का अन्न दूतकी का अन्न । २१२ । पूजा के योग्य है उस को अनादर कर के दिया गया जो अन्न देवता आदि के लिये जो मांस नहीं दनी सो मांस पति पुत्र रहित स्त्री द्रुवरी पतित इन्हों का अन्न स्त्रीक जिस पर पड़ी ऐसा जो अन्न । २१३ । चुगुल झूठा यज्ञ का बेचने वाला (अर्थात् मैने जो त्याग की है उस का फल तुम को होवे ऐसा कह के उस से द्रव्य लेने वाला) नट दरजी उपकार को न मानने वाला । २१४ । कोदार निषाद (अर्थात् जो बढई आयाय में कहेंगे) नट नायन इन को छोड़कर इन्हों

के कर्म से जीने वाले सेनार बंसफेर हथिआर के बेचने वाले । २१५ । कुत्ता से जीनेवाले कलार धोबी रगरेज घातुक जिस के गृह में उपपति (अर्थात् दूधरा पति है) । २१६ । जो उपपति को सहते हैं और जो स्त्रियों से जीते गए हैं मरण दिन से दश दिन जिसका बीता नहीं है इनों का अन्न और जो अन्न तुष्टि को नहीं करता है सो इन सब अन्नों को भोजन नहीं करना । २१७ । राजा शूद्र सेनार चमार इन्हीं का अन्न क्रम से तेज ब्रह्मतेज आयुष यज्ञ इनको नाश करता है । २१८ । कावक (अर्थात् दाल बना ने वाला धोबी इन दोनों का अन्न क्रम से संतति बल इनों का नाश करता है समुदाय और बेप्या इन दोनों का अन्न दूसरे कर्म से मिलने वाला जो स्वर्गादि लोक उसको नाश करता है । २१९ । वैद्य व्यभिचारिणी व्याज से जीने वाला हथिआर का बेचने वाला इन्हीं का अन्न क्रम करके पीसु बीज विष्टा खंखार आदि मल कहाता है । २२० । जितने ये सब क्रम से अभोज्यान्न (अर्थात् जिन का अन्न भोजन के योग्य नहीं) कहि आए हैं हर एक पद में इन से भिन्न जो

क्रयिणस्तथा । २१५ । श्ववतां शौण्डिकानाञ्च चैलनिर्णेजकस्य च । रजकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे । २१६ । मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानाञ्च सर्वशः । अनिर्दृशञ्च प्रेतान्नमनुष्टिकरमेव च । २१७ । राजान्नन्तेज आदत्ते शूद्राः कृन्तुर्वदसम । आयुः सुवर्णकारान् यशश्चर्मावकर्तिनः । २१८ । कारुकान्नम्पूजां हन्ति बलनिर्णेजकस्य च । गणान्नङ्गाणिकान्च लोकेभ्यः परिहन्ति । २१९ । पूयश्चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् । विष्टा दार्दुषिकस्यान्नं शस्त्रादिभिराणो मृतम् । २२० । य एते न्येत्यभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः । तेषान्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्मनीषिणः । २२१ । भुक्ताऽतोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणञ्च इमम् । मत्या भुक्ता चरेत्कृच्छ्रं रेतो विरामूचमेव च । २२२ । नादाच्छूद्रस्य पश्वाकं विद्वान् आहिनी द्विजः । आददिताममेवास्मादवृत्तावेक रात्रिकम् । २२३ । ओचियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च दार्दुपेः । मीमांसित्वोभदन्नेवास्मन्मन्नमकल्पयन् । २२४ । तान्प्रजापतिराहेत्य माकृष्टं विषमं समम् । अह्नापूतंवदान्यस्य हतमश्रुये तरत् । २२५ । अश्रुदेष्टञ्च पूतञ्च नित्यं कुर्यादतांद्रितः । अह्नाकृते ह्यक्षयेते भवतः स्वागतैर्जनैः । २२६ । दानधर्मान्निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्

इस प्रकरण में अभोज्यान्न पठित हैं तिन का अन्न त्वचा हाड़ रोम कहाता है यह पंडित लोग कहते हैं अर्थात् रोम आदि के भोजन करने से जो दोष होता है सो दोष इन्हीं के अन्न को भोजन करने से होता है । २२१ । इन्हीं में किसी के अन्न को बिना जाने भोजन करे तो तीन दिन उपवास करे और जान के भोजन करे तो हृष्ट अन्न जो आगे कहेंगे सो करे और विष्टा मूष के भोजन करने में भी पृथक् पृथक् वही इत करे । २२२ । पण्डित जो ब्राह्मण है सो शूद्र का पक्षाघात भोजन न करे वदार्ष्ट गृह में अन्न न हो तो एक रात्रि के भोजन योग्य कक्षा अन्न को ग्रहण करे । २२३ । क्षपण वेद पाठी दाता व्याज से जीने वाला इन दोनों के अन्न को देवतां से विचार कर के सम कहा है । २२४ । उन देवतां के समीप ब्रह्मा आके कहा कि विषम को सम मति करे दाता का अन्न में जो अन्न है क्षपण का अन्न अश्रुदा से हत है । २२५ । आक्षस को कौड़ कर अह्ना से नित्य ही दष्ट (अर्थात् यज्ञ) पूर्ण (अर्थात् वाउली कूप तड़ागादि) को करे न्याय से अर्जित धन वर के अह्ना से किए गए ये दोनों कर्म अक्षय होते हैं । २२६ । अह्ने ब्राह्मणों को पाके अग्नि पूर्वक संतुष्ट भाव से नित्यही दान दष्ट पूर्ण इन्हीं को करे । २२७ । अश्रुदा

(अर्थात् गुण में दोष का प्रकट करना) से रहित हो के माग ने वालों को यथा शक्ति अन्न दिया करे क्योंकि नित्य हीं अव दिया करेगा तो कोई रुक्य में ऐसा पात्र आवेगा जो चारों ओर से तारेगा । २२८ । अन्न तिल दीप इन्हीं का देने वाला क्रम से हस्ति अक्षय सुख अच्छी संतति उत्तम नैष इन को पाता है । २२९ । भूमि हिरण्य गृह रूपा इन्हीं का देने वाला क्रम से भूमि बड़ी आयुष अच्छा गृह उत्तम रूप इन्हीं को पाता है । २३० । वस्त्र घोड़ा बैल गौ इन्हीं का देने वाला क्रम से चंद्र लोक अश्विनी पृथ्वी लोक पृथु लक्ष्मी राज्य लोक इन्हीं को पाता है । २३१ । सवारी शय्या अभय धान्य वेद इन्हीं को देने वाला क्रम से भार्या ऐश्वर्य निरंतर सुख ब्रह्म लोक के समान गति इन्हीं को पाता है । २३२ । जल अन्न गौ भूमि वस्त्र तिल हिरण्य घोड़न सब दानों में वेद दान बड़ा है । २३३ । जिस जिस भाव से जो जो दान देता है उस उस को उसी भाव से जन्मांतर में पाता है । २३४ । जो पूजित वस्तु को देता है और पूजित वस्तु को लेता है

परितुष्टेन भावेन पाचमासाद्य शक्तिः । २२७ । यत्किञ्चिदपि दातव्यं याचितेनानुग्रहयथा । उत्तस्यते हि तत्पात्रं दत्तारदति सर्वतः । २२८ । वारिदस्तप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् । २२९ । भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हरण्यदः । गृहदोग्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् । २३० । वासोदश्चद्रसालोकमश्विसालोकमश्वदः । अन्नदुहः श्विदम्पुष्टाङ्गोदो ब्रह्मसुखिदपम । २३१ । यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः । धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् । २३२ । सर्वेषामेव दानानां ब्रह्म दानम्विशिष्यते । वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाश्वनसर्पिदाम् । २३३ । येन येन तु भावेन यद्यदानं प्रदच्छति । तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः । २३४ । योऽर्चितं प्रतिदत्त्वाति ददात्यर्चितमेव च । तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरवन्तु दिपत्ये । २३५ । न विस्मयेन तपसा ददेद्दिष्टा च नानृतम् । नार्तोऽप्यपदेदिप्राप्तत्वा परिकीर्तयेत् । २३६ । यज्ञोन्वतेन शरति तपः शरति विस्मयात् । आयुर्विप्रापवादेन दानञ्च परिवीर्तनात् । २३७ । धर्मं शनैः सञ्चिनुयादल्लीकमिव पुत्तिकाः । परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् । २३८ । नामुच हि सहायार्थं पितामाता च तिष्ठतः । न पुत्रदारन्न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः । २३९ । एकः प्रजायते अन्तुरेक एव प्रसीयते । एकोऽनुभुङ्क्ते सुवृत्तमेक एव च दुष्कृतम् । २४० । मृतं शरीरमुत्तुज्य काष्ठलोष्ठसं क्षितौ । विमुखा वान्धवा यान्ति धर्मरुमनु गच्छति । २४१ ।

दानों स्वर्ग में जाते हैं । २३५ । तप कर के गर्भ को न करे यज्ञ करके झूठ न बोलै दुःखित होके ब्राह्मण को अपवाद न करे दान देके न कहै । २३६ । झूठ बोलना गर्भ करना ब्राह्मण का अपमान करना कहना इन सभों में कम क के यज्ञ तप आयुष दान इन्हीं का नाश होता है । २३७ । सब जीव को पीड़ा न होने पावे ऐसी शक्ति से परलोक के महाय के लिये धर्म को बटोरै जैसे छिउठी वे मछट को बटोरती है । २३८ । माता पिता पुत्र भार्या जाति ये सब परलोक के महाय के लिये नहीं रहते केवल धर्म ही रहता है । २३९ । एक उत्पन्न होता है एकही लीन होता है एक मृत (अर्थात् पुण्य) को भोग करता है एक दुष्कृत (अर्थात् पाप) को भोग करता है । २४० । काष्ठ डेना के मृदा मृत शरीर को पृथिवी में त्याग करके बांधव लोग विमुख होते हैं धर्म उसके पीछे चला जाता है । २४१ । इस लिये महा

धर्म है प्रधान जिस को ऐसा जो पुरुष है और तप करके जिस का पाप क्षय है वह ब्रह्म स्वरूप है उस को वही धर्म उत्कृष्ट स्वर्ग आदि लोक में झूट पट खे जाता है । २४३ । कुल को बढ़ाई देने के लिये उत्तम उत्तम पुरुषों के साथ संबंध को करे अधमों के साथ संबंध को त्याग करे । २४४ । उत्तम उत्तम से संबंध को करते हुए हीन हीन से संबंध को छोड़ते हुए श्रेष्ठता को ब्राह्मण पाता है और दोष से शूद्रता को पाता है । २४५ । जिस कार्य का आरंभ किया उस कार्य को समाप्ति करने वाले को मूल स्वभाव वाला श्रोत घाम आदि जोड़ा जोड़ा जो बस्तु है उस को सहने वाला इंद्रियों को विषयों से रोकने वाला क्रूर चार वाले पुरुषों के साथ संबंध को छोड़ने वाला हिंसा से निवृत्त रहने वाला दान करने वाला स्वर्ग को पाता है । २४६ । लकड़ी जल मूल फल अन्न मधु अभय ये सब बिना मांगे जब मिले तो उस को और अभिचारिणी नपुंसक पतित शत्रु इनको छोड़ के सब से (अर्थात् शूद्र आदि में) लेना । २४७ । यह वस्तु तुम को देंगे ऐसा देने वाले ने पहिले न कहा हो और

तस्माद्ब्रह्म सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः । धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् । २४२ । धर्मप्रधानभ्युदयन्तपसा हतकिंस्त्रिपम् । परलोकत्रयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् । २४३ । उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह । निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् । २४४ । उत्तमानुत्तमान् गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन् । ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् । २४५ । दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् । अहिंसो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गन्तयाव्रतः । २४६ । शोधकमूलफलमन्त्रमभ्युद्यतश्च यत् । सर्वतः प्रतियुक्तीयान्मध्वया भयदक्षिणाम् । २४७ । आहूताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादग्र्योदिताम् । मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः । २४८ । नाञ्जन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च । न च हव्यस्वद्वत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते । २४९ । शय्या गृहान्कुशान् गंधानपः पुष्यं मणीन्दधि । धाना मत्स्यान् पयो मांसं शाकञ्चैव न मिर्णुदेत् । २५० । गुरुन्मृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्तर्चिष्णुन्देवतातिथीन । सर्वतः प्रतियुक्तीयान् तु तृप्येत्स्वयन्ततः । २५१ । गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वातैर्गृहेवसन् । आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन् गृह्णीयात्साधुतः सदा । २५२ । आर्हिकः कुलमिच्छन्

लेने वाले के समीप में स्थापित हो बिना मांगे प्राप्त हो ऐसा जो सुवर्ण आदि वस्तु उस को पतित आदि को छोड़ कर दुष्कृत कर्म वाले से भी लेना ऐसा ब्रह्मा मानते हैं । २४८ । ऐसी भिक्षा को जो ग्रहण नहीं करता है उस का दिग्वा ऊँचा हव्य कव्य को देवता पितर पंद्रह वर्ष तक ग्रहण नहीं करते । २४९ । शय्या गृह कुश गंध जल पुष्य मणि दधि लोई मक्खली दूध मांस शाक इन सभी को त्याग न करना । २५० । माता पिता सेवक भार्या आदि ये सब लुधा में पीड़ित हैं तो इन्हीं का उद्धार करने की इच्छा करता और देवता अतिथि के पूजने की इच्छा करते पतित आदि को छोड़ कर सब से प्रति यह करे उस को आप भोजन न कर । २५१ । माता पिता आदि के मरे हुए अथवा जोते हुए को छोड़ कर दूसरे स्थान में बास करत अपने जीविका के लिये साधु लोगों से ग्रहण करे । २५२ । जो शूद्र जिसकी खेती करता है उस शूद्र का अन्न उस के भोजन करने के योग्य है जो शूद्र कुल का मित्र है और गोपाल दास नाऊ और जिस शूद्र ने अपनी आत्मा को समर्पण की

कहा कि जिसदोष करके ब्राह्मणों को मृत्यु मारती है सो मुनि । ३ । वेद के अनभ्यास से आलस करके आचार को छोड़ में से ब्राह्मणों को मृत्यु मारती है । ४ । लहमुन गाजर पित्राज क्वाक (अर्थात् कुरुर मुत्ता) बिठा आदि अपवित्र वस्तु में उत्पन्न तंडुलीय आदि (अर्थात् चवराई आदि) इन सब को ब्राह्मण भोजन न करे । ५ । वृत्त का लासा लालवर्ण काटने से उत्पन्न लासा कोई वर्ण हो श्रेष्ठ (अर्थात् इन्द्रगि) जो नवप्रसूत गौ का दूध अग्नि संयोग में कड़ाई के प्राप्त है इन सब को यत्नपूर्वक बराना (अर्थात् इन्हीं का भोजन न करना) । ६ । देवता पितरों को छोड़ कर अपने अर्थ तिल सहित भात जो बना है पक्का दूध से बना ऊआ गुड़ सहित गोखंड का चूर्ण जो है दूध चाउर में जो वस्तु बनी है मालपूआ मंच में जिस पशु का स्पर्श नहीं ऊआ उस की मांस देवता के निमित्त अन्न बना है और उन्हीं को निवेदन नहीं किया गया होम के निमित्त हवि बना है और होम नहीं भया ऐसा हवि इन सब को देवता पितरों के निवेदन किए बिना भोजन नहीं करना । ७ । बिआने में दश दिन के भीतर गौ का दूध ऊंटिनी का दूध एक खुर वाली (अर्थात् घोड़ी आदि) का दूध भेड़ का

येन दोषेण मृत्युर्विप्रान् जिघांसति । ३ । अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् । आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति । ४ । लशुनं मृञ्जनञ्चैव पलाण्डुम्कवर्कानि च । अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च । ५ । लोहितान् दृक्षनिर्यासान् ब्रश्चनप्रभवांस्तथा । श्रेष्ठुङ्गव्यञ्च पेयूषं प्रयत्नेन दिवर्जयेत् । ६ । वृथाकसरसंयावम्यायसा पृषमेव च । अन्नपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च । ७ । अनिर्दृशया गोः क्षीरमौद्रमैकशपन्तथा । आबिकं सन्धिनी क्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः । ८ । आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिपम्बिना । स्त्रीक्षीरञ्चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि । ९ । दधि भक्ष्यं शुक्तेषु सर्वञ्च दधिसम्भवम् । यानि चैवाभिपूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः । १० । क्रव्यादान् शकुनीन्सर्वान् तथा ग्रामनिवासिनः । अनिर्दिष्टाश्चैकशपां छिद्रिभञ्च विवर्जयेत् । ११ । कलविम्कम्ब्वं हंसं चक्राङ्गङ्गामकुकुटम् । सारसं रज्जुवालञ्च दात्यूहं शुक्सारिके । १२ । प्रतुदान् जालपादांश्च को यष्टि नखविष्किरान् । निमज्जतश्च मत्स्यादान् शौनम्वस्त्रमेव च । १३ । वक्त्रञ्चैव

दूध गाभिनि गौ का दूध बकरू जिस का मरि गया है ऐसी गौ का दूध । ८ । भैंस को छोड़ के बन में रहने वाले जितने जीव हैं तिनहीं का दूध स्त्री का दूध और शुक्त (अर्थात् काल पाके दूसरी वस्तु मिलाये बिना जो आमिल हो) इन सब को वर्जन करना । ९ । शुक्त में दही और दही से बनी जो वस्तु जल से बना ऊआ जो पुष्प मूल फल इन सब को भोजन करना । १० । कच्ची मांस के भोजन करने वाले जो पक्षी गोध आदि गांव में रहने वाले जो पक्षी कबूतर आदि शाख में जो कड़े हैं भोजन के योग्य एक खुर वाले उन्हीं को छोड़ कर जो एक खुर वाले हैं और टिट्ठिभ (अर्थात् टिट्ठिहरी) इन को भोजन न करना ॥ ११ ॥ गवरा ब्रव (अर्थात् जल में पैरने वाले) हंस चकवा यामवासी भुरगा मारसरज्जु वाल (अर्थात् पक्षिविशेष) दात्यूह (अर्थात् जल काक मुगा मैना) । १२ । चंचु से जो भक्षण करते हैं दावाघाट आदि (अर्थात् बट फोर) जाला कार पाद शरारी आदि (अर्थात् आड़ी) कायष्टि (अर्थात् टिट्ठिहरी) नख से विकिरण करके जो भक्षण करते हैं बाज आदि जल में डूब के जो मछली को भोजन करते हैं मङ्गु आदि मारण स्थान की जो मांस (अर्थात् कमाई के घर की मांस) सूखी मांस । १३ । बकुला

वल्गाका (अर्थात् बकभेद) बज्रत काशा कौचा खिड़रिच मइसी भक्षण करने वाले पक्षी घामशूकर मइसी सब इन सब को भोजन न करना ॥ १४ ॥ जिस की मांस को जो भोजन करता है सो उस के मांस का भोजन करने वाला कहाता है मइसी सब की मांस को भोजन करती है उस को जिसने भोजन किया हो सब की मांस को भोजन कर चुका इस लिये मइसी को भोजन न करना ॥ १५ ॥ राजीव सिंह तुण्ड सशक्क पक्षिना रोह इम सब को देवता पितरों को निवेदन करके भोजन करना ॥ १६ ॥ जो बज्रधा अकेलही चरते हैं सर्प आदि और जो बिना जाने हैं मृग पक्षी और पांच नख वाले बाजर आदि इन सब को भक्षण न करना ॥ १७ ॥ साविध गोधा शक्क खज्ज कूर्म वष (अर्थात् साली गोह साही गैड़ा ककुआ खरहा) ये सब पंच नख वालों में भक्षण के योग्य हैं जंटे को छोड़ कर एक ओर दांत वाले भक्षण के योग्य हैं निषिद्ध विना ॥ १८ ॥ छत्राक (अर्थात् कुकुर मुत्ता) घामशूकर लहसुन घाम का मुरगा पिन्नाज नाजर इन सभी को

वल्गाकाच काकोलं खज्जरीटकम् । मत्स्यादान्विष्टुराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः । १४ । यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते । मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विषर्जयेत् । १५ । पाठीनरोहिताघादी नियुक्तौ हव्यकव्ययोः । राजीवान्सिंहतु-
रुडांश्च सशक्कांश्चैव सर्वशः । १६ । न भक्षयेदेकचरानश्नातांश्च मृगदिजान् । भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान्सर्पान्पक्ष्मणां कृत्वा । १७ । आविधं शल्यकं गोधां खज्जकूर्मशशांस्तथा । भक्ष्यान्पञ्च नखेषाहुरनुप्रायैकतो दतः । १८ । छत्राकम्विष्टुराहश्च लघु-
नङ्गामं कुक्कुटम् । पलाण्डुजृज्जनश्चैव मत्स्या जरध्वा पतेदिजः । १९ । अमद्यैतानि पडजग्धां हल्लं सान्तयनश्चरेत् । यतिचांश्चाय-
णम्यापि श्रेषेष्पवसेदहः । २० । सम्बत्सरं स्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रिहजोत्तमः । अश्नातभुक्तमुध्यर्थं ज्ञातस्य तु दिग्घेतः । २१ ।
यश्चायंश्चाह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः । भृत्यानाञ्चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्युरा । २२ । वभृवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां
मृगपक्षिणाम् पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मश्च सवेषु च । २३ । यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तमभक्ष्यमभोज्यञ्च गर्हितम् । तत्पर्युपितमप्याहं
हविश्शेषञ्च यद्धवेत् । २४ । शिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः । यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया । २५ । एतदुक्तं

आनिके भोजन करै तो पतित होता है ॥ १९ ॥ वे जाने इन छवों को भोजन करै तो मांतयन नाम का कृच्छ्र व्रत को करै अथवा यतिचांश्रायण व्रत को करै बाकी में (अर्थात् वृष के लासा आदि के भक्षण में एक दिन उपवास करै) । २० । भोजन करने के योग्य जो वस्तु नहीं है उस को बिना जाने भोजन करने में जो दोष है उस दोष को नाश करने के लिये एक वर्ष में एक कृच्छ्र व्रत को करै और जो जानि के भोजन किही गई है उस के लिये तो विशेष करके कृच्छ्र व्रत करना । २१ । वज्र के अर्थ और मत्स्यों के भोजनार्थ प्रशस्त जो मृग और पक्षी हैं तिन को मारना श्रुगस्त्य ऋषि ने पूर्व काल में ऐसा किया है । २२ । पूर्व काल में ऋषियों ने यज्ञ के लिये भक्षण के योग्य मृग पक्षियों का वध किया है । २३ । जो कुकु वस्तु घृत तैल से पका हो और भोजन के योग्य हो सो बाकी भी हो तो उस को भोजन करना और हवि का श्रेष्ठ बाकी हो तो उस की भी भोजन करना । २४ । यव गोंह में से बनी जो वस्तु है और घृत तैल से पकी नहीं है बाकी है और दूध में जो बना है बाकी है तो उस को भोजन करना । २५ । ब्राह्मण लज्जिवैश्या के जो भोजन करने के योग्य अयोग्य वस्तु है उस को कहा अब मांस के भक्षण

वर्जन विधि को कहेंगे ॥ २६ ॥ प्राक्षण नाम संस्कार से संस्कृत जो मांस है और यज्ञ में हाम का जो शेष मांस है इन दोनों मांस को भोजन करना और ब्राह्मणों को मांस भोजन की इच्छा जब हो तब यथा विधि से मांस को भोजन करना प्राण नाश में भी मांस को भोजन करना ॥ २७ ॥ स्यावर जङ्गम जितनी वस्तु है सो सब प्राण का अन्न है इस बात को ब्रह्मा ने कल्पना की है ॥ २८ ॥ चर का अन्न अचर है डाढ़ वालों का अन्न बिना डाढ़ वाले हैं हस्त वाले का अन्न वे हस्त वाले हैं शूरो का अन्न डेराऊक है ॥ २९ ॥ दिन दिन में भोजन योग्य जीव को भोजन करत भोजन करने वाला दोष को प्राप्त नहीं होता क्योंकि भोजन करने योग्य जीव को और भोजन करने वाले जीव को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है ॥ ३० ॥ यज्ञ के निमित्त मांस को भक्षण करना यह विधि है इस को छोड़ कर मांस भक्षण करना यह राक्षस विधि है ॥ ३१ ॥ माल निहो अथवा दूधरे की आनी ऊई मांस को देवता पितृओं को निवेदन करके जो शेष मांस है उस

द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः । मांसस्थातः प्रवक्ष्यामि विधिभक्षणवर्जने । २६ । प्रोक्षितभक्ष्येन्मांसम्प्राक्षणाणाञ्च काम्यया । यथा विधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये । २७ । प्राणस्थान्नमिदं सर्वम्पूजापतिरकल्पयत् । स्यावरज्जङ्गमश्चैव सर्वम्प्राणस्य भोजनम् । २८ । चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः । अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणाञ्चैव भीरवः । २९ । नात्तादुप्यत्यद-
न्नाद्यान्प्राणिनो हन्यहन्यपि । धात्रैव सृष्टाह्याद्याश्च प्राणिनोऽन्तार एव च । ३० । यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येप दैवो विधिः स्मृतः । अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते । ३१ । क्रीत्वा स्वयम्वापुत्याद्य परोपकृतमेववा । देवान्पितृभ्यश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति । ३२ । नाद्याद्विधिना मांसं विधिज्ञो नापदि द्विजः । जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरुच्यते वशः । ३३ । न ता-
दृशम्भवत्येनो मृगहन्तुर्जनार्थिनः । यादृशम्भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः । ३४ । नियुक्तस्तु यथा न्यायं यो मांसं नात्ति मानवः । स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम् । ३५ । असंस्कृतान पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदा च न । मन्त्रैस्तु संस्कृता-
नद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः । ३६ । कुर्याद्भृतपशुं सङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुन्तथा । न त्वेव तु वृथा हन्तुमपशुमिच्छेत्कदा च न । ३७ । यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वोह मारणम् । वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि । ३८ । यज्ञार्थमपशवस्सृष्टाः

को भोजन करने से पाप नहीं होता । ३२ । बिना आपत काल में विधि को जानने वाला जो ब्राह्मण है और विधि में रहित मांस को भक्षण किया तो उस की मांस को परलोक में वह भक्षण करता है कि जिस की मांस इस लोक में भिन्न है । ३३ । धन के अर्थ मृग के मारने वाले को तैसा पाप नहीं होता जैसा पाप परलोक में वृथा मांस भक्षण करने वाले को होता है । ३४ । शास्त्रोक्त विधि से सिद्ध जो मांस है उस को जो मनुष्य भक्षण नहीं करता सो परलोक में एकस जन्म तक पशु योनि में प्राप्त होता है । ३५ । संस्कार रहित मांस को ब्राह्मण कधी न भोजन करे और नित्य विधि में स्थित हो कर मंत्र से संस्कृत मांस को भक्षण करे । ३६ । अशक्य संते जब पशु के भक्षण का अनुराग होवे तो घृत का अथवा पिष्ट का पशु बना कर भक्षण करे परंतु पशु मारने की इच्छा न करे । ३७ । पशु को

दृष्टा जो मारता है सो परलोक में कई जन्म तक जितने रोम हैं पशु के तितने बेर मारा जाता है । ३८ । ब्रह्मा ने आप में आप यज्ञ के अर्थ पशु को उत्पन्न किया इस लिये यज्ञ में जो बध है सो बध नहीं कहा जाता है । ३९ । अन्न पशु वृक्ष पक्षी कक्षा आदि ये सब यज्ञ के लिये मारे जाने में उत्तम जाति को पाते हैं । ४० । मधुपर्क यज्ञ देव पितृ कर्म इतने ही में पशु को मारना और कर्म में न मारना यह बात मनु जी ने कहा है । ४१ ॥ इन कर्मों में पशु की हिंसा करत संते वेद के दुष्प्र अर्थ को जानने वाला द्विज अपने को और पशु को उत्तम गति प्राप्त करता है ॥ ४२ ॥ गृह में गुरु के स्थान में अथवा वन में ग्राम करत संते ब्राह्मण वेद में अविहित हिंसा को आपत काल में भी न करे । ४३ । वेद से कथित जो निश्चित हिंसा है इस चरा चर में उस को हिंसा न जानना क्योंकि वेद ही में धर्म निकला है । ४४ । जो मारने के योग्य जीव नहीं है और उस को मारता है

स्वयमेव स्वयम्भुवा । यज्ञस्य भूत्ये सर्वस्य तस्माद्यज्ञेवधोऽवधः । ३८ । ओपध्यः पशवो दृष्ट्वास्तिर्य्यञ्चः पक्षिणस्तथा । यज्ञार्थन्निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः । ४० । मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि । अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यथेत्य ब्रवीन्मनुः । ४१ । एषर्थेपु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद्विजः । आत्मानञ्च पशुञ्चैव गमयत्युत्तमां गतिम् । ४२ । गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः । नावेदविहितां हिंसाभाषयपि समाचरेत् । ४३ । या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे । अहिंसामेव ताम्बिद्याद्देदाहम्मी हि निर्वभौ । ४४ । योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया । स जीवंश्च मृतश्चैव न कश्चित्सुखमेधते । ४५ । यो वन्धनवधकेशान्प्राणिनान् चिकीर्षति । स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते । ४६ । यज्ञायति यत्कुरुते रतिम्ब्रूति यच्च च । तद्वाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्च न । ४७ । न कृत्वा प्राणिनां हिंसाम्मांसमुत्पद्यते कश्चित् । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसम्विवर्जयेत् । ४८ । समुत्पत्तिञ्च मांसस्य वधबंधौ च देहिनाम् । प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् । ४९ । न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाच वत् । स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीद्यते । ५० । अनुमन्ता विशसिता निहन्ता

अपने सुख के लिये सो जीवते मरा है कहीं सुख नहीं पाता ॥ ४५ ॥ जो सब जीवों का बंधन बध क्लेश को करने की इच्छा नहीं करता सो सबों का हितकारी है अति सुख को पाता है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य किसी को नहीं मारता सो जिस बात का ध्यान करता है और जो करने की इच्छा करता है सो सब को यज्ञ बिना ही पाता है । ४७ । प्राणियों की हिंसा बिना मांस उत्पन्न नहीं होता और प्राणियों का बध तो स्वर्ग के हित नहीं है इस लिये मांस को बर्जन करना ॥ ४८ ॥ मांस की उत्पत्ति और प्राणियों का वध बंधन इन सब को देखकर सर्व मांस के भक्षण में निवृत्त होवे ॥ ४९ ॥ विधि को छोड़ कर पिशाच की नाई जो मांस को भक्षण नहीं करता सो लोक में सब का प्रिय होता है और व्याधि में पीड़ित नहीं होता ॥ ५० ॥ अनुमंता (अर्थात् जिस को संमति बिना दहन न हो सके) विशसिता (अर्थात् शत्रु में मांस को काटने वाला) और मारने वाला मांस को बेचने वाला मांस को

मोक्ष लेने वाला मांस का बनाने वाला ले आने वाला भोजन करने वाला ये आठो मारने वाले ही कहाते हैं ॥ ५१ ॥ पराये की मांस से अपनाही मांस को बढ़ाने को इच्छा जो पुरुष करता है उस में अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है । ५२ । सौ वर्ष तक वर्ष वर्ष में अश्वमेध यज्ञ को जो करता है और जो मांस को भक्षण नहीं करता है दोनों के पुण्य का फल सम है । ५३ । मांस के त्याग करने से जो फल होता है सो फल पवित्र जो मुनि का अस्त्र है तीनी आदि और मूल फल इन्हीं के भक्षण से नहीं होता । ५४ । जिस की मांस को मेंदम लोक में भक्षण करता हूं वह मुझ को परलोक में भक्षण करेण मांस शब्द का अर्थ यही है इस बात को पण्डित लोग कहते हैं । ५५ । मांस और मदिरा इन दोनों के भक्षण में दोष नहीं है और मैथुन में भी दोष नहीं है क्योंकि यह तो जीवों की प्रवृत्ति ही है (अर्थात् स्वभाव ही है) परंतु इन्हीं से निवृत्ति होना तो महा फल है अब इस का तात्पर्यार्थ बर्णन करते हैं कि मांस भक्षण मैथुन मदिरापान इन तीनों की जो विधि वाक्य है सो प्रवृत्ति कराने वाली नहीं है क्योंकि प्रवृत्ति तो इच्छा ही से होती है तब यह सब वाक्य व्यर्थ हो के यज्ञ में मांस भक्षण बिवाह में मैथुन और वामणी नाम की यज्ञ में मदिरापान इन सबों के करने से दोष का अभाव जनाती है और उन सब वाक्यों का तात्पर्य इन

क्रयविक्रयी । संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः । ५१ । स्वमांसं परमांसेन यो वर्जयितुमिच्छति । अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् । ५२ । वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् । ५३ । फलमूलाशनैर्मैथुनैर्मन्थनानाञ्च भोजनैः । न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिदर्जनात् । ५४ । मांसभक्षयिता मुच यस्य मांसमिहाइयहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वम्युवदन्ति मनीषिणः । ५५ । न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला । ५६ । प्रेतशुद्धिमुपवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिन्तथैव च । चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः । ५७ । दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते । अशुद्धा वांधवास्सर्वे स्तुतके च तथोच्यते । ५८ । दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । अर्वाक्षश्चयनादस्यां चहमेकाहमेव च । ५९ । सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमं विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने

तीनों की निवृत्ति ही में है । ५६ । चारों वर्णों का क्रम में ज्यों का त्यों प्रेत शुद्धि और द्रव्य शुद्धि को कहेंगे । ५७ । दांत उत्पन्न भए चूड़ाकरण भए अनेक भए संते मरण में और जन्म में सपिण्ड (अर्थात् मात पुरुष तक) और समानोदक (अर्थात् मात पुरुष के ऊपर) जन्म नाम ज्ञान तक अशुद्ध होते हैं । ५८ । ब्राह्मण को मरण निमित्तक आशौच १० ४ २ १ दिन तक होता है इस प्रकरण में दिन शब्द रात्रि दिन का जनाने वाला है और रात्रि शब्द दिन रात्रि का जनाने वाला है वेद के दो भाग हैं एक मंत्र दूसरा ब्राह्मण इन दोनों भागों को संपूर्ण पढ़े हो और अग्नि होत्र करता हो तो उस को एक दिन आशौच होता है केवल वेद ही को पढ़े हो और अग्नि होत्र न करता हो तो उस को तीन दिन तक आशौच होता है वेद पठन और अग्नि होत्र इन दोनों से रहित हो परंतु स्मार्ताग्नि (अर्थात् स्मृति से कथित अग्नि) सहित हो तो उस को चार दिन आशौच होता है सर्व गुण से हीन हो तो उस को दश दिन आशौच होता है ॥ ५९ ॥ सतयें पुरुष में सपिण्डता की निवृत्ति होती है (अर्थात् जिस पुरुष से गणना करें उस का पिता आदि के पुरुष के ऊपर) अपने गोत्र में जन्म नाम को

ज्ञान नहीं है तब समानोदकता की निवृत्ति होती है ॥ ६० ॥ सपिण्ड में निपुण शुद्धि की इच्छा करने वाले पुरुषों के जैसा मरण में आशौच तैसा जन्म में आशौच है ॥ ६१ ॥ मरण निमित्तक आशौच (अर्थात् जिस में किसी को कूना नहीं होता) तो सय को होता है और मृतक तो (अर्थात् जन्म निमित्तक आशौच तो) माता पिता इसी दो को कूना नहीं होता तिसमें भी माता ही को कूना नहीं होता पिता तो स्वानोत्तर कूने के योग्य होता है ॥ ६२ ॥ मैथुन बिना भी इच्छा से वीर्य पात करके स्नान से शुद्ध होता है और प्रथम पति को छोड़ कर दूसरा पति जिस स्त्री ने किया उस स्त्री में दूसरे पति से उत्पन्न अपत्य भए से दूसरे पति को तीन दिन का आशौच होता है ॥ ६३ ॥ सपिण्ड दश रात्रि दिन में शुद्ध होते हैं और जो पूर्व कथित गुण सहित सपिण्ड एक दिन आशौच के योग्य हैं सो

। ६० । यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । जननेष्वेवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् । ६१ । सर्वेषां शावमाशौचमातापिचोस्तु स्रतकम् । स्रतकस्मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः । ६२ । निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुध्यति । बैजिका दभिसम्बन्धादनुबन्धादघं त्र्यहम् । ६३ । अन्ता चैकेन रात्र्या च त्रि रात्रैरेव च त्रिभिः । शावस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहातूदकदायिनः । ६४ । गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् । प्रेतहारैस्समन्तत्र दशरात्रेण शुध्यति । ६५ । रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्तावे विशुध्यति । रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला । ६६ । नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशीकी स्मृता । निर्वृत्तचूडकानान्तु चिराचाच्छुद्धिरिष्यते । ६७ । जनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्वान्धवा वहिः । अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनाहते । ६८ । नास्य कार्योऽग्निमसंस्कारो न च कार्योऽदकक्रिया । अरण्ये काष्ठवत्त्यक्ता क्षपेयुस्त्र्यहमेव च । ६९ । नात्रि वर्षस्य कर्तव्या वांधवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नृमि वापि कृते सति । ७० । सव्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं त्र्यहम् । अन्येकोदकानान्तु चिराचाच्छुद्धिरिष्यते । ७१ । स्त्रीणामसंस्कृतानान्तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति वान्धवाः । यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति

जब मुरदा को कूवे तो तीन दिन में शुद्ध होते हैं और जो समानोदक है सो भी तीन दिन में शुद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥ गुरु का दाह करने से शिष्य भी गुरु के सपिण्ड सदृश आशौच को पाता है ॥ ६५ ॥ गर्भ के पात में जैसा माता का गर्भ है तै रात्रि आशौच होता है रज के वीतने से स्नान करके रजस्वला स्त्री शुद्ध होती है ॥ ६६ ॥ चूड़ा करण भयं बिना मरण में एक रात्रि दिन आशौच होता है और चूड़ा करण के उत्तर मरण में तीन रात्रि आशौच होता है ॥ ६७ ॥ दो मास होने के भीतर मरण में उस मुरदे को अलंकार कर के ग्राम से बाहर वन में गाढ़ना अग्नि संचयन न करना ॥ ६८ ॥ उस का अग्नि से संस्कार न करना जला भी न देना वन में काठ की नाई त्याग करके तीन दिन आशौच मानना ॥ ६९ ॥ तीन वर्ष जिस का पूरा नहीं भया उस के मरने में जल देना और अग्नि से दाह न करना अथवा दांत उत्पन्न भए मरा हो या नामकरण के उत्तर मरा हो तो दाह करना जल देना इस में मरे ऊए को आनंद होता है और न करे तो दोष भी नहीं होता है ॥ ७० ॥ महाध्यायी (अर्थात् माय पढ़ने वाला) के मरण में एक दिन आशौच होता है जन्म में समानोदक को चिराच आशौच होता

है ॥ ७१ ॥ विवाह के पूर्व वाग्दान के उत्तर स्त्री के मरण में बांधव (अर्थात् पति आदि) तीन दिन में गूड्ड होते हैं और विवाह भये मरने में पिता आदि सब तीन दिन में गूड्ड होते हैं ॥ ७२ ॥ चारलवण (अर्थात् बनाया लवण) को न भोजन करना नदी आदि में तीन दिन तक स्नान करना मांस को न भक्षण करना पृथक् पृथक् भूमि में शयन करना । ७३ । सन्निधि में यह शावाशौच (अर्थात् मरण निमित्तक आशौच) को कहा असन्निधि में सम्बन्धी और बान्धवा को आगे जो कहेंगे सो जाना चाहिए । ७४ । विदेश में मरे हुए की बात दश दिन के भीतर सुनने में आवे तो जे दिन शेष रहे दश दिन में ते दिन आशौच मानना । ७५ । दश दिन के ऊपर सुनने में आवे तो तीन दिन रात्रि आशौच जानना वर्ष भरके ऊपर सुनने में आवे तो जल का स्पर्श करके गूड्ड होता है । ७६ । दश दिन के ऊपर जाति का मरण और पुत्र का जन्म सुनने में आवे तो बल्ल सहित स्नान करके गूड्ड होता है । ७७ । विदेश में समानोदक बालक का मरण सुनने से बल्ल सहित स्नान करके उसी समय में गूड्ड होता है । ७८ । एक का जन्म भये में दश दिन के भीतर दूसरे का जन्म हो और एक के मरण से दश दिन

तु सनाभयः । ७२ । अक्षारलवणान्नास्त्युन्मिज्जेयुश्च ते त्वहम । मांसाशनञ्च नाग्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ । ७३ । सन्निधावेष्टवै कल्पः शावाशौचस्य कीर्तितः । असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः सम्बन्धिवान्धवैः । ७४ । विगतन्तु विदेशस्थं श्रुत्याद्यो-ह्यनिर्दशम । यच्छेषन्दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् । ७५ । अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । सम्बत्सरे व्यतीते तु स्पृष्टैवापो विशुध्यति । ७६ । निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च । सवासा जलमाश्रुत्य शुद्धो भवति मानवः । ७७ । वाले देशान्तरस्थे च पृथक् पिण्डे च संस्थिते । सवासा जलमाश्रुत्य सद्य एव विशुध्यति । ७८ । अन्तर्दशाहे स्याताच्चेत्पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यवत्तत्स्यादनिर्दशम । ७९ । त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्य्यं संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्याश्च दिवारात्रमिति स्थितिः । ८० । श्रोत्रिये तूपसम्पन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यं त्विग्वांधवे पुत्र । ८१ । प्रेते राजनि स ज्योतिर्यस्य स्याद्विपये स्थितिः । अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ । ८२ । श्रुत्येद्विप्रो दशाहेन दाद-

के भीतर दूसरे का मरण हो तो प्रथम आशौच बीते से दूसरा भी आशौच बीत जाता है ॥ ७९ ॥ आचार्य के मरण में शिष्य को त्रिरात्रि आशौच होता है आचार्य की पत्नी और पुत्र के मरण में एक दिन रात्रि आशौच होता है यह शास्त्र की मर्यादा है ॥ ८० ॥ वेद शास्त्र का पढ़ने वाला मरा हो तो स्नेह आदि करके उस के समीप रहने वाले को अथवा उस के गृह में रहने वाले को त्रिरात्रि आशौच होता है मामा शिष्य श्वत्कि बांधव के मरण में पक्षिणी (अर्थात् पूर्व पर दिन रहित रात्रि) आशौच होता है ॥ ८१ ॥ राजा दिन में मर गया हो तो दिन भर और रात्रि को मर गया हो तो रात्रि भर आशौच होता है उस राजा के राज्य में रहने वाले प्रजा के मूर्ख ब्राह्मण के मरण में उस के गृह में रहने वालों को एक दिन आशौच होता है (अर्थात् दिन में मरा हो तो दिन भर रात्रि में मरा हो तो रात्रि भर) महाधायी (अर्थात् जिस के साथ पड़े है) के मरण में गुरु (अर्थात् वेद और शास्त्र का घोड़ा उपकार करने वाला) के मरण में एक दिन आशौच होता है पर्व कथित की नाई ॥ ८२ ॥

ब्राह्मण चत्विध वैश्व शूद्र ये सब क्रम करके । १०। १२। १५। ३०। दिन में गूड़ होते हैं ॥ ८३ ॥ पापके दिन को न बढ़ाना अग्नि क्रिया (अग्नि होच) को न त्याग करना अग्नि होचो अग्रक हो तो उसका पुत्र आदि अग्नि होच को करै उस कर्म करने में अशुद्धता उस को नहीं रहती ॥ ८४ ॥ चाण्डाल रजस्वला पतित स्तूतिका (अर्थात् जिस स्त्री के पुत्र अथवा पुत्री भई हो और दश दिन बीता न हो) मुरदा मुरदा को छूने वाला इन सभी को छूने से स्नान करके गूड़ होता है । ८५। आशुचि के दर्शन में आचमन करके यज्ञ में शक्ति पूर्वक नित्य हो जैसा उत्साह होता है सो सूर्य को मंत्र और पवित्र करनेहार मंत्र को जप करै । ८६। अशुचि का गोला हाड़ को छूकर स्नान से ब्राह्मण गूड़ होता है और रुखा हाड़ को छूकर आचमन कर के गो को छूकर अथवा सूर्य को देख कर गूड़ होता है । ८७। आदिष्टो (अर्थात् ब्रह्मचारी) किसी के मरने में जल को न देवे जब तक व्रत समाप्त न होवे व्रत समाप्त भयं सत्ते जल को देकर तीन रात्रि में गूड़ होता

शाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्च दशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति । ८३ । न वर्हयेदघाहानि प्रत्यहेन्नाग्निषु क्रियाः । न च तत्कर्म कुर्वणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् । ८४ । दिवा कीर्तिमुदक्याश्च पतितं स्तूतिकान्तथा । शवन्तत्स्पृष्टिनश्चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति । ८५ । आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचि दर्शने । सौरान्मंत्रान् यथात्साहस्यवमानीश्च सर्वशः । ८६ । नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति । आचम्यैव तु निस्स्नेहं गामालभ्यार्कं मीक्ष्य वा । ८७ । आदिष्टीनोदकक्षुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं कृत्वा चिराच्चेणैव शुध्यति । ८८ । वृथा सङ्करजातानां प्रब्रज्यासु च तिष्ठताम् । आत्मनस्याग्निनाश्चैव निवर्तेतोदक-क्रिया । ८९ । पापण्डमाश्रितानाश्च चरन्तीनाश्च कामतः । गर्भभर्तृदुहाश्चैव सुरापीनाश्च योषिताम् । ९० । अचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरस्मातरङ्गरुम् । निहृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते । ९१ । दक्षिणे न मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निहरेत् । पश्चि-मोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं द्विजातयः । ९२ । न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनान्न च सचिणाम् । ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्म भूता हि ते सदा । ९३ । राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचम्विधीयते । प्रजानाम्परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् । ९४ । डिंघा

हे ॥ ८८ ॥ अपने धर्म को त्याग करने वाला हीन वर्ण में उत्कृष्ट वर्ण की स्त्री में उत्पन्न झूठ ही मन्याम लेने वाला व्यर्थ (अर्थात् शास्त्र में प्रतिषिद्ध आत्मा का त्याग करने वाला) इन सबों के मरने में जल को न देना ॥ ८९ ॥ पापण्ड धर्म (अर्थात् वेद में अविहित धर्म) को करने वाली दृष्ट्वा पूर्वक जहाँ चाहै तहाँ जाने वाली गर्भ और भर्ता इन्हों से द्रोह करने वाली सुरा को पीने वाली जो स्त्री है उस के मरने में जल को न देना ॥ ९० ॥ आचार्य उपाध्याय माता पिता गुरु इन सभी को दाह आदि करने में व्रती (अर्थात् ब्रह्मचारी) अपने व्रत में भ्रष्ट नहीं होता । ९१। पुर के पश्चिम उत्तर पूर्व दक्षिण द्वार में क्रम करके मरे हुए ब्राह्मण चत्विध वैश्य शूद्र को ले जाना । ९२। राजा व्रती (अर्थात् ब्रह्मचारी और चाण्डायण आदि का करने वाला) यज्ञ को जो करता है इन तीनों को आशोच नहीं लगता क्योंकि राजा तो इंद्र के स्थान पर बैठा है और ब्रह्मचारी व्रती यज्ञ करने वाला ये सब ब्रह्म स्वरूप हैं सर्व काल में । ९३। राजा न्याय कार्य करने में गूड़ रहता है और कार्य में नहीं क्योंकि प्रजा का रक्षण अपने स्थान (अर्थात् सिंहासन) पर बैठे बिना नहीं होता । ९४। राजा के बिना जो युद्ध होती है उस में

जो मर गए हैं और बिजुली से जो मरे हैं राजा की आज्ञा से वध के योग्य जो मारे गए हैं गौ और ब्राह्मण इन दोनों के अर्थ जो मरे हैं इस में आशौच नहीं होता और अपने कार्य के होने के लिये जिस को राजा आशौच की इच्छा नहीं करता है उस को आशौच नहीं होता है । ८५ । चंद्र अग्नि सूर्य वायु इंद्र कुबेर बृहन्न यम इन सभी की शरीर को राजा धारण करता है । ८६ । राजा सब लोकपालों का अंग है इस लिये उस को आशौच नहीं होता लोक का ईश राजा है इस कारण से मनुष्यों के आशौच को नाश करने सकता है । ८७ । संध्या में क्षत्रियों के धर्म से शत्रु करके जो मरे हैं उस को उसी समय में पवित्रता और यज्ञ स्थित होता है ॥ ८८ ॥ संपूर्ण क्रिया करके आशौच के अंत में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये सब क्रम करके जल बाहनायुध पीना अथवा रसरी खाठी इन सभी को स्पर्श करके शुद्ध होते हैं ॥ ८९ ॥ हे ऋषियो आप सब से सपिण्डों का आशौच हम ने कहा अब असपिण्डों का प्रेत शुद्धि को जानिये ॥ १०० ॥ मरे हुए असपिण्ड

हवहृतानां च विद्युता पार्थिवेन च । गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः । ८५ । सोमाग्न्यर्कानिर्लेद्राणां विन्ताप्यत्यो-
र्यमस्य च । अष्टानां लोकपालानां वपुर्क्षारयते मृपः । ८६ । लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचस्विधीयते । शौचाशौचं हि
मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् । ८७ । उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च । सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथा शौचमिति स्थितिः
। ८८ । विप्रः शुध्यत्यपः सृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् । वैश्यः प्रतोदं रग्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः । ८९ । एतद्दोऽभिहितं
शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः । असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिर्निबोधत । १०० । असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
विशुध्यति चिराच्चेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् । १०१ । यद्यन्नमन्ति तेषान् चिराच्चेणैव शुध्यति । अनदन्नन्नमन्दैव न चेत्तस्मिन्
युद्धे वसेत् । १०२ । अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च । स्नात्वा सचैलः सृष्ट्वाग्निं घृतम्प्राश्य विशुध्यति । १०३ । न
विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नानयेत् । अस्वर्ग्या ह्याहुतिस्सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शद्रुपिता । १०४ । ज्ञानन्तपोभिराहारो मृण्मनो
वार्युपाञ्जनम् । वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् । १०५ । सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचम्परं स्मृतम् । योर्थे शुचिर्हि

ब्राह्मण को बंधु की नार्द निर्हरण करके (अर्थात् ज्ञान तक ले जाके) तीन रात्रि में शुद्ध होता है और मामा भौसी आदि को भी ज्ञान तक लेजा के तीन रात्रि में शुद्ध होता है ॥ १०१ ॥ जब मरे हुए के सपिण्ड का अन्न को भोजन करे तो दस दिन में शुद्ध होता है और अन्न को भोजन न करे और उस के गृह में बास भी न करे तो एक दिन में शुद्ध होता है ॥ १०२ ॥ मरा हुआ मनुष्य अपनी जाति हो किम्बा दूसरी जाति हो और उस के पीछे अपनी इच्छा से गमन करके बस सहित जान करे वो भोजन करे अग्नि को दूधे तब शुद्ध होता है ॥ १०३ ॥ अपनी जाति रहत मंते मरे हुए ब्राह्मण को शूद्र न ले जावे शूद्र के होने से उस के शरीर का अग्नि में आहुति स्वर्ग के हित नहीं होती ॥ १०४ ॥ ज्ञान तप अग्नि आहार माटी मन जल लेप वायु कर्म मूर्य काल ये सब मनुष्यों के शुद्धि करने वाले हैं ॥ १०५ ॥ सब शौच में अर्थ शौच (अर्थात् न्याय से धन का अर्जन) बड़ा है जिस का अर्थ शुद्ध है सोई शुद्ध है और माटी जल से जो शुद्ध है और अर्थ से

चण्ड है सो षड् नहीं है ॥ १०६ ॥ पण्डित चमा करके करने के योग्य जो कार्य नहीं है उस के करने वाले दान करके और जिस का पाप क्षिप्त है सो अप करके वेद के पढ़ने वाले तप करके षड् होते हैं ॥ १०७ ॥ षड्वि करने के योग्य जो वस्तु है सो माटी जल से नदीवेग करके पर पुरुष में मन जिस का लगा है ऐसी जो रज से संन्यास (अर्थात् छठईं अध्याय में जो कहेंगे) उस से बाह्य षड् होता है ॥ १०८ ॥ जल करके शरीर सत्य करके मन ब्रह्म विद्या और तप करके भूतात्मा (अर्थात् लिंग शरीर सहित जीवात्मा) ज्ञान करके बुद्धि षड्वि होती है ॥ १०९ ॥ मृगु जी कहते हैं कि हे ऋषियो यह शरीर षड्वि का निर्णय की आप लोगों ने कहा अब नामा प्रकार के जो द्रव्य हैं उस के षड्वि का निर्णय मुनि ॥ ११० ॥ तैजसपात्र (अर्थात् मुवर्ण आदि का पात्र) मरकत आदि मणि का पात्र पत्थर का पात्र ये सब भस्म जल माटी इन करके षड्वि होते हैं इस बात को मनु आदि ऋषियों ने कहा ॥ १११ ॥ उच्छिष्ट आदि लेप से रहित जो

स शुचिर्न मृदारि शुचिः शुचिः । १०६ । शान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः । प्रच्छन्न पापा ज्येन तपसा वेदवित्तमाः । १०७ । मृतोयैः शुध्यते शोध्यन्नदी वेगेन शुध्यति । रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः । १०८ । अद्भिर्गावाणि शुध्यन्ति मनस्त्येन शुध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति । १०९ । सप शौचस्यवः प्रोक्तः शरीरस्य विनिर्णयः । नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् । ११० । तैजसानां मणीनाञ्च सर्वस्याश्रमस्य च । भस्मनाद्भिर्मृदाचैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः । १११ । निर्लेपक्लाचनभाण्डमद्भिरेव विशुध्यति । अजमश्रमस्यैव राजतञ्चानुपस्कृतम् । ११२ । अपामग्रेष्ठ संयोगाद्वैमं रौप्यञ्च निर्वभौ । तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णयो गुणवत्तरः । ११३ । ताव्नायः कांस्यरैत्यानां चपुणः सीसकस्य च । शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्बोदकवारिभिः । ११४ । द्रवाणाञ्चैव सर्वेषां शुद्धिराश्रवनं स्मृतम् । प्रोक्षणं संहतानाञ्च दारवाणाञ्च तक्षणम् । ११५ । मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि । चमसानां ग्रहाणाञ्च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु । ११६ । चरुणां सुक् सुवाणाञ्च शुद्धिरूपेण वारिणा । स्फ्यशूर्पशकटानाञ्च मुसलो लूखलस्य च । ११७ ।

भाण्ड है सोना शंख मोती पत्थर का और रेखा रहित रूपे का जो भाण्ड है सो सब केवल जल करके षड्वि होते हैं ॥ ११२ ॥ अग्नि और जल के संयोग को सोना और रूपा ऊँचा है इस लिये अपनी योनि करके दोनों की षड्वि बज्जत अच्छी है ॥ ११३ ॥ तामा लोहा कांसा पीतल रांगा सीसा इन सबों का घास यथा योग्य रेह अमिली जल इन सबों में करना ॥ ११४ ॥ जितने द्रव वस्तु हैं (अर्थात् चूने के योग्य घृत तैल आदि) सो कौआ कोडा आदि से हत हो और प्रमाण से पसर भर हो तो प्रादेश (अर्थात् अंगूठा और तर्जनी के फैलाने भर) प्रमाण कुश पत्र दो करके ऊपर उच्छालने से षड्वि होते हैं शय्या आदि को उच्छिष्ट आदि करके उप घात भया हो तो प्रोक्षण (अर्थात् जल का डीटा) से काठ का पात्र जब उच्छिष्ट आदि से अत्यंत उप हत भया हो तो काटने से षड्वि होता है ॥ ११५ ॥ यज्ञ पात्रों का मार्जन हाथ से करना यज्ञ कर्म में चमस और यह इन दोनों की षड्वि धोने से होती है ॥ ११६ ॥ यह सुक् सुवा स्था सुप गाड़ी मूसर ओखरी इन सबों की षड्वि गरम जल से ॥ ११७ ॥ बज्जत धान्य बल की राशि हो तो जल के डीटा से षड्वि जानना और घोड़ा

हो तो जल के घोलने से शुद्धि जानना ॥ ११८ ॥ स्पर्श के योग्य पशु के चर्म का पाच और बांस का पाच इन दोनों की शुद्धि बखर शुद्धि की नाई जानना प्राक मूल फल इन्हीं की शुद्धि धान्य शुद्धि की नाई ॥ ११९ ॥ कोड़े के पेट में के मूत्र का जो बखर भेड़ के रोम का बखर खारी माटी से मैपासी कगल रीठी से पट्ट बखर बेल के फल से तीसों का बखर येत सरसव से शुद्ध होते हैं ॥ १२० ॥ शंख का पाच हुने के योग्य जो पण हाथी आदि तिस के दांत बीग हाड़ का जो पाच तिस की शुद्धि तीसों के बखर को नाई जानना (अर्थात् येत सरसव का कक और गौ का मूत्र जल इन दोनों में से एक करके) ॥ १२१ ॥ जल क्लृप्तकने से दण काष्ठ पुत्रा बदनी से मार्जन और रूप से गृह फेर पाक से माटी का पाच शुद्ध होता है ॥ १२२ ॥ मदिरा मूत्र बिष्टा खंखार पीव रुधिर इन्हीं में से कोई एक करके युक्त जो माटी का पाच से फेर पाक करके शुद्ध नहीं होता ॥ १२३ ॥ बदनी से मार्जन रूपन सीचन उपर की माटी

अङ्गितु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् । प्रक्षालनेन त्वल्लानमद्भिः शौचस्विधीयते । ११८ । चेलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलाना-
न्तथैव च । शाकमुत्तफलानाञ्च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते । ११९ । कौशेयाविकयोरूपैः कुतपानामरिष्टकैः । श्रीफलैरंशुपटानां
क्षोमाणां गौरसर्पपैः । १२० । क्षौमवच्छंखशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च । शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणादकेन वा । १२१ ।
प्राक्षणात्तृणकाष्ठञ्च पलालञ्चैव शुध्यति । मार्जनीपाञ्जनैर्वैश्व पुनः पाकेन मृण्मयम् । १२२ । मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा स्त्रीवनैः
पयशणितैः । संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम् । १२३ । सम्मार्जनीपाञ्जनेन सेकेनोत्तिखनेन च । गवाञ्च परिवासेन
भूमिः शुध्यति पञ्चभिः । १२४ । पक्षिजग्धङ्गवाघ्रातमवधूतमवधुतम् । द्रुपितं केश तोटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुध्यति । १२५ । याव-
न्नापैत्यमेध्याक्ताङ्गन्यो लेपश्च तत्कृतः । तावन्मृदारि चादेयं सर्पासु द्रव्यशुद्धिषु । १२६ । चीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणा-
नामकल्पयन् । अहहमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते । १२७ । आपः शुद्धा भूमिगता वै तृष्णां यासु गोर्भवेत् । अव्याप्तायेद-
मेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः । १२८ । नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् । ब्रह्मचारिगतमैश्वर्यं नित्य-
स्मेध्यमिति स्थितिः । १२९ । नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने । प्रसवे च शुचिर्वत्सः श्वामृगग्रहणे शुचिः ॥

का कीलन गौ का बास इन पांचों करके भूमि शुद्धि होती है ॥ १२४ ॥ भक्षण योग्य पक्षी से जिस बस्तु का एक देश भक्षित है और जो बस्तु गौ से छुंधी गई है जो बस्तु पांशु से कंपित ऊँट है जिस बस्तु के ऊपर कीक पड़ी है बाल और कीटे कीड़े से दूषित जो बस्तु है सो अपने ऊपर माटी पात्र से शुद्ध होती है ॥ १२५ ॥ अपवित्र बस्तु करके मिली ऊँट बस्तु से अपवित्र बस्तु का गंध और रूप जब तक न छूटै तब तक माटी जल देना सब द्रव्य की शुद्धि में ॥ १२६ ॥ देवता ने ब्राह्मणों की लिये तीन बस्तु पवित्र किए हैं एक तो बिना देखी बस्तु (अर्थात् जिस बस्तु का उपघात देखने में न आया हो) दूसरा जल से जो धोआ गया है तब रा वाणी से जो प्रशस्त है ॥ १२७ ॥ जो जल एक गौ की लषा प्राप्ति करने भर हो और अपवित्र बस्तु से मिला न हो गंध वर्ण रस करके युक्त हो और भूमि में स्थित हो सो पवित्र है ॥ १२८ ॥ कारोगर का हाथ हड्डा में पसारो बस्तु ब्रह्मचारी की भिक्षा ये तीनों नित्य ही शुद्ध हैं यह शास्त्र की मर्यादा है ॥ १२९ ॥ रति समय में स्त्री का मुख

फल गिराने में पत्नी दोहन काल में वक्ररु मृग के ग्रहण करने में कुक्षुर पवित्र है ॥ १३० ॥ कुक्षुर व्याघ्र बाज व्याध आदि मृग वध में जीविका करने वाले इन सबों में मारा गया जो भक्षण के योग्य जीव उस की मांस पवित्र है आहु आदि अतिथि भोजन कर्म में यह मनुजी ने कहा ॥ १३१ ॥ नाभी के ऊपर की इंद्रिय पवित्र हैं नाभी के हठे की इंद्रिय अपवित्र हैं और देह में गिरा जो मल मांस अपवित्र है ॥ १३२ ॥ माटी जल बिंदु काया गौ अश्व मृत्यु की किरण धूलि पृथिवी ये सब ग्रहण में पवित्र हैं ॥ १३३ ॥ बिठा और मूत्र को शरीर में त्याग करके देह में गिरा बारह मलों को छूके गृद्धि के लिये जल और माटी के प्रयोजन भर लें ॥ १३४ ॥ चरबी बीर्य रक्त मज्जा मूत्र बिठा नाक खटि खंखार आंसू कीचर पमोना ये बारह मनुष्यों के मल हैं ॥ १३५ ॥ माटी में गृद्धि की इच्छा करने वाला पुरुष एक बेर लिङ्ग में लगावे पांच बेर मार्ग में बाण हाथ में दश बेर दोनों हाथ में सात बेर ॥ १३६ ॥ गृहस्थों के यह शौच है ब्रह्मचारियों के इस का दूना बान प्रस्थों के तिगुना मंथामियों के चौगुना ॥

१३० । श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् । क्रव्याद्विश्व हतस्यान्यैश्चाण्डालाद्यैश्च दस्युभिः । १३१ । ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः । यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्रुताः । १३२ । मक्षिका विप्रुपञ्छाया गौरश्चः सूर्यश्च श्मश्रुः । रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शमेध्यानि निर्दिशेत् । १३३ । विण्मृचोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृदार्यादेयमर्थवत् । देहिकानां मलानां च शुद्धिपुद्गाद-
शस्वपि । १३४ । वसा शुक्रमसृङ्गज्जा मूत्रविट घ्राणकर्णविट । श्लेष्माश्रु दृपिका खेदो दादशैते नृणां मलाः । १३५ । एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश । उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता । १३६ । एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् । त्रिगुणं स्यादनस्थानां यतीनान्तु चतुर्गुणम् । १३७ । कृत्वा मूत्रम्पुरीषम्वा खान्याचान्त उपसृशेत् । वेदमध्योषमाणश्च अन्नम-
श्वश्च सर्वदा । १३८ । विराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्या ततो मुखम् । शरीरं शौचमिच्छन् हि स्त्रीशूद्रश्च सहस्रकृत् । १३९ । शूद्राणां मामिकङ्कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् । वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टश्च भोजनम् । १४० । नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या वि-
प्रोक्ते पतन्ति याः । न श्मश्रूणि गतान्यास्यन्नदन्तान्तरधिष्ठितम् । १४१ । स्पृशन्ति विन्दवः पादौ य आचामयतः परान् । भौतिकैस्ते समाज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् । १४२ । उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन । अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः

१३७ ॥ बिठा मूत्र करके हाथ पांव धोके आचमन करके इंद्रियों को छुवै वेद के पठन समय में और भोजन समय में भी आचमन करके इंद्रियों को छुवे ॥ १३८ ॥ शरीर को पवित्रता को इच्छा करत पुरुष प्रथम तीन बेर आचमन करे तब दो बेर मुख धोवे स्त्री और शूद्र तो एक ही बेर मुख धोवे और आचमन करे ॥ १३९ ॥ न्याय से रहने वाले शूद्र को मांस में एक बेर कौर कर्म है वैश्य की नाई पवित्रता है ब्राह्मण का जूठा भोजन है ॥ १४० ॥ मुख से थूक का बिंदु अंग में पड़े और मोह का बाल मुख में जाय और दांत में लगी जो बस्तु ये सब अगृह्य नहीं करते ॥ १४१ ॥ किसी को आचमन कोई करता हो और आचमन करने वाले के मुख से जल बिंदु भूमि में गिरके आचमन कराने वाले के पांव पर पड़े तो वह भूमि के जल के समान है उस से अपवित्र नहीं होता ॥ १४२ ॥ कोई बस्तु

का हाथ में लिये हुए पुरुष जूठे मनुष्य से छूआ जाय तो उस वस्तु को लिए हुए हो आचमन करके शुद्ध होता है । १४३ । बमन और बिरेचन को करने वाला स्नान करके घी भोजन करे और अन्न आदि भोजन करके आचमन करे मैथुन करके स्नान करे ॥ १४४ ॥ स्मृति के कौनिक के भोजन करके खंखारि के छूठ बालक जल पीकर पवित्र रहत मंते भी आचमन करे ॥ १४५ ॥ मृग जो कहते हैं कि हे ऋषियो आप लोगों में सब वर्णों का शौच विधि संपूर्ण कहा और द्रव्य शुद्धि भी कहा इस के अनन्तर स्त्रियों के धर्म को जाना ॥ १४६ ॥ स्त्री वाला हो चाहे युवती का अथवा बृद्धा हो परंतु गृह में कोई कार्य को स्वतंत्रता से न करे ॥ १४७ ॥ बालावस्था में पिता के अधीन रहे युवावस्था में पति के बश रहे विधवा भग्न मंते पुत्रों के अधीन रहे स्तंवा (अर्थात् अपने अधीन हो के कभी न रहे) ॥ १४८ ॥ पिता भाई पुत्र इन के साथ अपने बियोग की इच्छा न करे इन्हीं के बियोग से स्त्री दोनों कुल को निन्दित करता है ॥ १४९ ॥ सर्व काल में

शुचितामियात् । १४३ । बान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत् । आचामेदेव भुक्तान्नं स्नानमैथुनि नः स्मृतम् । १४४ । सुपत्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वा नृतानि च । पीत्वापोध्येयमाणश्च आचामेत्ययतोऽपि सन् । १४५ । एष शौचविधिः छ-
त्स्वो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च । उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान्विवोधत । १४६ । बालया वा युवत्या वा बृद्धया वापि योऽपिता
। न स्वातंत्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं नृहेऽपि । १४७ । बाल्ये पितृव्ये तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने । पुत्राणां भर्तृरिति प्रेते न भजे-
त्स्त्री स्वतन्त्रताम् । १४८ । पित्रा भर्ता सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः । एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये वुर्यादुभे वुले । १४९ ।
सदा प्रहृष्टया भाव्यं कृद्वा कार्येषु दक्षया । सुसंस्तुतोपस्करया व्ययेचामुक्तहस्तया । १५० । यस्मै दद्यात्पिता त्वनां भ्राता चानुम-
ते पितुः । तं शश्रूपेत जीवन्तं संस्थितञ्च न लंघयेत् । १५१ । मङ्गलार्थं स्वस्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः । प्रयुज्यते विवाहेषु
प्रदानं स्वाम्यकारणम् । १५२ । अन्तर्गृहकाले च मंत्रसंस्कारव्यतिः । सुखस्य नित्यन्दातेह परलोके च योऽपितः । १५३ ।
विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः । उपचर्यः स्त्रिया साध्यया मततन्देववर्त्यतिः । १५४ । नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न
व्रतन्नाप्युपोषितम् । पतिं शश्रूपते येन तेन स्वर्गे महीयते । १५५ । पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा । पतिलोक

हृष्ट और गृह कार्य में दक्ष रहे गृह की सामग्री को सुंदर प्रकार में बनाए रखे उदार न रहे ॥ १५० ॥ जिस पुरुष का पिता देव अथवा पिता को आज्ञा पाके पुत्र देवे उस पुरुष की सेवा करे उस के मरे पीके दूसरे पुरुष के साथ रति न करे ॥ १५१ ॥ विवाह में स्वस्ययन (अर्थात् शांति मंत्र पठन) और ब्रह्मा के नि-
मित्त याग जो होता है स्त्रियों के सा मंगल के अर्थ है (अर्थात् दण्ड संपत्त्यर्थ कर्म रहे) और दान जो है सा भर्ता के स्वामित्व का कारण है । १५२ । मृत काल में अथवा
अन्तर्गृह काल में मंत्र संस्कार करने वाला पति इस लोक में पर लोक में स्त्रियों को सुख देने वाला है । १५३ । शील में रहित पति हो अथवा दूसरी स्त्री के साथ प्रेम
रखता हो किंवा गुणों के वर्जित हो तो भी जो साध्वी स्त्री है सो नित्य ही देवता की नाई पति की सेवा करे । १५४ । स्त्रियों के यज्ञ व्रत उपवास पृथक् नहीं
हैं केवल पति के सेवा ही में स्वर्ग में पूजित होती है । १५५ । पति लोक की इच्छा करने वाली स्त्री साध्वी जीवते अथवा मरे हुए पति का कुछ भी अप्रीय वस्तु न

करे । १५६ । पति के मरे मते दूसरे पति का नाम ग्रहण भी न करे सुंदर मूल पुण्य फल करके इच्छा पूर्वक छोड़ा आहार कर के देह को राखत काख को काटे । १५७ । एकै है पति जिस को ऐसी जो स्त्री उस के धर्म को आकांक्षा करती ऊई मरण तक नियम सहित ब्रह्मचारिणी होकर दुर्बल शरीर से रहे । १५८ । कदाचित् कहे कि वंश बिना स्वर्ग नहीं होता इस लिये वंश के अर्थ दूसरे पति के साथ रति करना चाहिए तिस पर कहते हैं कि नहीं कुमार ब्रह्मचारी ब्राह्मण कई सहस्र स्वर्ग गए बिना संतति किए इस बात को समझ कर बिना संतति नियम से रहे । १५९ । पति के मरे पीछे साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य में स्थित रहे तो पुत्र प्राप्ति भी स्वर्ग जाती है जैसे कुमार ब्रह्मचारी स्वर्ग गए । १६० । पुत्र होने के लोभ से जो स्त्री दूसरे पति के साथ रति करती है सो इस लोक में निन्दा पाती है और पति लोक को पर लोक में नहीं पाती है । १६१ । दूसरे पति से उत्पन्न प्रजा शास्त्र को रीति से अपना नहीं कहाता साध्वी स्त्रियों के कही दूसरा भर्ता शास्त्र में नहीं लिखा है । १६२ ।

मभोसन्तो नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् । १५६ । कामन्तु क्षपयेद्देहं पुण्यमूलफलैः शुभैः । न तु नामापि यत्कृत्वात्यर्थो प्रेते परस्थ-
तु । १५७ । आसीतामरणान्शान्ता नियता ब्रह्मचारिणी । यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् । १५८ । अनेकानि
सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् । दिवङ्गतानि विप्राणामष्टत्वा कुलसन्ततिम् । १५९ । मृते भर्तार साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यव-
स्थिता । स्वर्गङ्गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः । १६० । अपत्यलोभाद्यातु स्त्री भर्तारमति वर्तते । सेह निन्दामदाप्नोति
परलोकाच्च ह्येत । १६१ । नान्योत्यन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्य परिग्रहे । न द्वितीयस्य साध्वीनां कचिद्वर्तोपदिश्यते । १६२ ।
पतिं हित्वापक्रष्टं स्वमुत्कृष्टं यानिषेवते । निश्चैव सा भवेन्नोके परपूर्वेति चोच्यते । १६३ । व्यभिचारात् भर्तुः स्त्री लोके प्रप्नोति
निन्दताम् । शृगालयोनिमप्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते । १६४ । पतिं यानाभिचरति मनोवाग्देहसंयता । सा भर्तृलोकमाप्नोति
सङ्गिः साध्वीति चोच्यते । १६५ । अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता । इहाग्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकम्परश्च च । १६६ ।
एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् । १६७ । भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वा ग्रीनं-
त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधाममेव च । १६८ । अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् । द्वितीयमायुषो भागं कृत

अरुण निशुष्ट पति को छोड़ कर दूसरे के उत्कृष्ट पति को जो सेवन करती है सो लोक में निन्दित कहाती है और दृढ़ पति वाली कहाती है । १६२ । भर्ता के व्यभिचार से लोक में स्त्री निन्दित कहाती है शृगाल योनि को प्राप्त होती है पाप रोगों से पीड़ित होती है । १६३ । जो दूसरे पति के साथ रति नहीं करती मग बाणी देह से संयत रहती है सो परलोक में पति लोक को पाती है भले लोग उस को साध्वी कहते हैं । १६४ । इस रीति करके मग बाणी देह से संयत रहने से इस लोक में श्रेष्ठ कर्ति को और परलोक में पति लोक को पाती है । १६५ । धर्म के जानने वाले ब्राह्मण सचिष वैश्य ऐसी अपने वर्ण की स्त्री जरि जाय तो उस को अग्नि होच की अग्नि से और जस पात्र से दाह करे । १६७ । तदनन्तर अथ कर्म करके पुनः विवाह करे और अग्नि का स्थापन करे । १६८ । इस विधि से नित्य ही पंच यज्ञ का

त्याग न करे आयुष का दूसरा भाग तक विवाह करके गृह में बस करे । १६८ । इति श्री मनु स्मृति भाषा टीकायां कुल्लुकभट्ट व्याख्यानुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कल्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्मशास्त्रि गुलजार शर्मा पण्डित वृतायां श्रौचविधिः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ० ॥ ५ ॥ इस रीति में गृहाश्रम में रहि के स्नातक द्विज निश्चित इंद्रियों को जीत कर ज्यों का त्यों बन में बस करे । १ । जब गृहस्थ अपने को वृद्धावस्था देखे और पुत्र के पुत्र को देखे तब बन में बस करे । २ । ग्राम के आहार को त्याग कर और गृह का सामग्री को त्याग कर भार्या को पुत्र के अधीन कर बन में जाय अथवा स्त्री सहित बन में जाय । ३ । अग्नि होच को लेकर और सामग्री सहित गृह की अग्नि को लेकर इंद्रियों को रोक कर ग्राम में निकल कर बन में रहे । ४ । नाना प्रकार के ओ मुनि के अन्न हैं और पवित्र जो शाक मूल फल है तिम करके विधि पूर्वक पंच महायज्ञों को करे । ५ । चर्म अथवा बस्त्र का खंड इस को पहिरे सायं प्रातः स्नान करे

दारो गृहे वसेत् । १६८ ॥ * इति मानवे धम्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां श्रौचविधिः पञ्चमोऽध्यायः ॥ । ५ ॥ * * * एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः । वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः । १ । गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलित-मात्मनः । अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् । २ । सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वञ्चैव परिच्छेदम् । पंचेषु भार्या निहिष्य वनङ्गच्छेत्सहैव वा । ३ । अग्निहोचं समादाय गृह्यं चाग्निं परिच्छेदम् । ग्रामादरण्यान्निःसृत्य निश्सेन्नियतेन्द्रियः । ४ । मुन्यन्नैर्विविधैर्मध्येः शाकमूलफलेन वा । एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् । ५ । वसीत चमचीरम्वा सायं स्नायात्पुनर्यथा । जटांश्च विभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च । ६ । यद्वश्यं स्यात्ततो दद्याद्वस्त्रं भिक्षाञ्च शक्तितः । शम्भूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् । ७ । स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादान्तो मैत्रः समाहितः । दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः । ८ । वैतानिकश्च जुहुयादग्निहोचं यथा विधि । दर्शमस्तुन्दयन् पर्व पौर्णमासं च योगतः । ९ । ऋशोऽप्यग्रायणञ्चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् । उत्तरायणञ्च क्रमशो दशस्यायनमेव च । १० । वासन्तशरदौर्मध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः । पुराडाशां खरुंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् । ११ । देवताभ्यस्तु तदुत्वावन्यमेध्यतरं हविः । शेषमात्मनि युंजीत लवणञ्च स्वयं कृतम् । १२ ।

जटा मोह लोम नख को धारण करे । ६ । जिस वस्तु को भोजन करे उसी वस्तु में बलि कर्म करे और उसी वस्तु को भिक्षा देवे शक्ति पूर्वक अपने स्थान में कोई आवे तो जल मूल फल से उसका पूजन करे । ७ । नित्य ही वेद को पढ़े एकाग्रचित्त रहे रुभ का मित्र हो कर रहे शीत घाम काम क्रोध आदि जो जोड़ा वस्तु हैं तिन को सहन करे देव ही करे किङ्क गृहण न करे सर्व जीव पर दया रखे । ८ । यथा विधि अग्नि होच को करे दर्श पौर्णमास याग को करे । ९ । मन्त्र याग आग्रयण चातुर्मास्य उत्तरायण दक्षिणायन कर्म को क्रम से करे । १० । वसंत काल में शरत काल में भए जो मुनि के अन्न हैं पवित्र उन को आप से लाके उसी में विधि पूर्वक पृथक् पृथक् पुरा डाश चर देवता को देवे याग सिद्धि के लिये । ११ । अति पवित्र हवि देवता को देकर जो बचे सो आप भोजन करे अपने बनाये लवण को भोजन करे । १२ । मयल जल पवित्र वृक्ष इन्हीं से उत्पन्न जो शाक मूल पुष्प फल उस को भोजन करे फल से उत्पन्न तेल को भोजन करे । १३ । मापु

मांस और भूमि में उत्पन्न जो कृत्वाकार और भूस्तृण जो मालव देश में प्रसिद्ध है शिग्रुशक जो वाह्लीक देश में प्रसिद्ध है और बहेड़ा इन सब को त्याग करे । १४ । मुनि का अन्न जो बटुरा है और जीर्ण वस्त्र शाक मूल फल इन सब को आश्विन मास में त्याग करे । १५ । हल से उत्पन्न जो वस्तु है खेत के समीप में जो वस्तु है और उस को स्वामी ने त्याग भी किया हो तो भी उस को भोजन न करे और दुःखित हो तो भी बिना हल से उत्पन्न ग्राम का फल मूल को भोजन न करे । १६ । अग्नि करके जो पका है अथवा काल करके जो पका है उस को भोजन करे पत्यर से कूट करके अथवा दांत ही को ओखरी बनाकर भोजन करे । १७ । एक दिन भर के भोजन को राखे अथवा मास भर के किंवा कृ मास भर के भोजन को राखे अथवा एक वर्ष भर के । १८ । शक्ति पूर्वक दिन में स्नान कर रात्रि को भोजन करे अथवा एक दिन उपवास करे दूसरे दिन में एक बेर भोजन करे किंवा तीन दिन उपवास करे चौथे दिन में एक बेर भोजन करे । १९ ।

स्थलजौदकशकानि पुष्यमूलफलानि च । मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्सह्यंश्च फलसम्भवान् । १३ । वर्जयेन्मधुमांसञ्च भौमानि कवकानि च । भूस्तृणं शिग्रुकञ्चैव श्लेष्मान्तकफलानि च । १४ । त्यजेदाश्वयुजे मासि मुख्यन्नं पूर्वसंचितम् । जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च । १५ । न फाल्गुण्यमश्रीयादुत्सृष्टमपि केनचित् । न ग्रामजातान्यार्त्तोपि मूलानि च फलानि च । १६ । अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा । अश्मकुट्टो भवेदापि दन्तो लूखलिकोपि वा । १७ । सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयिकोपि वा । पण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा । १८ । नक्तञ्चान्नं समश्रीयाद्दिवा वा हृत्य शक्तितः । चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः । १९ । चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लेष्टे च वर्त्तयेत् । पश्चान्तयोर्वाप्यश्रीयाद्यवागूं कथितां सक्तृत् । २० । भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् । स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेपूपयन्नपः । २१ । ग्रीष्मे पञ्च तपास्तु स्यादपाम्बुभावकाशिकः । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयन्तपः । २२ । उपस्पृशंस्त्रिपवणम्पितृन्देवांश्च तर्पयेत् । तपश्चरं श्रोत्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः । २३ । अग्नीनात्मनि चैवैतान्समारोप्य यथाविधि । अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः । २४ । अप्रयत्नः सुखार्थेपु ब्रह्मचारी धराशयः । शरणेष्वप्यथैव वृक्षमूलनिकेतनः । २५ । तापसेष्वेव

चान्द्रायण व्रत करे अथवा अमावास्या पूर्णमासी के दिन एक बेर यव की लपसी को भोजन करे । २० । काल से पक आप में गिरे जो पुष्य मूल फल तिस करके जीवन करे । २१ । बैखानस (अर्थात् बागप्रस्थ) के मत में स्थित हो कर केवल भूमि ही में लोटा करे अथवा पांव के अग्रभाग से ठाढ़ होकर दिन भर रहें स्थान आमन इसी में बिहार करे त्रिकाल में स्नान करे । २२ । क्रम से तपके बढावत भंते योग्य काल में पञ्चाग्नि तापै वर्षा काल में आवरण रहित स्थान में रहें हेमन्त काल में गोला वस्त्र परिधान किए रहें । २३ । त्रिकाल स्नान करके देवता पितरों का तर्पण करे बड़ी भारी तप करत भंते देह को सुखावे । २४ । यथा विधि अग्नि होच की अग्नि को अपनी आत्मा में समावेश करे पश्चात् अग्नि रहित स्थान रहित मूल फल को भोजन करत शास्त्र को विचारै । २५ । सुख के अर्थ यत्न ना

करै ब्रह्मचारी हो कर भूमि शयन करै हृत् के मूल में गृह करै निवास स्थान में समता न राखै । २६ । तपस्वी ब्राह्मण से भिक्षा मांगे और जो गृहस्थ बन बाकी दिज हैं उन से भी भिक्षा मांगे । २७ । अथवा ग्राम से भिक्षा मांगकर आठ ग्राम भोजन करै बन में रहत मंते देना में अथवा हाथ में किम्बा माटी के बरतन के टुकड़ा में भिक्षा लेवे । २८ । बन में बास करत मंते यह संपूर्ण दीक्षा का और दूसरी दीक्षा का भी सेवन करै नाना प्रकार की उपनिषद में भई जो श्रुति हैं उन्हीं का सेवन करै आत्मा की सम्यक् मित्रि के लिये । २९ । शरीर की शुद्धि और तप को दृढि के लिये उम बिद्या का सेवन करै जिस बिद्या का सेवन ऋषि और गृहस्थ ब्राह्मणों ने किया है । ३० । अथवा जल वायु को भक्षण करत ईशान काण में भीधा चला जाय जब तक शरीर का पात न हो । ३१ । ये सभ आचरण बड़े बड़े ऋषि लोगों का कहा है उम में कोई आचरण में शरीर का त्याग करके शाक भय का कांड कर ब्रह्म लोक में पूजित होता है । ३२ । इस रीति से आयुष का

विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् । गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु । २६ । ग्रामादाहृत्य वा श्रियादष्टौ ग्रामान्वने वसन । प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा । २७ । एताद्यान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् । विविधाश्चोपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः । २८ । ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः । विद्या तपो विवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्ध्ये । २९ । अपराजितां वा स्थाय ब्रजेद्दिशमजिह्मगः । आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः । ३० । आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वा न्यतमया तनुम् । वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते । ३१ । वनेषु तु विहृत्यैव नृतीयभागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् । ३२ । आश्रमादाश्रमङ्गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः । भिक्षावलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्द्धते । ३३ । ऋणानि चीर्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेदमानो व्रजत्यधः । ३४ । अधीत्य विधिवद्देदान पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः । इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् । ३५ । अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान । अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः । ३६ । प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्बृहात् । ३७ । यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् । तस्य तेजो मया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः । ३८ । यस्माद्वयपि भूतानां

तोमरा भाग बन में बिताय कर संग को कांडे ऊपर आयुष के चौथे भाग में संन्यास ग्रहण करै । २३ । इंद्रियों को जीतकर होम को समाप्त कर एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाकर भिक्षा और बलि कर्म से यका ऊँचा संन्यास करत मंते परलोक में बढ़ता है । २४ । तीन ऋण को दूर करके मन को मोक्ष में लगावे बिना तीनों ऋण को दूर किये मोक्ष को जो सेवन करता है सो नरक में जाता है । २५ । विधि पूर्वक वेद का पढ़ कर धर्म से पुत्रोत्पन्न करके शक्ति पूर्वक यज्ञ को करत मोक्ष में मन को लगावे । २६ । ये तीनों काम के किये बिना मोक्ष को इच्छा करत मंते नरक में जाता है । २७ । प्रजापति देवता की यज्ञ करके संपूर्ण का दक्षिणा देकर अग्नि का अपनी आत्मा में रख कर ब्राह्मण गृह से निकलै (अर्थात् संन्यास ग्रहण करै) । २८ । वेद का पढ़ने वाला जो पुरुष संपूर्ण जीवों का अभय देकर गृह से निकलता है उस को तेज रूप लोक मिलता है । २९ । जिस ब्राह्मण से गम जीवों को थोड़ा भी भय नहीं है उस को परलोक में किमो से भय

नहीं होती । ४० । गृह से निकला ऊआ पवित्रता से बड़ा ऊआ विचार करने वाला कोई से प्राप्त जो सुंदर अन्न आदि तिम में इच्छा रहित संन्यास ग्रहण करे । ४१ । सहाय रहित अकेला नित्य ही बिहरे भिक्षु के लिये एक ही को भिक्षु होती है इस बात को देखता ऊआ किसी को त्याग नहीं करता है और उस को भी कोई त्याग नहीं करते । ४२ । अग्नि और गृह इन दोनों में रहित सभ बस्तुओं का त्याग करत स्थिर मति ब्रह्म में चित्त लगाए हुए अन्न के अर्थ ग्राम का आश्रय करे । ४३ । मुक्त का लक्षण यह है कि जो भिक्षा के अर्थ माटी का पात्र रखे वृत्त के मूल में शयन करे निकाम बस्तु रखे सहायता में रहित हो सभ जीवों में सम भाव रखे । ४४ । मरण और जीवन इन दोनों में कोई की इच्छा न करे केवल कालही को प्रतीक्षा करे जिस रीति में मृत्यु स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है । ४५ । केश हाड़ आदिका त्याग करने के लिये देख के पांव रखे कंठ के जल को पीवे मृत्यु करके पवित्र बाणी को बोलै

द्विजान्नोत्पद्यते भयम । तस्य देहादिमुक्तस्य भयन्नास्ति कुतश्च न । ३९ । आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः । समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिब्रजेत् । ४० । एक एव चरेन्द्रित्यं सिद्धार्थमसहायवान् । सिद्धिमेवस्य संपश्यन् जहाति न ह्यीयते । ४१ । अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्त्रार्थमाश्रयेत् । उपेक्षकोऽंशकुसुको मुनिर्भाव समाहितः । ४२ । कपालं वृक्ष-मूलानि कुचेलमसहायता । समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् । ४३ । नाभिनन्देत मरणन्नाभिनन्देत जीवितम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशभृतको यथा । ४४ । दृष्टिपूतस्येत्पादं वस्त्रपूतं जलम्पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् । ४५ । अतिवादांस्तिथिश्चेत नावमन्येत कश्च न । न चेमन्देहमाश्रित्य वैरङ्गुर्वीत केन चित् । ४६ । क्रुध्यन्तन् प्रति-क्रुध्ये शक्रुष्टः कुशलम्बदेत् । सप्तद्वारादकीर्णाञ्च न वाचमन्यताम्बदेत् । ४७ । अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः । आत्म-नैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह । ४८ । न चोत्पात निमित्ताभ्यान् न श्चचाङ्ग विद्यया । नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हि चित् । ४९ । न तापसैर्वाङ्मणैर्वा वशोभिरपि वाश्वभिः । आकीर्णभिक्षुकैर्वान्यैरागारमुपसंभजेत् । ५० । मृतकेशन

संकल्प से शून्य मन करके सर्व काल पवित्र आत्मा होवे । ४६ । दूसरे मनुष्यों की निकाम बाणी को सहन करे किसी का अपमान न करे किसी से बैर न करे । ४७ । अपने ऊपर कोई क्रोध भी करे तो उस पर आप क्रोध न करे अपनी निन्दा भी करे कोई तो आप उस को अच्छी बाणी से बोलै पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन बुद्धि इन माते में गृहीत जो बस्तु है उसी में बाणी की प्रवृत्ति है इन माते दार करके गृहीत जो अर्थ तद्विषयक बाणी को न बोलै किन्तु ब्रह्म मात्र विषयक बाणी को बोलै ब्रह्म विषय में रहित जो बाणी में असत्य है इस लिये सत्य बोलै सत्य तो ब्रह्म ही है इस लिये ब्रह्म विषयक बाणी बोलै ॥ ४८ ॥ आत्मा में रति करत रहे कोई बस्तु की इच्छा न करे आमिष का त्याग करे केवल अपनी आत्मा ही सहायक कर मुख के अर्थ इस लोक में बिचरे । ४९ । भूमिकंप आदि उत्पात नेत्र फरकना आदि निमित्त नरुच हसा रेखा दन्तों का फल कथन करके नीति शास्त्र का उपदेश करके कभी भिक्षा लेने की इच्छा न करे । ५० । तपस्वी ब्राह्मण

पक्षी कक्षुर भिलुक इन्हीं से युक्त जो गृह है उस को त्याग करे । ५१ । केश नख मोहक को छोटा किए रह पात्र दंड कमंडलु से युक्त रह संपूर्ण जीवां को पीडा न देव निश्चित होकर नित्य ही विचरे । ५२ । क्रिद्र रहित अतैजस पात्र राखे तिन का शौच जल माटी में करे जैसे यज्ञ में चमस पात्र का शौच होता है । ५३ । लौकी काठ माटी बांस इन्हीं का पात्र राखे इतने ही यती के पात्र हैं यह मनु जी ने कहा । ५४ । एक काल में भिक्षा चरण करे विस्तार में प्रसक्त न होवे भिक्षा में प्रसक्त होने में विषयों में भी प्रसक्त यती हो जायगा । ५५ । धूम मृमर शब्द अंगार इन्हीं में रहित गृह जब होवे और मभ मनुष्य भोजन कर चुके पुरवा पत्तल जूठी निकाला जाय तब यती भिक्षा के लिये नित्य ही जावे । ५६ । भिक्षा न मिले तो विपादन करे और मिले तो हर्ष न करे जिस में प्राण रहें सो करे दंड आदि जो सामग्री है उस में आसक्त न होवे (अर्थात् यह दंड अच्छा नहीं है इस को त्याग करे यह दंड अच्छा है इस को ग्रहण करे) । ५७ । पूजा में जो वस्तु मिले उस की

खश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुमवान । विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् । ५१ । अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निवृणानि च । तेषामङ्गिः स्मृतं शौचश्चमसानामिवाध्वरे । ५२ । अलावुन्दारुपाश्च मृगस्यम्वैदलन्तथा । एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्भुवो ब्रवीत् । ५३ । एककालश्चरेद्भैक्षं प्रसज्येत विस्तरे । भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति । ५४ । विधूमे सन्न-मुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षान्नित्यं यतिश्चरेत् । ५५ । अलाभेन विपादी स्यान्नाभे चैव न हर्षयेत् । प्राणयाचिकमात्रः स्यान्मात्रा संगदिनिर्गतः । ५६ । अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः । अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि वध्यते । ५७ । अल्यान्नाभ्यवहारण रहः स्थानासनेन च । ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् । ५८ । इन्द्रियाणान्निरोधेन रागद्वेषश्च येन च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते । ५९ । अवेशेत गतीर्नृणां कर्मदापसमुद्भवाः । निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये । ६० । विप्रयोगस्मिप्यैश्वर्यं संयोगश्च तथा प्रियैः । जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् । ६१ । देहादुत्क्रमणश्चास्मात्पुनर्गर्भे च सम्भवम् । यानिकोटिसहस्रेषु सृतीत्यास्यान्तरात्मनः । ६२ । अधर्मप्रभवश्चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् । धर्मार्थप्रभवश्चैव सुखसंयोगमक्षयम् । ६३ । सूक्ष्मताश्चान्ववेशेत योगेन परमात्मनः । देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च । ६४ । दूषितोपि चरेद्धर्मं यच्च तत्राश्रमे रतः । समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गन्धर्मकारणम् । ६५ । फलङ्कतक-

निंदा करे पूजा में प्रसक्त होने से मुक्त जो यती है सो बद्ध हो जाता है । ५८ । छोड़ा भोजन करना एकांत में रहना इस में विषयों से हरी गई इन्द्रियों को निवृत्त करे । ५९ । इन्द्रियों का निरोध रागद्वेषकाक्षय मभ जीवां का अहिंसा इन्हीं में मोक्ष के योग्य होता है । ६० । कर्म दाप से उत्पन्न मनुष्यों की गति नरक में पतन यमस्थान में बड़ा दुःख इन्हीं को देखे । ६१ । प्रिय का विप्रयोग अप्रिय का संयोग वृद्धावस्था में अनादर व्याधि में पीडा । ६२ । देह में जीव का निकलना फिर गभ में बास करार योनि में अंतरात्मा जीव का गमन । ६३ । देह वाम् पुरुषों के अधर्म से उत्पन्न दुःख योग धर्म अर्थ से उत्पन्न अक्षय सुख योग । ६४ । योग का के परमात्मा की सूक्ष्मता शुभ अशुभ फल के भोग के लिये उत्तम मध्यम अधम योगि में जीवां की उत्पत्ति इन्हीं को देखे । ६५ । कोई आश्रम में रहे और उस आश्रम क

धर्म से रहित भी हो परंतु सर्वभूत में ब्रह्मबुद्धि करके समदृष्टि रूप जो धर्म है उस को करै काषायांवर आदि धारण जो चिन्ह है सो धर्म का कारण नहीं है । ६६ । कतक वृक्ष का फल (अर्थात् निर्मली) यद्यपि जल को स्वच्छ करती है तथापि नाम ग्रहण से जल स्वच्छ नहीं होता जब घसिके निर्मली जल में डालेंगे तब स्वच्छ होगा । ६७ । जंतुओं के रक्षार्थ रात्रिदिन सर्व काल में भूमि को देखकर चले जिस में कोई जीव न मरै और शरीर को पीड़ा भी न हो । ६८ । जो यती बिना जागे जितने जीवों को मारता है उस के निमित्त स्नान करके कृ प्राणायाम करे तब शुद्ध होता है । ६९ । व्याहृति प्रणव करके युक्त प्राणायाम तीन भी विधि पूर्वक करे तो वह परमतप है ब्राह्मण का । ७० । जिस रीति से अग्नि में तपाने से धातुओं का मल दूर होता है तिसी रीति से प्राणायाम करके इंद्रियों का दोष दग्ध होता है । ७१ । प्राणायाम करके रागद्वेष आदि दोष को दहन करना धारणा (अर्थात् ब्रह्म में मन लगाना) से पाप को नाश करना प्रत्याहार (अर्थात् विषयों

वृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् । न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति । ६६ । संरक्षणार्थञ्जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा । शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधाञ्चरेत् । ६७ । अह्ना रात्र्या च यान् जग्तून् हिनस्यन्नानतो यतिः । तेषां स्नात्वा विशुध्यर्थं प्राणायामान् पडाचरेत् । ६८ । प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत्कृताः । व्याहृति प्रणवैर्युक्ता विज्ञेयम्परमन्तपः । ६९ । दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः । तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् । ७० । प्राणायामैर्दहेद्दोषा- न्धारणाभिश्च किल्बिषम् । प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् । ७१ । उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः । ध्यानयोगेन सम्पश्येन्नतिमस्यान्तरात्मनः । ७२ । सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते । दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते । ७३ । अहिंसयेन्द्रिया सङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः । तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् । ७४ । अस्थिस्यूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् । चर्मावनहं दुर्गंधि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः । ७५ । जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्व- लमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत् । ७६ । नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षम्वा शकुनिर्यथा । तथा त्यजान्निमन्देहं छल्लग्राहादि- मुच्यते । ७७ । प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् । दिसज्यध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् । ७८ । यदा भावेन भवति

से इंद्रियों का रोकना) से विषय मिलाप को दूर करना ध्यान करके ईश्वर संबंधी जो गुण नहीं हैं (अर्थात् क्रोध लोभ निंदा आदि) इन को वारण करना । ७२ । ऊंच नीच भूतों में दम अंतरात्मा की गति को ध्यान योग करके देखें जिस गति को शास्त्रोक्त संस्कार से रहित अंतःकरण वाले पुरुष कष्ट से भी नहीं देख सकते । ७३ । तब पूर्वक ब्रह्म को देखने वाला पुरुष कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ऐसा नहीं है सो संसार को पता है । ७४ । अहिंसा इंद्रियों का अमंग वेदोक्त कर्म बड़ी तपस्या इन्हें करके बुद्धिमान लोग ब्रह्म पद को साधन करते हैं । ७५ । अब शरीर का वर्णन करते हैं हाड़ का खंभा नस से बेठित रक्त मांस से लेपित चर्म से बंधा दुर्गंध संहित मूत्र और बिठा से पूर्ण । ७६ । जरा और शोक से युक्त रोग का घर आतुर (अर्थात् क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदि से कादर) रजोगुण से युक्त अग्नित्य (अर्थात् नाश के प्राप्त) पृथिवी आदि पंचभूत का गृह ऐसी देह जीव का गृह है इस को त्याग करे (अर्थात् जिस कर्म करके ऐसी देह न मिले उस कर्म को करे । ७७ । जिस

प्रकार से नदी के तीर को वृक्ष त्याग करता है और वृक्ष के पत्ती तिसी प्रकार से इस देह को त्याग करत मंते ब्रह्म का उपासना करने वाला कष्ट रुपी याह से कूटता है । ७८ । ब्रह्म को जानने वाला हितकारो में मुक्त अहित कारो में दूषित को डालकर ध्यान योग से ब्रह्म में लीन होता है । ७९ । जब परमार्थ से बिषयों में दोष भावना करके सब वस्तु में इच्छा से रहित होता है तब इस लोक में और पर लोक में सुख को पाता है । ८० । इस विधि से धीरे धीरे सब मंगों को त्याग करके काम क्रोध शीत घाम आदि जो जोड़ा जोड़ा वस्तु है तिन्हों से कूटा हुआ ब्रह्म ही में लीन होता है । ८१ । जो यह सब कहा है कि पुत्र आदि में ममता का त्याग और मानअपमान जो जोड़ा जोड़ा वस्तु है तिन्हों का सहन ये सब वस्तु जीवात्मा को परमात्मता करके ध्यान मंते होता है आत्मा को न जानने वाला कोई पुरुष क्रिया फल (अर्थात् ममता का त्याग और जोड़ा जोड़ा वस्तु का सहन और मोक्ष) को नहीं पाता है । ८२ । यज्ञ देवता जीव इन सबों के अधिकार करके जो

सर्वभावेषु निःस्पृहः । तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् । ७९ । अनेन विधिना सर्वां स्त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः । सर्वहं द्विनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते । ८० । ध्यानिकं सर्वमेवैतत् यदेतदभिशब्दितम् । न ह्यनध्यात्मवित्कश्चिद्व्याफलमुपाप्नुते । ८१ । अधियज्ञं ब्रह्मजपेदाधिदैविकमेव च । अध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितञ्च यत् । ८२ । इदं शरणमन्त्रानामिदमेव विजानताम् । इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् । ८३ । अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः । स विधूयेह पाप्मानमपरमब्रह्माधिगच्छति । ८४ । एष धर्मो नुशिष्टो वा यतीनान्नियतात्मनाम् । वेद संन्यासिकानान्तु कर्मयोगन्निबोधत । ८५ । ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा । एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः । ८६ । सर्वेपि क्रमशस्त्वेते यथा शास्त्रन्निषेविताः । यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमाङ्गतिम् । ८७ । सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृति विधानतः । गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स चीनेतान्विभर्ति हि । ८८ । यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यांति संस्थितिम् । तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यांति संस्थितिम् । ८९ । चतुर्भिरपि चैवेतैर्नित्यमाश्रमभिर्द्विजैः । दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः । ९० । धृतिः

कहा है वेद में और वेदान्त में जो कहा है ब्रह्म का स्वरूप इन सबों का प्रतिपादन करने वाला जो वेद उस का अप करें । ८३ । ज्ञानी और अज्ञानी स्वर्ग का इच्छा करने वाला और मोक्ष का इच्छा करने वाला इन सबों का शरण (अर्थात् उपाय बताने वाला) वेद ही है । ८४ । इस क्रम करके जो ब्राह्मण संन्यासी होता है मोक्ष इस लोक में पाप को छोड़कर परब्रह्म को प्राप्त होता है । ८५ । भृगु जी कहते हैं कि ये ऋषियों आप लोगों को चार प्रकार के जो यती हैं कुटीचर वृद्धक हंस परम हंस इन सबों के साधारण धर्म को कहा अब यतिश्री में विशेष जो कुटीचर है तिन के असाधारण धर्मों को सुनिष । ८६ । ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ यती ये सब चारों आश्रम पृथक् पृथक् गृहस्थ ही से उत्पन्न हैं । ८७ । क्रम से यथा शास्त्र ये चारों आश्रम से वित हो जिस पुरुष करके वह पुरुष परम गति को पाता है । ८८ । वेद और स्मृति इन दोनों के विधान से चारों आश्रम में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है क्योंकि तीनों आश्रमों के भोजन वस्त्र से पोषण गृहस्थ ही करता है । ८९ । जिस प्रकार से सब नदी नद समुद्र में जाके स्थिति को पाते हैं तिसी प्रकार से सब आश्रमी गृहस्थ ही में स्थिति को पाते हैं । ९० । चारों आश्रम वाले नित्य ही दश लक्षण वाला जो धर्म

उस का सेवन यज्ञ पूर्वक करें । ८१ । दश लक्षण कहते हैं धृति (अर्थात् संतोष) क्षमा (अर्थात् किसी से अपकार को पाकर उस पर अपकार न करना) दम (अर्थात् विकार करने वाली विषय को पाकर मन में विकार न होना) चोरी का त्याग पवित्रता विषयों में इंद्रियों का रोकना शास्त्र आदि का तत्व ज्ञान आत्म ज्ञान सत्य क्रोध का हेतु रहत मते भी क्रोध न करना । ८२ । ये दश धर्म के लक्षण हैं इन्हीं का जानकर और सेवन करता है वह परमगति को पाता है । ८३ । निश्चिन्त होकर इस धर्म को करता हुआ विधि पूर्वक वेदान्त को श्रवण कर तीनों ज्ञान में रहित हो कर संन्यास करें । ८४ । सभ कर्मों को छोड़कर और कर्म दोष को नाश कर नियम सहित वेद का अभ्यास कर पुत्र के ऐश्वर्य में सुख पूर्वक वाम करें । ८५ । इस रीति से सभ कर्मों को छोड़कर आत्म ज्ञान को प्रधान कर स्वर्ग आदि में इच्छा छोड़कर संन्यास करके पापों को दूर कर परम गति को पाता है । ८६ । भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषियों आप लोगों का ब्राह्मणों का चार प्रकार का

क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् । ८१ । दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते । अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यांति परमाङ्गतिम् । ८२ । दश लक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः । वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदन्तरो द्विजः । ८३ । संन्यस्य सर्व कर्माणि कर्मदोषानपानुदन् । नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्यं सुखं वसेत् । ८४ । एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽसृहः । संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमाङ्गतिम् । ८५ । यः बोभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः । पुण्योऽष्टयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मन्निबोधत । ८६ ॥ * ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तयां संहितायां पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथा वृत्तो भवेन्नृपः । सम्भवस्य यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा । १ । ब्राह्मणं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथा विधि । सर्वस्यास्य यथा न्यायङ्कर्तव्यम्परिरक्षणम् । २ । अराजके हि लोकेस्मिन्सर्वतो विद्रते भयात् । रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः । ३ । इन्द्रानिलयमार्काणामग्रेष्व वरुणस्य च । चन्द्रवित्तेशयोश्चैव माचान्निर्हृत्य शाश्वतीः । ४ । यस्मादेपां सुरेन्द्राणां माचाभ्यो निर्मितो नृपः । तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा । ५ । तपत्यादित्यवच्चैव चक्षुषि

जो धर्म है उस को कहा वह धर्म पुण्य है और परलोक में इस का फल अक्षय है अब इस के अनन्तर राजों का जो धर्म है उस को जानिए । ८७ । इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कृष्णक भट्ट व्याख्यानमारुणिण्यां श्री बाबू देबोदयाल सिंह कारितायां श्री कल्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्म शास्त्रि गुल्ज़ार शर्मा पण्डित हुतायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * * * जिस प्रकार से राजों की उत्पत्ति और परम भिद्धि और आचरण है उन सभ को कहेंगे ॥ १ । विधि पूर्वक यज्ञोपवीत पाकर क्षत्रिय अपने राज्यवासी सर्व जीव का संरक्षण यथा न्याय करेंगे । २ । चोरी और के भय सहित राजा रहित लोक के रक्षा के लिये राजा को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया । ३ । इन्द्र वायु यम सूर्य अग्नि वरुण चंद्र कुबेर इन आठों का सारभूत अंश को लेकर राजा का निर्माण ब्रह्मा ने किया । ४ । जिस कारण से देवताओं के अंश करके राजा उत्पन्न है इसी कारण से अपने तेज करके सभ जीवों को पराजय करता है । ५ । सूर्य की नाईं ताप करता है देखने वाले के नेत्र को और मन को पृथिवी में कोई पुरुष

राजों के संमुख होकर राजा को देख नहीं सकता । ६ । प्रभाव में मोटे राजा अग्नि वायु सूर्य सोम धर्मराज कुवेर वरुण दंड हैं । ७ । राजा बालक भी हो तो मनुष्य बुद्धि करके उस का अपमान नहीं करता क्योंकि मनुष्य रूप करके बड़ा देवता यह राजा स्थित है । ८ । अग्नि के समीप जो पुरुष जाता है उसी का अग्नि जलाता है राज रूपी अग्नि पशु द्रव्य सहित कुल को जलाता है । ९ । वह राजा तत्त्वपूर्वक कार्य शक्ति देश काल इन सभी को देख कर धर्म सिद्धि के लिये माना रूप को बारंबार धारण करता है । १० । जिस राजा के प्रसन्नता में लक्ष्मी वसती है और पराक्रम में विजय और क्रोध में मृत्यु वसती है सो राजा सर्वतजमय है । ११ । मोह में उस राजा का द्वेष जो करता है सो निश्चय विनाश को पाता है उस पुरुष के नाश के लिये राजा शीघ्र मन को करता है । १२ । इस कारण में दृष्ट अनिष्ट में जिस धर्म को स्थापन राजा करे उस धर्म का लंघन नहीं करना । १३ । ईश्वर ने उस राजा के लिये सभ जीवों के रक्षार्थ अपना पुत्र ब्रह्म तेज रूप दंड को पहिले ही

च मनांसि च । न चैनम्भुवि शब्दे तु कश्चिदप्यभिधीक्षितुम् । ६ । सोमिर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् । स कुवेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः । ७ । राजाः पुरुषाः स मनुष्य इति भूमिपः । महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति । ८ । एकमेव दहत्यग्निर्नरन्दुरूपमजाः । तत् कुलन्दहति राजाग्निः स पशुद्रव्यसञ्चयम् । ९ । कार्यसो वेद्य शक्तिश्च देशकालौ च तत्त्वतः । कुरुते धम्मसिद्ध्यर्थं पुनः पुनः । १० । यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे । मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतजो मयो हि सः । ११ । तं यस्तु द्वेष्टि सम्मोहात्स विजयत्यमंशयम् । तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः । १२ । तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु संव्यवस्थेन्द्राधिपः । अनिष्टञ्चाप्यनिष्टेषु तन्धर्मज्ञ विचालयेत् । १३ । तस्यार्थे सर्वभूतानाङ्गोत्तारत्नार्थमात्मजम् । ब्रह्मतेजोमयन्दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः । १४ । तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च । भयाद्भोगाय कल्दन्ते स्वधर्मान् चलन्ति च । १५ । तदंशकालौ शक्तिश्च विद्याश्चावेक्ष्य तत्त्वतः । यथार्हतः सम्प्रणयेन्नेन्द्रन्यायवर्तिपु । १६ । स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः । चतुर्णामाश्रमाणाञ्च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः । १७ । दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति । दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डन्धर्मं विदुर्वृथाः । १८ । समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः । असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः । १९ । यदि न प्रणयेद्राजा दण्डन्दण्डेष्टतन्द्रितः । शूलैर्मत्स्यानि वा पश्यन् दुर्वलान्वलवत्तराः । २० ।

उत्पन्न किया । १४ । उस दंड के भय में ग्यावर जङ्गम सभ जीव भाग के लिये समर्थ होते हैं और अपने धर्म में बिचल नहीं सकते । १५ । तत्त्वपूर्वक (अर्थात् जैसा है तैसा ही) देश काल शक्ति विद्या इन सभी को देख कर यथा योग्य अन्याय करने वाले मनुष्यों का उस दंड को देवे । १६ । मोटे दंड राजा है और पुरुष है दुरुग रक्ष स्त्री है कार्य प्राप्ति करने वाला वही है और आज्ञा देने वाला भी चारा आश्रमों के धर्म का प्रतिभू (अर्थात् जामिन्) वही है । १७ । सभ प्रजा का रक्षा करने वाला और आज्ञा देनेवाला वही दंड है सो ते दण्ड पुरुषों में जागने वाला वही है उसी दंड को पण्डित लोग धर्म कहते हैं । १८ । जब विचार करके अच्छे प्रकार में दंड धारण किया जाता है तब संपूर्ण प्रजा का रंजन करता है और जब बिना विचारें वह दंड धारण किया जाता है तब संपूर्ण प्रजा का चारा और में नाश करता है । १९ । जब राजा दंड देने योग्य पुरुषों को आलस पाके दंड न देवे तब बलवान् लोग दुर्बलों को पचाय डालें जैसे शूल के ऊपर मक्खली पकती है । २० । दंड न रॉवे

तो देवों के भाग को कोआ भोजन कर डालेगा और कुक्षुर हवि को भोजन करेगा स्वामी का भाव किसी में न रहेगा उलटा पलट सब हो जावेगा । ११ । जितने जीव हैं वो सब दंड के योग्य हैं पवित्र पुरुष दुर्लभ हैं दंड के भय से सब जीव भाग के लिये समर्थ होते हैं । १२ । देव दानव गंधर्व राक्षस पक्षी सर्प ये सब दंड ही करके भाग के अर्थ समर्थ होते हैं । १३ । दंड के विभ्रमते (अर्थात् दंड के योग्य को न दंड देने में और दंड के योग्य जो नहीं हैं उन का दंड देने में) संपूर्ण वर्ण होषी हो जायगा और संपूर्ण मर्यादा टूट जायगी संपूर्ण लोक को क्षोभ हो जावेगा सब बिगड़ जायगा । १४ । जहाँ ग्राम वर्ण लाख लाख वाला पाप का नाश करने वाला दंड घूमता है तहाँ प्रजा को मोह नहीं होता परन्तु जब दंड देने वाला पुरुष अच्छी रीति से दंड को देखे । १५ । सत्य बोलने वाला विचार करने वाला धर्म अर्थ काम तीनों में षण्डित भले प्रकार से जानने वाला जो राजा है सो उस दंड का देने वाला होता है । १६ । उस दंड को देते सते राजा धर्म अर्थ काम से बढ़ता

अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वावलिह्यावविस्तथा । स्वाम्यश्च न स्यात्कस्मिंश्चित्प्रवर्तेताधरोत्तर । २१ । सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः । दण्डस्य हि भयात्सर्वज्जगद्भोगाय कल्पते । २२ । देवदानवगंधर्व । दश पतंगोरगाः । तेषां भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः । २३ । दुःष्येयुः सर्वणीश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः । सर्वलोकप्रकोष्ठेन समाण्डस्य विभ्रमात् । २४ । यच्च श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा । प्रजास्तच्च न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति । २५ । तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् । समोक्ष्य कारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थको विदम् । २६ । तं राजा प्रणयन्सम्यक् चिवर्गेणाभिवर्द्धते । कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते । २७ । दण्डो हि समदत्तेजो दुर्जरश्चाकृतात्मभिः । धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सवान्धवम् । २८ । ततो दुर्गश्च राष्ट्रश्च लोकश्च स चराचरम् । अन्तरिक्षगताश्चैव मुनीन् देवांश्च पीडयेत् । २९ । सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना । न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च । ३० । शुचिना सत्यसंधेन यथा शास्त्रानुसारिणा । प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता । ३१ । स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्दृशदण्डश्च शत्रुषु । सुहृत्स्वजिह्वाः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः । ३२ । एवम्वृत्तस्य नृपतेः शिलोच्छेमापि जीवतः । विस्तीर्यते यशो लोके तैलविन्दुरिवाम्भसि । ३३ । अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः । संक्षिप्यते यशो लोके

है जितने कामी कूर नीच हैं तितने दंड ही से मारे जाते हैं । २१ । बड़ा तेजस्वी दंड है जिस का धारण शास्त्र से रहित राजा लोग नहीं कर सकते हैं सो दंड धर्म से चलित जो राजा है उस का और उस के बांधवों को मारता है । २२ । तदनंतर किला राज्य स्यावर जंगम रूप लोक अंतरिक्ष में स्थित जो मुनि देवता इन सब को पीड़ा करता है । २३ । सहाय से रहित मूढ़ लोभी मूर्ख विषयों में मग्न जो राजा है सो न्याय पूर्वक उस दंड को नहीं देख सकता । २४ । पवित्र सत्यवादी शास्त्र की रीति से चलने वाला सहाय सहित बुद्धिमान ऐसा जो राजा है सो उस दंड को दे सकता है । २५ । अपने राज्य में न्याय के अनुसार से चले और शत्रुओं को बड़ा दंड देवे स्वभाव से स्नेह पात्र मित्रों में मोधा रहे थोड़ा अपराध करने वाले ब्राह्मणों में क्षमा सहित रहे । २६ । इसी रीति से रहता ऊँचा राजा शिल उच्छेद से भी जीवन करता है तो उस का यश लोक में फैलता है जैसे जल में तैल का घिंदु फैलता है । २७ । इस से विपरीत जो राजा है और आत्

को जीता नहीं है उस का यश लोक में फैलता नहीं जैसे जल में घी का बिंदु फैलता नहीं है । ७४ । अपने अपने धर्मों में रहने वाले जो वर्ण और आश्रम हैं उन्हीं के रक्षा के लिये राजा उत्पन्न किए गए । ७५ । भृगु जो कहते हैं कि हे ऋषि लोगो भृत्य महित प्रजा का रक्षा करने वाले राजा के करने योग्य वस्तुओं को ज्यों का त्यों क्रम से आप लोगों से हम कहेंगे । ७६ । राजा प्रातः काल उठ के ऋग्यजु साम वेद का अर्थ जानने वाले ब्राह्मणों की उपासना करे और उन की आज्ञा में रहे । ७७ । पवित्र ऋद्ध वेद के पढ़ने वाले ब्राह्मणों की नित्य ही सेवा करे ऐसा राजा राज्यों में भी पूजा को पाता है । ७८ । नित्य ही स्वभाव से उत्पन्न जो बुद्धि और अर्थ शास्त्र के ज्ञान से उत्पन्न जो बुद्धि इन्हीं करके नम्र आत्मा यद्यपि है तथापि नम्र होकर उन ब्राह्मणों से विनय का अभ्यास करे अधिक विनय के अर्थ ऐसे राजा कभी नष्ट नहीं होता । ७९ । राज्य सामग्री महित बड़त राजा लोग अविनय से भ्रष्ट हुए हैं और वन में रहने वाले राजा लोग विनय से राज्य को पाए

एतविन्दुरिवाम्भसि । ३४ । स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः । वर्णानामाश्रमाणाञ्च राजासृष्टोभिरक्षिता । ३५ । तेनय-
द्यत्स मृत्येन कर्तव्यं रक्षता प्रजाः । तत्तद्बोहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः । ३६ । ब्राह्मणान् पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ।
चैविद्यदृष्टान्विदुपस्तिष्ठेत्तेषाञ्च शासने । ३७ । दृष्ट्वांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन् । दृष्ट्वेसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते
। ३८ । तेभ्योऽधिगच्छेद्दिनयं विनीतात्मापि नित्यशः । विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् । ३९ । दहवोऽद्विनयान्नष्टा
राजानः सपरिच्छदाः । वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे । ४० । वेणो विनष्टो विनयान्नष्टुपदैव पार्थिवः । सुदासो यव
नश्चैव सुमुखो निमिरेव च । ४१ । पृथुस्तु विनयाद्राज्यमाप्तवान्मनुरेव च । कुवेरश्च धनैश्चर्यस्त्राह्मण्यश्चैव गाधिजः । ४२ । चैविद्ये-
भ्यस्त्रयीं विद्यां दंडनीतिं च शाश्वतीम् । आर्त्तक्षीक्षीञ्चात्मविदां वातारंभांश्च लोकतः । ४३ । इंद्रियाणां जये योगं समाति
ष्ठेद्दिवानिशम । जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः । ४४ । दश कामसमृत्यानि तथाष्टौ क्रोधजानि च । व्यसनानि
दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् । ४५ । कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः । वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ।

हैं । ४० । वेण नङ्गव यवन का पुत्र सुदास मुमुख निमि ये सब अविनय से नष्ट हुए । ४१ । पृथु मनु ये दोनों राज्य को और कुवेर धनैश्वर्य का विश्वामित्र ब्राह्मण
जाति को विनय से पाए । ४२ । तीन वेद के जानने वाले ब्राह्मणों में तीन वेद का पाठ और अर्थ को दंड नीति के जानने वाले में नीति (अर्थात् अर्थ शास्त्र) को
तर्क विद्या जानने वाले में तर्क विद्या (अर्थात् भूमि आदि की उक्ति प्रत्युक्ति के उपयोग वाली) को ब्रह्म विद्या के जानने वाले में ब्रह्म विद्या (अर्थात् उदय में और
नाश में हर्ष और विषाद का नाश करने वाली) को धन मिन्नने की उपाय को जानने वाले खेती घर में कृषि बाणिज्य पशु पालन आदि वार्ता को सीखें । ४३ ।
रात्रि दिन इंद्रियों के जोतने में उद्योग को रखें जितेन्द्रिय राजा संपूर्ण प्रजा को अपने वश रखने सकता है । ४४ । काम से उत्पन्न दश वस्तु और क्रोध से उत्पन्न
आठ वस्तु इन को यत्न से वर्जन करे । ४५ । काम से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से राजा धर्म और अर्थ में रहित होता है और क्रोध से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से

आप नष्ट होता है। ४६। शिकार और पामा इन्हीं का खेलना दिन में सोना पर का दोष कहना स्त्री का सेवा मुरा पान से मद नाचना गाना बजाना वृथा घूमना ये दश काम मे उत्पन्न हैं। ४७। बिना जाना दोष का कहना बल से काम करना कपट से बध दूमरे के गुण को न सहना पर के गुण में दोष निकालना अर्थ को चोराना अथवा देने योग्य वस्तु को न देना बाणी में कठोर बोलना दंड से ताड़न करना ये आठ क्रोध मे उत्पन्न हैं। ४८। दोनों गणों का मूल लोभ है उस को यत्र से जोतना इस के जोतने में दोनों गण जोते जाते हैं इस बात को कवियों ने कहा है। ४९। काम से जाय मान दश वस्तु में मदिरा पान पासा खेलना स्त्री सेवन शिकार खेलना ये चार क्रम में अर्थात् पूर्व पूर्व ब्रह्म कष्ट हैं। ५०। क्रोध से जाय मान आठ वस्तु में दंड से मारना गाली देना देने योग्य वस्तु को न देना ये तीन ब्रह्म कष्ट हैं। ५१। ये सात सर्वत्र रहने वाले हैं इन में पहिला पहिला अति कष्ट है। ५२। ये अठारहो व्यसन कहाते हैं व्यसन और मृत्यु में व्यसन कष्ट है

४६। मृगया श्लादिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियोमदः। तौर्यचिकं वृथाया च कामजो दशको गणः। ४७ पैशून्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूर्यार्थदूषणम्। वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोपि गणोष्टकः। ४८। द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः। तं यत्नेन जये स्त्रोभं तज्जावेतावभौ गणौ। ४९। पानमद्याः स्त्रियश्चैव मृगया च यथा क्रमम्। एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे। ५०। दण्डस्य पातनं चैव वाक्यारुप्यार्थदूषणे। क्रोधजोपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा। ५१। सप्तकस्यास्यवर्गस्य सर्वत्रैवानुपंगिणः। पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्यसनमात्मवान्। ५२। व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते। व्यसन्यधोधो व्रजति स्वर्गात्यव्यसनी मृतः। ५३। मौलान शास्त्रविदः शूरां लब्धलक्षान्कुलोद्गतान्। सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्। ५४। अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्। विशेषतोऽसहायेन किंतुराज्यं महोदयम्। ५५। तैस्सार्धैश्चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिवि ग्रहम्। स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च। ५६। तेषां स्वस्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक्। समस्तानाञ्च कार्येषु विदध्याद्वितमात्मनः। ५७। सर्वेषान्तु विशिष्टेन द्राक्षणेन विपश्चिता। मंचयेत्परमं मंचं राजा पाङ्गुण्यसंयुतम्। ५८। नित्यं तस्मिन्समाश्रितः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत्। तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत्। ५९। अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्

क्योंकि व्यसन वाला नरक में जाता है और व्यसन से रहित मर के स्वर्ग में जाता है इस लिये व्यसन से मृत्यु अच्छी है। ५३। कुलीन (अर्थात् पितृ पितामह के क्रम से सेवा करने वाले) शास्त्र के जानने वाले गुरु लक्षण (अर्थात् जिम का फेंका बाण और शूल निशाना को नहीं छोड़ता) शूद्र कुल में उत्पन्न ऐसे मंत्री परीक्षा लेके मात वा आठ राखें। ५४। जो महज काम हैं सो भी अकेले में नहीं हो सकता और राज्य काज बड़ा भारी है सो किस प्रकार से अकेले में सधै। ५५। उन मंत्रियों के साथ नित्य ही मंत्र में चोराने योग्य नहीं ऐसा जो मिलाप बिगाड़ स्थान (अर्थात् दंड कोश पुर राज्य) तिम में हाथी घोड़ा रथ प्यादा इन्हीं को दंड कहते हैं तिम का पापण समुदय (अर्थात् धान्य हिरण्य आदि का उत्पत्ति स्थान) गुप्ति (अर्थात् आत्म रक्षा राज्य रक्षा) मिले धन को सत्पात्र में दान इन सब को चिंतन करें। ५६। सब मंत्रियों के अभिप्राय को पृथक् पृथक् समझ के अथवा एक ही बेर सभी के अभिप्राय को जानकर कार्य में अपने हित को करें। ५७।

सम मन्त्रियों में जो श्रेष्ठ है उस के साथ ह्म गुण से युक्त परम मंत्र को चिंतन करें ह्म गुण कहेंगे । ५८ । विश्वास को पाकर उसी ब्राह्मण को निश्चय करके कार्य का आरंभ करें । ५९ । पवित्र जानने वाले अच्छे प्रकार से द्रव्य का प्राप्त करने वाले सुंदर रीति से परीक्षित ऐसे और भी मंत्री को रखें । ६० । जितने मनुष्यों में अपना अर्थ मिद्ध होवे तितने आलस्य रहित कार्य में दक्ष क्रिया में उत्साह युक्त मनुष्य को रखें । ६१ । उन मन्त्रियों में जो चतुर कुलीन पवित्र निःस्पृह हैं उन को धनोत्पत्ति स्थान में रखें जो उर पाकने हों उन को गृह के भीतर रखें । ६२ । सम शास्त्र के जानने वाला दंगित (अर्थात् अभिप्राय का जनाने वाला जो वचन स्वर आदि) आकार (अर्थात् देह धर्म आदि प्रसन्नता अप्रसन्नता) चेष्टा (अर्थात् हाथ पांज का डोलाना इन सभी का जानने वाला पवित्र दक्ष कुलीन ऐसे को दूत करना । ६३ । स्व में अनुराग महित है पवित्र दक्ष स्मृतिमान् देश काल का जानने वाला अच्छी शरीर वाला उर में रहित बोलने वाला ऐसा दूत राजा को अच्छा है । ६४ । मंत्री के अधीन दंड है दंड के अधीन विनय है राजा के अधीन कोश (अर्थात् खजाना) और राज्य है दूत के अधीन मिलाप और बिगाड़ है ।

प्रज्ञानवस्थितान् । सम्यगर्थसमाहर्तृनमात्यान्सुपरीक्षितान् । ६० । निर्वर्ततास्य यावद्भिरिति कर्तव्यता नृभिः । तादतोऽतंद्रि-
तान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् । ६१ । तेषामर्थे नियुंजीत शूरान्दक्षान् कुलोद्गतान् । शुचीनाकरकर्मान्ते भीरुनन्तर्नि-
वेशने । ६२ । दूतश्चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् । इज्जिताकारचेष्टज्ञं शुचिन्दक्षं कुलोद्गतम् । ६३ । अनुरक्तः शुचिर्दक्षः
स्मृतिमान्देशकालवित् । विपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते । ६४ । अमात्ये दण्ड आद्यतो दण्डे दैनयिकी क्रिया ।
दृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ । ६५ । दूत एव हि संधत्ते भिनत्येव च संहतान् । दूतस्तत्कुरुते वर्मं भिदन्ते येन
वा न वा । ६६ । स विद्यादस्य हृत्यपु निगृहेज्जितचेष्टितैः । आकारमिज्जितश्चेष्टां मृत्युपु च चिकीर्षितम् । ६७ । बुध्वा च
सर्वतन्त्रेण परराजचिकीर्षितम् । तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् । ६८ । जाङ्गलं सस्य सम्यन्मार्गप्रायमनादिलम् ।
रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् । ६९ । धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्षमेव वा । नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य दसे-
त्पुरम् । ७० । सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् । एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते । ७१ । चीण्याद्यान्धाश्रिता-

६५ । दूत ही बिगाड़े को मिलाता है और मिले को बिगाड़ता है जिस से मिलाप और बिगाड़ होता है वह काम दूत ही करता है । ६६ । राजा का दंगित आकार चेष्टा करके मन्त्रियों में राजा के करने योग्य वस्तु को दूत ही जानै । ६७ । दूसरे राजा के मन की बात बूझ के तैसा यत्न करें जिस से अपने राजा को पीड़ा न होरे) ६८ । घोड़ा जल हण वाला बज्रत वायुग्राम अश्व वाला जो देश में जाङ्गल कहाता है धर्म युक्त जन से महित रोग आदि के रहित फल पुण्य लता आदि से मन्डिरा चारो ओर के मनुष्य नष्ट हैं जिस देश में सुलभ है खेतो वाणिज्य आदि धन मिलने की उपाय जिस से ऐसे देश में बस करें । ६९ । चारो ओर जल से रहित रेहो गया वाला चारो ओर जल से बेछित चारो ओर हृत्त वाला चारो ओर लड़ाका मनुष्य वाला चारो ओर पर्वत वाला ये ह्म दुर्ग हैं (अर्थात् किला हैं) ऐसे देश में बस जायता धन दूसरे राजा की सेना न आसके । ७० । तिम में जो चारो ओर पर्वत वाला है उस देश में प्रयत्न करके बस करें अर्थात् जब से वह मिले तब से दूसरे देश से जोती ऊँडा इन सभी में वह बज्रत गुण करके बड़ा है । ७१ । आदि जो तीन हैं सो मृग मृग जल चर इन्हीं करके क्रम से आश्रित हैं पर जो तीन हैं सो बानर मनुष्य । ८० । यदि

करके क्रम से आश्रित हैं (अर्थात् इन्हीं का यह किला है) । ७२ । जिस प्रकार से मृग आदि अपने किला में रहने से शत्रुओं से पीड़ा को नहीं पाते तिथी प्रकार से किला में रहने से राजा शत्रुओं से पीड़ा को नहीं पाता । ७३ । दुर्ग में रहने वाला एक धनुर्धर नीचे रहने वाले सब से और किला में रहने वाला सब नीचे रहने वाले दश हजार से युद्ध कर सकता है इस लिये दुर्ग करने का उपदेश करते हैं । ७४ । आयुध धन धान्य बाहन ब्राह्मण का होकर यंत्र घाम जल इन्हीं करके बह दुर्ग युक्त रहे । ७५ । उस के मध्य में पृथक् पृथक् स्त्री देवता हथियार अग्नि इन्हीं का गृह खाँड़े के युक्त रुभ क्षतु का फल पुष्प रुक्षित देव दर्प वापी आदि ठल घुल वृक्ष सहित अगना गृह बनावे । ७६ । उस गृह में बैठ कर अर्चक कुल में उत्पन्न हृदय प्रिय रूप गुण सहित लक्षण युक्त अपने वर्ण की ओर स्त्री उस से विवाह करे । ७७ । पुनरुद्दिष्ट और वैदिक इन्हीं का वरण करे ये दोनों इस राजा का अग्नि होच आदि गृह के कर्म को करें । ७८ । वज्रत दक्षिणा रुक्षित नाना प्रकार के

स्त्रियों मृगगर्जाश्रयाफराः । चीर्युक्तराणि क्रमशः स्रवंगमनरामराः । ७२ । यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः । तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् । ७३ । एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः । शतं दशसहस्राणि तस्माद्भूमिं विशिष्यते । ७४ । तस्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन बाहनैः । ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यज्ञैः र्यवसेनोदकेन च । ७५ । तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्बृहमात्मनः । गुप्तं सर्वतुल्यं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् । ७६ । तद्ध्यास्यादहेद्वाय्यां सवर्णां लक्षणां न्विताम् । कुले महति संभृतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् । ७७ । पुरोहितश्च कुर्वीत वृणुयादेव च त्विजम् । तेस्य गृह्याणि कर्माणि वुर्युर्देतानि कानि च । ७८ । यजेत राजा क्रतुभिर्विधैराप्तदक्षिणैः । धर्मार्थैश्चैव प्रियो दद्याद्भोगान्धनानि च । ७९ । सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्दलिम् । स्याच्चात्रायपरो लोकवर्तेत पितृदन्तृषु । ८० । अथ्यशान्तिविधानं कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः । तेस्य सदा गण्यदेहेरदृष्टां कार्याणि कुर्वताम् । ८१ । आवृतानां गुरुकुलादिप्राणां पूजको भवेत् । नृपाणामश्रयो ह्येव निधिर्ब्राह्मिभिधीयते । ८२ । न तं स्तेना न चाभिचा हरन्ति न च नश्यति । तस्माद्ब्राह्मणानि धातव्ये ब्राह्मणेष्टयो निधिः । ८३ । न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित् । वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् । ८४ । सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणवुवे । प्राधीते

को करे धर्म के अर्थ ब्राह्मणों के स्त्री गृह शय्या आदि भोग स्वर्ण वस्त्र आदि धन को देवे । ७८ । राज्य से अपना भाग वर्ष भर का लेवे यथार्थ काशी मनुष्यों करके क्रम से कहा है उस को करे मनुष्यों में पिता को नहीं रहें । ८० । तहां तहां एक एक अधिकारी पंडित नाना प्रकार का रखे वे रुभ इस राजा के काम करने वाले को परीक्षें । ८१ । गुरु कुल में पढ़े के पिता के घर अ. ए. ओ. ब्राह्मण है तिनकी पूजा करे वह ब्राह्मण इस राजा का अवयव निधि है । ८२ । ब्राह्मण में स्थापित जो निधि है उन संश्रित उस का चार लोग चोराय नहीं सकते शत्रु लोग हरण नहीं कर सकते इस लिये ऐसे ही स्थान में निधि का स्थापन राजा करे । ८३ । ब्राह्मण के मुख में दंड कहते गया सो न स्त्रवे न व्यथा करे न नष्ट होवे और वह अग्नि होच से बड़ा है । ८४ । ब्राह्मण से भिन्न चरित्र आदि के देने से जितना दे उतना ही मित्र-को चिंतन न

ता है मूर्ख ब्राह्मण के देने से दूना मिलता है एक शाखा पढ़ने वाले के देने से सैकड़ गुण मिलता है समस्त वेद पढ़ने वाले के देने से अमल फल होता है । ८५ । प्रति यह करने वाले की बड़ाई से और श्रद्धा से दान का फल योडा वा ब्रह्म परलोक में मिलता है । ८६ । प्रजा को पालन करत क्षत्रिय धर्म को भ्रण करत युद्ध के अर्थ अपने से सभ उत्तम अधम राजा करके बुलाया जाय तो न फिरै । ८७ । संग्राम में स्थिर रहना प्रजा का पालन करना ब्राह्मण की सेवा करना यह तीनों कर्म राजों का परम कल्याण करने हार है । ८८ । संग्राम में परस्पर मारते हुए न भागने से मरे हुए स्वर्ग में जाते हैं । ८९ । विष से बुझाए हुए शस्त्र ऊपर काठ रहे भीतर लोह रहे जिस में ऐसा जो हथियार कर्ण के आकार फल जिस का है ऐसा जो बाण अग्नि से तपा हुआ जो शस्त्र इन्हों करके रण में शत्रुओं को लड़ाई करते हुए न मारे । ९० ।

शतसाहस्रमनंतं वेदपारगे । ८५ । पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्धधानतयैव च । अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् । ८६ । समोत्तमाधमै रूजा त्वाहृतः पालयन्प्रजाः । न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रधर्ममनुस्मरन् । ८७ । संग्रामेऽनिवर्तित्वम्प्रजानाञ्चैव पालनम् । शुश्रूषा ब्राह्मणानाञ्च राज्ञां श्रेयस्करम्परम् । ८८ । आहवेपु मिथोन्योन्यं जिघांसतो महीक्षितः । युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यात्यपराङ्मुखाः । ८९ । न कूटैरायुधैर्हेन्यायुध्यमानो रणे रिपून् । न कर्णभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वालिततेजसैः । ९० । न च हन्यात्स्थलारुढं न जीवन् कृताञ्चलिम् । न मुक्तकेशन्नासीनं न तथास्मीति वादिनम् । ९१ । न सुप्तम् दिसन्नाहन् न मग्नम् निरायधम् । नायुध्यमानं पश्यंतं न परेण समागतम् । ९२ । नायुधव्यसनप्राप्तस्नातस्नातिपरिश्रितम् । न भीतम् परा- वृत्तं सतान्धर्ममनुस्मरन् । ९३ । यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः । भर्तुर्गृह्णतं किञ्चित्सर्वन्तत्प्रतिपद्यते । ९४ । यज्ञस्य सृजतं किञ्चिदमुं चार्थमुपार्जितम् । भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु । ९५ । रथाग्रवं हस्तिनं हत्तुं धनधान्यं प- शून् स्त्रियः । सर्वद्रव्याणि कुप्यन्व यो यज्जयति तस्य तत् । ९६ । राज्ञश्च ददुरुद्धारमित्येपा वीदकी श्रुतिः । राज्ञा च सर्वदोधे- भ्यो दातव्यमपृथग्जितम् । ९७ । एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः । अस्माहर्मान् च्यवते क्षत्रियोऽनुरणे रिपून् ।

भूमि में स्थित नपुंसक हाथ जोड़ने वाला खुला केश वाला तुमारा हूँ ऐसा कहने वाला और जो बैठा है इन सब को न मारना । ९१ । मृता है कवच (अर्थात् वस्त्र) से रहित है आयुध और युद्ध इन्हों में रहित है देखने वाला दूर के साथ आया है । ९२ । टूटा शस्त्र वाला पुत्र शोक आदि में दुःखी ब्रह्मचार से व्याकुल उरा हुआ युद्ध से भागा हुआ इन सब को मज्जनों के धर्म को भ्रण करत मते न मारना । ९३ । जो उरा हुआ संग्राम में दूर के शस्त्र का घाव पाके भाग के मारा गया है सो अपने स्वामी के पाप का पाता है । ९४ । और उस का जो मुक्त है परलोकार्थ अर्जित उस को उस का स्वामी पाता है । ९५ । रथ घोड़ा शायी क्षात्र धन धान्य पशु स्त्री संपूर्ण द्रव्य कुप्य (अर्थात् सोना चांदी से भिन्न सोसा पीतल आदि) इन सब को जो जीतें भाई पाता है । ९६ । राजा का उद्धार (अर्थात् जीती हुई) द्रव्य में जो उत्तम द्रव्य है सोना चांदी भूमि आदि) देवे यह वेद में कहा है राजा सब योधों को उस वस्तु को देवे जो कि रुमों ने मिल के जीता है । ९७ । निद

रहित नित्य यह घोषी के धर्म को कहा छत्रिय लोग रण में शत्रुओं का नाश करत इस धर्म से रहित न होवें। ८८। जो वस्तु मिली नहीं है उस के मिलने की इच्छा करे और जो मिली है उस का यत्न पूर्वक रक्षा करे रहित वस्तु को बढ़ावे वही वस्तु को सत्पात्र में स्थापन करे। ८९। पुरुषार्थ जो स्वर्ग आदि उस का प्रयो-
जन यही चार प्रकार का है इस को जानै और नित्य ही आलस रहित इस का सेवन करे। १००। अलब्ध वस्तु का इच्छा करे दंड करके लब्ध वस्तु का रक्षा करे
देखने से रहित वस्तु को बढ़ावे व्याज से बढ़ी हुई वस्तु को स्थापन करे दान से। १०१। हाथी घोड़ा आदि मंगाम आदि इन्हीं के सीखने का अभ्यास अस्त्र विद्या
आदि करके अपने पौरोष का प्रकाश मंत्र आचार चेशा आदि का अप्रकाश शत्रु के छिद्र का अनुकरण इन सब को नित्य ही करता रहै। १०२। जिस का दंड नित्य ही
चदित है उस राजा से संपूर्ण जगत डरता है इस लिये सब जीवों को दंड ही करके अपने अधीन करे। १०३। आप माया (अर्थात् कपट) से रहित रहे और शत्रु

८८। अलब्धश्चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्यतः । रक्षितं वर्द्धयेच्चैव दृढं पात्रेषु निःक्षिपेत् । ८९। एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयो-
जनम् । अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः । १००। अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेददेक्षया । रक्षितं वर्द्धयेद्दद्याद्दृढं
दानेन निःक्षिपेत् । १०१। नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः । नित्यं संवृतसंवार्यो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः । १०२।
नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्दिजते जगत् । तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् । १०३। अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन
मायया । बुद्धेतिारिप्रयुक्ताश्च मायान्नित्यं स्वसंवृतः । १०४। नास्य छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु । गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि
रक्षेदिवरमात्मनः । १०५। वक्वच्चिन्तयेदर्शान्सिंहवच्च पराक्रमेत् । दृक्वच्चावलुंपेत् शशवच्चैव निष्पतेत् । १०६। एवं दिज-
यमानस्य यस्य स्यः परिपन्थिनः । तानानयेदशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः । १०७। यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ।
दण्डेनैव प्रसह्येताञ्चनैर्धशमानयेत् । १०८। सामादीनामुपायानाञ्चतुर्णामपि परिहृताः । सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं रा-
ष्ट्राभिदृश्ये । १०९। यथोद्वरति निर्दाता कक्षन्यान्त्यश्च रक्षति । तथा रक्षेन्मृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः । ११०। । मोहा-

के माया को नित्य ही जानै अपने पक्ष की रक्षा यत्न से करे। १०४। इस राजा के छिद्र को दूसरा न जानै और यह दूसरे के छिद्र को जानै कहुआ की नाई अपने
अंग को छिपावे अपने छिद्र की रक्षा करे। १०५। बकुला की नाई अर्थ का चिंतन सिंह की नाई पराक्रम जंझार की नाई शत्रु लुपन (अर्थात् वस्तु को लेना) खरहा
की नाई भागना इन सब को करे। १०६। इस रीति से विजय के प्रवृत्त जो राजा उस का विजय विरोधी जो शत्रु हैं उन सब को साम दान दंड भेद इन्हीं
चारों उपाय से अपने बश करे। १०७। जब विरोधी प्रथम तीन उपाय से न बश होवे तो दंड ही करके हठ से बश करे। १०८। साम आदि चारों उपाय में साम और
दंड इन दोनों को नित्य प्रशमा पंडित लोग करते हैं राज्य की वृद्धि के लिये। १०९। जिस रीति से खेती करने वाला धान्य की रक्षा करता है और वृष आदि
को उखाड़ डारता है तिस प्रकार से राजा राज्य की रक्षा करे और शत्रुओं का नाश करे। ११०। जो राजा मोह से बिना देखे राज्य को पीड़ा देता है सो थोड़े

हो काल में अपना प्राण और राज्य बांधव सहित नाश को पाता है । १११ । जिस रीति में शरीर के कष्ट देने में सब इंद्रियों को कष्ट होता है तिसी रीति में राज्य के पीड़ा में राजा का प्राण पीड़ित होता है । ११२ । राज्य के संग्रहार्थ दस विधान को नित्य ही आचरण करें सुंदर रीति में जिस का राज्य संगृहीत है सो राजा मुख पूर्वक बढ़ता है । ११३ । दूढ़ तीन पांच सब ग्राम के मध्य में रक्षा का स्थान बनावे उस में राज्य संग्रहार्थ अपना अधिकारी पुरुष को राखे । ११४ । एक ग्राम का दश का बीस ग्राम का सो ग्राम का सहस्र ग्राम का स्वामी एक एक को करें । ११५ । ग्राम में दोष उत्पन्न हो तो उस को उस ग्राम का स्वामी धीरे में दश ग्राम के स्वामी को निवेदन करें और वह बीस ग्राम के स्वामी में कहें । ११६ । बीस ग्राम वाला सो ग्राम के स्वामी में कहें और वह सहस्र ग्राम के स्वामी में कहें । ११७ । प्रति दिन ग्राम बामी जनों से लेने के योग्य जो राजा का भाग अन्न पान लकड़ी आदि है उस को ग्राम का स्वामी लेवे । ११८ । कृषभ में एक हल चलावे

द्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्पयत्यनवेक्षया । सोचिराद्भूयते राज्याज्जीविताच्च सवान्धवः । १११ । शरीरकर्पणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा । तथाराज्यामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्पणात् । ११२ । राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् । सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते । ११३ । द्वयोस्त्रयाणां पंचानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् । तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् । ११४ । ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिन्तथा । विंशतीशशतेश्च सहस्रपतिमेव च । ११५ । ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् । शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् । ११६ । विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् । शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् । ११७ । यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः । अन्नपानेन्यनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् । ११८ । दशी कुलन्तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि च । ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् । ११९ । तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि । राज्ञोन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतद्रितः । १२० । नगरे नगरे चैवं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् । उच्चैः स्थानं धीररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् । १२१ । स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् । तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्ग्राह्येषु तच्चरैः । १२२ । राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः । भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः । १२३ । ये कार्यिकेभ्यो-

ऐसे दो हल में जितनी भूमि जाती जाय उस का नाम कुल है उस को जीवन के अर्थ दश ग्राम का स्वामी लेवे पांच कुल को बीस ग्राम का स्वामी लेवे एक मध्यम ग्राम को सो ग्राम का स्वामी लेवे एक पुर को सहस्र ग्राम का स्वामी लेवे अपनी जीविका के लिये । १२० । नगर नगर में संपूर्ण अर्थ का चिन्ता करने वाला एक पुरुष को और एक स्थान बड़ा ऊंचा भयानक रूप को राखें जैसे नक्षत्रों में ग्रह हैं । १२१ । सो पुरुष नगर स्वामी ग्राम स्वामी आदि को बिना प्रयोजन सर्व काल में बल करके देखे और दूतों से सभी के मन की बात को जानें । १२२ । बड़धा राजा के अधिकारी लोग पर द्रव्य के लेने वाले होते हैं और शठ होते हैं इस लिये उन्हों से प्रजा को रक्षा करें । १२३ । पाप चित्त वाले जो अधिकारी लोग प्रजा में द्रव्य के लेते हैं तिन्हों का संपूर्ण द्रव्य को लेकर राज्य से बाहर उन्हों को निकाल दें ।

१२४। राजा के काम को करने वाले जो खी जन और मृत्यु जन हैं तिन्हीं के प्रति दिन कर्म के योग्य जीविका को करे । १२५। गृह का मार्जन करने वाला और जल लाने वाला जो है उस को एक पण नित्य देवे पण का लक्षण आगे कहेंगे और मास में एक द्रोण अन्न देवे कठें मास में दो वस्त्र देवे उत्तम कर्म करने वाले को छ पण नित्य देवे और कठें मास में चार वस्त्र देवे प्रति मास में छ द्रोण धान्य देवे इसी रीति में मध्यम कर्म करने वाले को तीन पण नित्य देवे प्रतिमास में तीन द्रोण धान्य देवे कठें मास में वस्त्र देवे आठ मुट्ठी को किंचित कहते हैं आठ किंचित को पुष्कल कहते हैं चार पुष्कल को आठक कहते हैं चार आठक को द्रोण कहते हैं चार द्रोण को खारी कहते हैं । १२६। कितने माल में लिया है और विक्रय में कितना मिलेगा कितनी दूर में लाया है इस के भोजन में कितना लगा है रक्षा में कितना व्यय भया है कितना इस को लाभ का योग है इन सब को देख कर वनियों में कर को लेवे । १२७। जिस से कर्म करने वाले को और राजा को

र्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः । तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्तवासनम् । १२४ । राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च । प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः । १२५ । पणो देयोऽवकृष्टस्य पटुत्कृष्टस्य वेतनम् । पणमासिकस्तथा छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः । १२६ । क्रयविक्रयमध्वानभुक्तं च सपरिव्ययम् । योगक्षेमं च संप्रेष्य वणिजो दापयेत्करान् । १२७ । यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् । तथावेश्यन्टपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् । १२८ । यथाल्पाल्यमदत्याद्यं वार्याको वत्सपक्षदाः तथाल्पाल्यो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः । १२९ । पंचाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः । धान्यानामष्टमो भागः पष्ठो द्वादश एव वा । १३० । आददीताथ पद्मागंद्रुमां समधुसर्पिषाम् । गन्धौषधिरसानां च पुष्यमूलफलस्य च । १३१ । पच-शाकतृणानां च चर्मणां वेदलस्य च । मृगमयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्रमयस्य च । १३२ । म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् । न च क्षुधास्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् । १३३ । यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सोदति क्षुधा । तस्यापि तत् क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सोदति । १३४ । श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिन्धर्म्यां प्रकल्पयेत् । संरक्षेत्सर्वतथैनं पितापुत्रमिवौर-

फल मिले तैसा देख कर राजा निरंतर कर का कल्पना करे । १२८। जिस रीति में जांक वक्क भंवरा ये सब भोजन के योग्य वस्तु को थोड़ा थोड़ा भोजन करते हैं तिसी रीति में राज्य में वर्ष के कर को थोड़ा थोड़ा राजा लेवे । १२९। पशु और हिरण्य के लाभ में पचासवां भाग को धान्य के कठवां वारहवां भाग को लंबे भूमि का गुण अथगुण जोताई का परिश्रम और बेपरिश्रम को देख कर अंश का बिकल्प करना । १३०। वृक्ष मांस मधु घी गंध औषधी रस पुष्प मूल पक्ष । १३१। पत्र शाक लण चर्म वांस का पाच मट्ठी का पाच पत्थल का पाच इन सबके कठवां भाग को राजा लेवे । १३२। मरता भी हो राजा परंतु वेद पाठी से कर को न लेवे और क्षुधा में पीड़ित वेद पाठी राज्य में न रहे (अर्थात् उन के भोजन की उपाय को राजा करता रहे) । १३३। जिस के राज्य में वेद पाठी भूखों मरता है उस का राज्य झट पट नष्ट हो जाता है । १३४। ब्राह्मणों का पठन और आचरण को जानकर धर्म युक्त जीविका को करे चारों ओर से उस ब्राह्मण की रक्षा करे जैसे

पिता पुत्र की रक्षा करता है । १३५ । राजा से रक्षा को पाकर दिन दिन में जो धर्म ब्राह्मण करता है उसी राजा का द्रव्य राज्य आयुष्य बढ़ता है । १३६ । राज्य में निरुद्ध जनों में थोड़ा भी शाक पत्ता आदि को वर्ष भर में करके निमित्त लेवे । १३७ । रमोड़े करने वाले लोहकार आदि शूद्र देह के क्रम में जीने वाले बाढ़िया आदि इन सभों में प्रतिमास में एक दिन कर्म को करावे इन्हीं का यही कर है । १३८ । प्रजा के खेद में वर्ष का कर न लेवे तो राजा का मूलच्छेद होता है और अति दय्या से अधिक कर लेवे तो भी इस लिये इन दोनों कर्म को न करे तो अपने को और प्रजा को पीड़ित करता है । १३९ । राजा कार्य को देख कर कार्य के अनुसार से कोमल और क्रूर होवे (अर्थात् अच्छा कार्य देख के कोमल होवे और बुरा कार्य देख के कठोर होवे) ऐसा राजा रुम को ममत है । १४० ।

सम । १३५ । संरक्ष्यमाणो राज्ञा यं कुरुते धर्ममन्वहम् । तेनायुर्वर्द्धते राज्ञा द्रविणं राष्ट्रमव च । १३६ । र्यात्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् । व्यवहारेण जीवंतं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् । १३७ । कारुकान शिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मापजीविनः । एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः । १३८ । नाच्छिंद्यादात्मनो मूलं परेषां वातितृष्णया । उच्छिंदनं ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् । १३९ । तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः । तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः । १४० । अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञन्दान्तङ्गलोद्भूतम् । स्थापयेदासने तस्मिन् खिन्नः कार्यक्षणे नृणाम् । १४१ । एवं सर्वं विधायेदमिति कर्तव्यमात्मनः । युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः । १४२ । विक्रोशंत्यो यस्य राष्ट्राद्दीयन्ते दस्युभिः प्रजाः । संपश्यतः समृत्यस्य मृतः स न तु जीवति । १४३ । शत्रियस्य पराधर्मः प्रजानामेव पालनम् । निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते । १४४ । उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः । हुताग्निर्वाङ्मनांश्चार्च्यं प्रविशेत्स शुभां सभाम् । १४५ । तत्र स्थितः प्रजाः सदीः प्रीतिं नयं विसर्जयेत् । विसृज्य च प्रजाः सर्वा मंचयेत्सह मंचिभिः । १४६ । गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रसादं वा रहो गतः । अरण्ये

आप व्यवहार के देखने में खेद में युक्त होवे तो अपने आसन पर मंचियों में मुख्य धर्म का जानने वाला जितेन्द्रिय बुद्धिमान ऐसे ब्राह्मण को स्थापन करे । १४१ । इसी प्रकार में अपने करने के योग्य वस्तु को विधान करके उद्योग महित प्रसाद रहित सभ प्रजा का रक्षा करे । १४२ । मृत्यु महित जिस राजा के देखते ऊपर उस के राज्य में चोरों से लूटे गए प्रजा लोग पुकारते हैं भी राजा जीता नहीं है किंतु मर गया है । १४३ । शत्रियों का पर धर्म प्रजा का पालन ही है शत्रुता कर्म को करने वाला राजा धर्म में युक्त होता है । १४४ । घर रात्रि रहे उठ करके शौच कर एकाग्र चित्त होकर अग्नि होत्र होम करके ब्राह्मणों की पूजा करके सुंदर शुभ सभा में प्रवेश करे । १४५ । सभा में बैठ कर सभ प्रजा के भाषण दर्शन आदि में विसर्जन (अर्थात् विदा) करे तदनंतर मंचियों के साथ मंच को विचारें । १४६ । पर्वत के ऊपर अथवा अंटारी पर एकांत में अथवा बन में बैठकर मंच के भेद करने वाले मनुष्यों में रहित पंचांग मंच को चितन करे मंच के पांचांग को

लिखते हैं कर्मों के आरंभ का उपाय पहला अंग है पुरुष द्रव्य संपत् देश काल इन्हीं का विभाग दूसरा अंग है विनिपात ३ प्रतीकार ४ कार्य मिद्धि ५ ये पांच अंग हैं । १४७ । मंत्रियों को छोड़कर दूसरे मनुष्य मिलके जिस राजा की मंत्र को नहीं जानते हैं सो राजा द्रव्य से हीन हो तो भी संपूर्ण पृथिवी को भोग कर सकता है । १४८ । बौद्धा गूंगा अंधा बहिरा पत्नी दृढ़ (अर्थात् असी वर्ष के ऊपर वय वाला) स्त्री स्नेह व्याधित एक एक अंग से रहित इन सभी के मंत्रकाल में वर्जन करना । १४९ । ये सभी पूर्वजन्म के पाप से ऐसे ऊए हैं इसलिये अपमान का पाके मंत्र का भेद करते हैं और पत्नी दृढ़ स्त्री इन्हीं की बुद्धि स्थिर नहीं रहती इस लिये अभी मंत्रका भेद करते हैं इसी कारण से मंत्र काल में ये सभी न रहने पावें । १५० । मध्यदिन में अथवा अर्द्धरात्रि में अम में रहित निश्चित होकर उन मंत्रियों के साथ अथवा अकेला ही धर्म अर्थ काम को चिंतन करें । १५१ । धर्म अर्थ काम ये सभी परस्पर विरोध रहित हैं इन्हीं का विरोध न होवे ऐसी उपाय का चिंतन धन प्राप्ति के लिये करें और अपने कार्य के मिद्वय कन्या का दान और नीति शास्त्रों के नियम शिष्टा के लिये कुमारों का रक्षण इन्हीं का चिंतन करें । १५२ । दूत का भोजना कार्यका शेष (अर्थात् बाकी) अतः पुरका प्रचार (अर्थात् चलन) प्रणिधि (अर्थात् दूसरे राजों के समाचार का लानेवाला)

निःशलाके वा मंत्रयेदविभावितः । १४७ । यस्य मंत्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः । स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोपि पार्थिवः । १४८ । जडमूकांधवधिरांस्तिर्यग्यानान्वयोतिगान् । स्त्रीस्नेहव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् । १४९ । भिन्दन्त्यवमतामन्त्रं तैर्यग्यानास्तथैव च । स्त्रियथैव विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् । १५० । मध्यं दिनेऽर्द्धरात्रे वा विश्रांतो विगतकमः । चिंतयेद्धर्मकामार्थान्साईन्तैरेक एव वा । १५१ । परस्परविरुद्धानां तेषाञ्च समुपार्जनम् । कन्यानां सम्प्रदानञ्च कुमारानाञ्च रक्षणम् । १५२ । दूतसम्प्रेषणञ्चैव कार्यशेषेऽप्यन्तैरेव च । अतः पुरप्रचारञ्च प्राणिधीनाञ्च चेष्टितम् । १५३ । कृत्स्नञ्चाष्टविध-
कर्म पञ्च वर्गञ्च तत्त्वतः । अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च । १५४ । मध्यमस्य प्रचारञ्च विजिगीषोश्च चेष्टितम् । उदासी

का चेष्टित (अर्थात् मन में करने को जाइय) इन सभी का चिंतन करें । १५३ । प्रजा में कर लेना १ सत्त्यों के धन देना २ इस लोक के अर्थ और पर लोक के अर्थ जो कर्म हैं उसका करना ३ और न करना ४ इस बात की मंत्रियों के आज्ञा देना कार्य मंटेह में आज्ञा देना ५ व्यवहार देखना ६ व्यवहार में जो हानि है उन में शास्त्रों के धन लेना ७ पापियों को प्रायश्चित्त कराना ८ इन आठों वर्गों का चिंतन करना और तत्व में (अर्थात् मिद्धांत में) पंच वर्ग का चिंतन करें सो पंच वर्ग लिखते हैं दूसरे के भीतर की बात को जानने वाला भय रहित बोलने वाला कपट व्यवहार करने वाला ऐसा मनुष्य जीविका के लिये आवे तो उस को दान मान से अपना करके एकांत में बोलें कि जिस का दण्ड कर्म देखो उसी समय हम से कहो १ संन्यास में भ्रष्ट जो हैं उन का दोष तो लोक में विदित है उन को बुद्धि और पवित्रता से युक्त करके बड़त उत्पत्ति वाली मठ में स्थापन करके एकांत में पूर्ववत् बोलें बड़त धान्य उत्पन्न हो जिस भूमि में उस भूमि को जीविका के लिये उस को देवे सो भ्रष्ट संन्यासी दूसरे संन्यासी जो हैं राजा के काम को करने वाले उन्हीं के भोजन और वस्त्र को देवे २ जीविका में रहित खेती करने वाला जो है उसको बुद्धि और शौच से गुप्त करके एकांत में प्रथम की नाई बोलें और अपनी भूमि को खेती करने के लिये देवे ३ जीविका में रहित बगियां

को पूर्ववत् कहिके धन और मान को देके अपने अधीन करके बर्तियों के कर्म को करावे ४ मृइ मुड़ाए हो या जटा रखाए हो और जोविका से रहित हो उस को गुप्त जोविका देकर एकांत में पूर्ववत् कहें और वह कपटी बड़त मुंडित और जटिल शिथों के महित तपस्या करें महीने दो महीने में सब के आगे मूठी भर बैरि आदि को भोजन करें और रात्रि के कोई जानें न इस रीति में भोजन करें और शिथ्य लोग उस की माहात्म्य को प्रकाश करें कि भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल के जानने वाले गुरु जो हैं इस से सब लोग अपने अर्थ को कहेंगे ५ ये पांचो क्रम से कापटिक उदासीन गृह पति वैदिक तापस कहते हैं इन पांचो कर्म का चिंतन करें इन्हों में दूसरे राजा का और अपने मंत्री आदि का प्रेम और अप्रेम जानि के उस की उपाय को करें कि कौन राजा मेल चाहता है कौन बिगाड़ चाहता है वह जानि के तैसी उपाय करें १५४ । अरि बिजिगीषू (अर्थात् जीतने की इच्छा को करने वाला) मध्यम (अर्थात् अरि बिजिगीषू इन दोनों की भूमि के समीप में रहने वाला मिले हुए दोनों राजों के अनुग्रह में और बिगड़े हुए दोनों राजों के विग्रह में समर्थ) और उदासीन (अर्थात् बिजिगीषू मध्यम मिले हुए दोनों के अनुग्रह में और बिगड़े हुए दोनों के विग्रह में समर्थ) इन सभी का चेष्टित (अर्थात् करने की इच्छा को चिंतन करें) १५५ । मंथेय में राजमंडल का

नप्रचारश्च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः । १५५ । एताः प्रकृतयोर्मूलं मण्डलस्य समासतः । अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः । १५६ । अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः । प्रत्येकं कथिता ह्येताः संश्लेषेण द्विसप्ततिः । १५७ । अनन्तरमार्गविद्यादरिसंविनमेव च । अन्तरान्तरं मित्रमुदासीनं तथैव परम् । १५८ । तान्सर्वानभि सन्दध्यात्कामादिभिरुपक्रमैः । व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च । १५९ । संधिश्च विग्रहश्चैव यानमासनमेव च । द्वैधीभावं संश्रयश्च पशुणांश्चिंतयत्सदा । १६० । आसनञ्चैव यानञ्च संधिं विग्रहमेव च । कार्येष्वीश्वर प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च । १६१ । संधिस्तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च

ये चार मूल प्रकृति हैं आठ और हैं सो कहते हैं शत्रु के भूमि के अगाड़ी मित्र अरि मित्र मित्र मित्र अरि मित्र मित्र और पिछाड़ी पार्ष्णिग्राह आक्रंद पार्ष्णिग्राहा मार आक्रंदामार ये आठ पूर्व कथित चारों को मिलकर बारह होते हैं । १५६ । चार मूल प्रकृति आठ शाखा प्रकृति इन्हीं में एक एक के पांच २ द्रव्य प्रकृति हैं तिन पांचों का नाम यह है कि अमात्य (अर्थात् मंत्री) राष्ट्र (अर्थात् राज्य) दुर्ग (अर्थात् किला) अर्थ (अर्थात् धन) दंड सब मिलि मंथेय में ५२ प्रकृति हैं । १५७ । अपने राज्य के समीप का राजा शत्रु है और उस का सेवा करने वाला भी उस के आगे का राजा मित्र है अरि मित्र से जो है सो उदासीन है । १५८ । इन सभी का साम आदि उपाय में से यथा संभव एक एक करके अथवा चारों करके और पौरुष करके नीति बरके बग करना । १५९ । संधि (अर्थात् मेल) विग्रह (अर्थात् बिगाड़) यान (अर्थात् शत्रु के ऊपर यात्रा) आसन (अर्थात् स्थिति) द्वैधीभाव (अर्थात् भेद) संश्रय (अर्थात् बन्धन का आश्रय) इन छवों गुणों को सर्व काल में चिंतन करना । १६० । इन छवों गुणों का कार्य देख कर जहाँ जिस का काम पड़े तहाँ तिस को करें । १६१ । संधि विग्रह यान आसन संश्रय द्वैधयह छवों दे।

प्रकार के हैं तत्काल फल लाभार्थ अथवा भविष्य काल में फल लाभार्थ एक राजा के साथ दूसरे राजा के ऊपर यात्रा करना से समानयान कर्मा संधि है और जो तुम इहाँ जाओ हम वहाँ जायेंगे ऐसा कहके करें से असमानयान कर्मा संधि कहाती है । १६३ । काल में अथवा अकाल में आप किया जो विग्रह से एक भया अथवा मित्र का अपकार देख के अपकार करने वाले से विग्रह किया से दूसरा भया । १६४ । आवश्यक कार्य प्राप्त भये संत अकेलाही यात्रा करें अपनी दृष्टि से एकयान है अथवा मित्र की महायता से यात्रा करें से दूसरा यान है । १६५ । पूर्व जन्म के पाप से अथवा दम जन्म के पाप से हाथी घोड़ा धन आदि क्षीण भया तब दूसरे राजा के ऊपर यात्रा न करना अथवा हाथी घोड़ा धन आदि क्षीण नहीं है और जाने में मित्र की रक्षा नहीं हो सकती तब उसके अर्थ न जाना यह दो प्रकार का आसन है । १६६ । साधन करने योग्य अपने प्रयोजन के सिद्धि के लिये सेनापति सहित हाथी घोड़ा आदि का एकत्र राखना शत्रु नृप की किसी उपद्रव वारणार्थ यह एक दंड

। उभे यानासनेचैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः । १६२ । समानयान कर्मा च विपरीतस्तथैव च । तदा त्वयतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः । १६३ । स्वयं हतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा । मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः । १६४ । एकाकिन-
आत्ययिके कार्ये प्राप्ते यहच्छ्रया । संदत्तस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते । १६५ । क्षीणस्यचैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन च । मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् । १६६ । वनस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये । द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं पातुग्यगुणवेदि-
भिः । १६७ । अर्थसम्पादनार्थञ्च पीड्यमानस्य शत्रुनिः । साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः । १६८ । यदावगच्छेदाय-
त्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः । तदात्ये चाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत् । १६९ । यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् । १७० । यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं वलं स्वकम् । परस्य विपरीतञ्च तदा याया-
द्रिपुष्पति । १७१ । यदा तु स्वात्परिक्षीणा बाहनेन वल्लेन च । तदामोत प्रयत्नेन शनकैस्तान्वयन्तरीन् । १७२ । मन्येतारिं
यदा राजा सर्वथा वलवन्तरम् । तदा द्विधा वलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः । १७३ । यदा परवलानान्तु गमनीयतमो भवेत् ।
तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं वल्लिनं नृपम् । १७४ । निग्रहम्प्रकृतीनाञ्च कुर्याद्योरिवलस्य च । उपसेवेत तन्नित्यं सर्वैरत्नैर्गुरुं

भया और किला में बलाध्यक्ष (अर्थात् संपूर्ण सेना का स्वामी) सहित राजा को स्थापन करना यह दूसरा दंड है । १६७ । शत्रु से पीड़ित हो अथवा शत्रु करिके पीड़ा न होवे हम लिये बलवान राजा का आश्रयण करें यह दो प्रकार का आश्रय है । १६८ । जब युद्ध कालांतर अपनी अधिकारी को ध्रुव जानें और उस काल में घोड़ा धन आदि का पीड़ा देखें तब संधि करें । १६९ । जब अपनी प्रकृति को हृष्ट देखें और अपने को अति ऊँच देखें तब विग्रह करें । १७० । जब अपने सेना को हृष्ट पुष्ट देखें और शत्रु की सेना को विपरीत (अर्थात् हृष्ट पुष्ट न देखें) तब शत्रु के ऊपर यात्रा करें । १७१ । जब बाहन और सेना से क्षीण होवे तब शत्रु को सत्कार (अर्थात् साम उपाय करके अपने स्थान में रहें) । १७२ । जब शत्रु को सर्वथा बलवान जानें तब बल को द्विधा करके (अर्थात् कुकु सेना लेंके आप किला में रहें और कुकु सेना सत्कार को भेजें) अपने कार्य का सिद्ध करें । १७३ । जब जानें कि शत्रु से भागेंगे तब जलदी से बलवान धार्मिक राजा का आश्रयण करें । १७४ । जो

राजा शत्रु की प्रकृति को और सेना को निग्रह करने में समर्थ होवे उस की सेवा नित्यही यत्न में गुरु सेवा की नाई करे । १७५ । जब आश्रय करने में भी कुछ दोष को देखे तब शंका रहित सुंदर युद्ध को करे । १७६ । नीति जानने वाला राजा सभ उपाय में अपने को तैयार करे जिस में अपने से मित्र उदासीन शत्रु ये सब बाधा न होने पावे । १७७ । संपूर्ण कार्य का भूत भविष्य वर्तमान जो दोष गुण है उस को तत्त्व पूर्वक बिचारें । १७८ । ऐसा बिचार करने वाला राजा शत्रुओं में पीड़ित नहीं होता । १७९ । संचेप में सभ नीति का निचोड़ यह है कि शत्रु मित्र उदासीन ये सब बाधा न कर सकें ऐसी उपाय का करे । १८० । जब शत्रु के ऊपर जाने की इच्छा करे तब आगे जो रीति कही जायगी उस रीति में धीरे धीरे शत्रु के पुर में जावे । १८१ । अग्रहन फागुन चैत मास में यात्रा करे । १८२ । और काल में भी जब अपना जय ध्रुव जाने तब विग्रह करके जावे और जब शत्रु के ऊपर दुःख को देखे तब जावे । १८३ । अपने राज्य का रक्षा करके यथा विधि यात्रा समयके

यथा । १७५ । यदि तत्रापि संपश्येदोषं संश्रयकारितम् । सयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् । १७६ । सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः । यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रादासीनशत्रवः । १७७ । आर्यातिं सर्वकार्याणां तदा त्वं च विचारयेत् । अतीतानाञ्च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः । १७८ । आयत्यां गुणदापन्नस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः । अतीते कार्यशेषतः शत्रुभिर्नाभिभूयते । १७९ । यथैनन्नाभिसंदध्युर्मित्रादासीनशत्रवः । तथा सर्वं संविदध्यादेप सामासिको नयः । १८० । यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रस्मृति प्रभुः । तदानेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः । १८१ । मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्याचां महीपतिः । फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथा वल्लभ । १८२ । अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद्भवञ्चयम् । तदा यायाद्विद्युच्चैव व्यसने शोत्स्यते रिपोः । १८३ । कृत्वा विधानं मूले तु याचिकञ्च यथाविधि । उपशृङ्गास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च । १८४ । संशोध्य त्रिविधं मार्गं पद्धिञ्च वलं स्वकम् । सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः । १८५ । शत्रुमेविनि मित्रे च गृहे युक्ततरो भवेत् । गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः । १८६ । दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायान् शकटेन वा । वराहमकराभ्यां च हृत्वा

कर्म (अर्थात् बाह्य आयुध वस्त्र का ग्रहण) को करके शत्रु के गृह में जाके जिस में अपनी स्थिति होवे उस को रुकें जीतने योग्य जो राजा उस के भृत्यों को अपने अधीन करके शत्रु को देश की बार्ता जानने के लिये चार (अर्थात् कापटिक आदि पूर्व कथित) को प्रस्थान कराके । १८४ । तोग प्रकार के जो मार्ग हैं जांगल अनूप आटबिक इन को शोधन करके (अर्थात् सूख गुल्म का कंदन ऊंच नीच भूमि का समीकरण आदि करके) और ह्म प्रकार के जो बल हैं हाथी घोड़ा रथ पियादा सेना कर्म कर इन को आहार औषध मत्कार आदि में शोधन करके मंग्याम में उचित विधान करके शीघ्र शत्रु के पुर में जावे । १८५ । अपने शत्रु का गुप्त सेवा करने वाला जो अपना मित्र है और भृत्य आदि निकल जाय के जो फिर आये हैं इन दोनों में बड़त भाव धानता से रहे क्योंकि इन्हीं का निग्रह वही कठिनाई में होता है । १८६ । दंड शकट बराह मकर गृहो गण्ड इम व्यूह करके गमन करें दंड के आकार व्यूह रचना

दंड ब्यूह कहाता है इसी रीति से गाड़ी के आकार शकट ब्यूह जानना अब दंड ब्यूह को देखते हैं बलाध्यक्ष आगे मध्य में राजा पीछे सेना पति दोनों पार्श्व में हाथी उसके समीप में घोड़ा तब ज्यादा इस रीति से लंबा और चारों ओर से सम यह दंड ब्यूह कहाता है जब चारों ओर से भय उत्पन्न होवे तब इस ब्यूह से जावे आगे पतला मूर्दे की नाई पीछे मोटा शकट ब्यूह कहाता है जब पीछे भय उत्पन्न होवे तब शकट ब्यूह से जावे आगा पीछा पतला होवे बीच में मोटा होवे में बराह ब्यूह कहाता है और यही बीच में बड़त मोटा होवे तो गरुड़ ब्यूह कहावे जब पार्श्व में भय उत्पन्न होवे तब इस दोनों ब्यूह से जावे आगा पीछा मोटा होवे मध्य में पतला होवे मो मकर ब्यूह कहाता है जब आगे पीछे भय उत्पन्न होवे तब इस ब्यूह से जावे चिंतोटी के पांती की नाई आगा पीछा सम होवे और बोर पुरुष आगे रहें मो मूची ब्यूह कहाता है जब आगे भय उत्पन्न होवे तब मूची ब्यूह से जावे । १८७ । जिधर भय की शंका होवे उधर बल का बिस्तार करे समान सेना और मध्य में राजा रहे स्वामी मो पद्म ब्यूह कहाता है इस ब्यूह से पुर से निकल के सर्व काल में राजा गुप्त रहे । १८८ । हाथी १० घोड़ा १० गध १० यादा १० इतने का एक स्वामी करना उसका नाम पत्तिक है १० पत्तिक का एक सेना पति कहाता है १० सेना पति का एक स्वामी बलाध्यक्ष कहाता

वा गरुडेन वा । १८७ । यतश्च भयमाशंकेततो विस्तारयेद्वलम । पद्मेन चैव ब्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् । १८८ । सेना-पतिबलाध्यक्षौ सर्वदिशु निवेशयेत् । यतश्च भयमाशंकेत्याचीन्ताक्कल्पयेदिशम् । १८९ । गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान्स-मन्ततः । स्थाने युद्धे च कुशलानभीरून्विकारिणः । १९० । संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद्वहन । सूच्या वज्रेण चै-वैतान् ब्यूहेन ब्यूह्ययोधयेत् । १९१ । स्यंदनाश्वैस्तमे युद्धं दनूपेनौद्विपैस्तथा । दृष्टगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले । १९२ । कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान् । दीर्घाक्षधूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योधयेत् । १९३ । प्रहर्षयेद्वलं ब्यूह्य तांश्च स-म्यक् परीक्षयेत् । चेष्टांश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि । १९४ । उपरुध्यारिमासीत् राष्ट्रश्चास्योपपीडयेत् । दृपयेच्चैव सततं

हैं सेना पति और बलाध्यक्ष को सर्व दिशा में रखना जिस दिशा से भय की शंका होवे उसका प्राची (अर्थात् पूर्व दिशा) जानिए । १८९ । सके लोगों में युक्त स्थिति भागना युद्ध इस के लिये भेरी पटह शंख आदि बाद्य से संकेत के प्राप्त स्थिति और युद्ध में प्रवीण भय और व्यवहार से रहित ऐसा जो सेना का एक देश सेनापति बालाध्यक्ष उन को दूर सर्व दिशा में शत्रु का प्रवेश वारणार्थ और शत्रु की चेष्टापरिज्ञानार्थ आज्ञा देंगे । १९० । सेना घोड़ी होवे तो मिल करके युद्ध करें और सेना बड़त होवे तो जैसा मन हो तैसा विस्तार करके युद्ध करें मूची ब्यूह वज्र ब्यूह करके युद्ध करें । १९१ । सम भूमि में गध और घोड़ा से जल सहित भूमि में नौका और हाथी से दृष्ट गुल्म आदि में युक्त भूमि में धनुष से स्थल में छात्र तरवार से युद्ध करें । १९२ । कुरुक्षेत्र मत्स्य पञ्चाल शूरसेन इस देश में उत्पन्न जो कंठे बड़े मनुष्य उन को आगे करके युद्ध करें । १९३ । ब्यूह रचना करके सेना को हर्षित करें और उस सेना की भली प्रकार से परीक्षा करें शत्रुओं के साथ युद्ध करते जो अपनी सेना है उस को चेष्टा को जानना कि शत्रुओं के साथ मिले हैं कि नहीं । १९४ । शत्रु किला में रहें अथवा बाहर रहें और युद्ध भी न करता

हो परंतु उस को घेर करके रहे और उस के राज्य को पीड़ा करे घास जल लकड़ी इन में निकाम बस्तु डाल के दूषित करे । १८५ । तडाग बिला अटारी खाई इन को भेदन करे शंका रहित शत्रु को शंकित करे शक्ति ग्रहण करके रात्रि में ठका के शब्द में अधिक चास करे । १८६ । राजा के वंश में भए जो राज्य के लेने की इच्छा करने वाले मंत्री आदि तिन को भेद करके अपने वंश में करे और उन्हीं की चेष्टा को जाने कि बंध भये कि नहीं जय की इच्छा करने वाला राजा उर होड़ के शुभ यह दशा आदि में शुभ फल युक्त देव रहत मते युद्ध को करे । १८७ । साम दान भेद इन्हां में से एक एक करके अथवा संपूर्ण करके शत्रुओं के जीतने के लिये प्रयत्न करे केवल युद्ध ही करके नहीं । १८८ । क्योंकि संग्राम में जय अनित्य है इस लिये युद्ध को वर्जन करना । १८९ । पूर्व कथित तीनों उपाय के असंभव में तिस प्रकार में संयत होके युद्ध को करे जिस प्रकार में जितवे करे । २०० । जीत करके देवता और धर्म युक्त ब्राह्मण इन्हां का पूजन करे जीती जा द्रव्य है मुवर्ण आदि तिस करके और देव ब्राह्मण के अर्थ यह में ने दिया ऐसा उस देश के निवासो जनों के परिहार (अर्थात् जो फेर न लेना) देवे और रुभ

यवसान्द्रोदकेन्यनम् । १८५ । भिक्षाच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा । समवस्कांद्येच्चैनं रात्रौ विचासयेत्तथा । १८६ । उपजप्यानुपजपेद्बुधे तैव च तत्कृतम् । युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः । १८७ । साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् । विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन । १८८ । अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः । पराजयश्च सङ्ग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् । १८९ । चयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसंभवे । तथा युध्येत सम्पन्नो विजयेत रिपून् यथा । २०० । जित्वा संपृजयेद्देवान् ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान् । प्रदद्यात्परिहारांश्च स्थापयेदभयानि च । २०१ । सर्वेपान् विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् । स्थापयेत्तत्र तदंशं कुर्याच्च समयक्रियाम् । २०२ । प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यानि यथोदितान् । रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैस्सह । २०३ । आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम् । अभीक्षितानामर्थानां काले युक्तस्प्रशस्यते । २०४ । सर्वकर्मदमायतं विधाने दैवमानुषे । तयोर्देवमर्चित्यन्तु मानुषे विद्यते क्रिया । २०५ । सह वापि व्रजेद्युक्तः संधिं हत्वा प्रयत्नतः । मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधम्फलम् । २०६ । पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रंदं च मण्डले । मित्रादथाप्यमित्राद्वा दा-

मनुष्यों के अभय देवे । २०१ । संक्षेप में मंत्रों का मत समझ के उस राजा के वंश में जो होवे उस को उसी के स्थान में स्थापित करे और यह तुम करना यह न करना ऐसा उस राजा को और मंत्रियों को कहे । २०२ । तिनका धर्म में युक्त और शास्त्र कथित जो आचार है उस को प्रमाण करे और राजा में प्रधान पुरुष रुहित राजा का पूजन करे । २०३ । यद्यपि अभिलषित द्रव्यों का ग्रहण अप्रियकर है और दान प्रियकर है यह स्वाभाविक है तथापि समय विशेष में दान और ग्रहण प्रशस्त होता है इस लिये उस समय में दान करना । २०४ । पूर्व जन्म में किए जो पाप और पुण्य में दैव कर्म कहता है और इस लोक में किए जो पाप और पुण्य में मानुष कर्म कहता है इन्हीं दोनों कर्म के अधीन करने के योग्य जो सब बस्तु है तिनमें दैव कर्म तो चिंता के योग्य नहीं है मानुष कर्म में विचार है । २०५ । इस रीति में युद्ध करे अथवा वह राजा मित्रता करे तो यात्रा का फल मित्र भूमि हिरण्य इन तीनों बस्तु में एक बस्तु का लाभ होना इस को देखत मते उस के साथ में न करे । २०६ । मण्डल में पार्ष्णिग्राह (अर्थात् पीछे रहने वाला राजा) और आक्रंद (अर्थात् जो संकेत किया है उस में भिक्षा करने वाला जो पार्ष्णिग्राह के उर

के किए हुए संकेत पर रखने वाला) इन दोनों राजा की अपेक्षा करके यात्रा करना और इन्हीं की अपेक्षा बिना यात्रा करने से इन्हीं के देश से गृहीत हो जायगा (अर्थात् ये सब उपद्रव करेंगे) इस लिये अपेक्षा करके यात्रा करने से मित्र से अथवा शत्रु से यात्रा का फल प्राप्त होता है । २०७। वर्तमान काल में दृष्ट और भविष्य काल में वृद्धि युक्त स्थिर मित्र को पाके ऐसा राजा बढ़ता है तथा हिरण्य भूमि को पाने से नहीं बढ़ता । २०८। उपकार और धर्म का जानने वाला स्थिर कार्य का आरंभ करने वाला प्रकृति के प्रिय अनुराग युक्त ऐसा जो मित्र है सो अति प्रशस्त है । २०९। पण्डित महा कुल में उत्पन्न गूर निपुण हाता उपकार का जानने वाला और ऐसा शत्रु, बड़ा कष्ट है (अर्थात् ऐसे का उच्छेद नहीं हो सकता) इस बात को पंडितों ने कहा । २१०। साधु पुरुष विशेष का जानने वाला गूर कुराल, सर्वकाल में बड़त देने वाला ऐसा जो उदासीन राजा है उस को आश्रय करके शत्रु के साथ युद्ध करें । २११। रोग रहित धान्य देने वाली नित्यही पशु को वृद्धि करने वाली ऐसी जो भूमि है उस को भी त्याग करै आत्मा को रक्षा के लिये (अर्थात् ऐसी भूमि त्याग बिना आत्मा रक्षण नहीं हो

चाफलमवाप्त्यात् । २०७ । हिरण्यभूमिसंप्राप्ता पार्थिवो न तथेधते । यथा मित्रं भुवं लब्ध्वा कृशमप्यायन्ति क्षमम् । २०८ । धर्मज्ञश्च कर्तृज्ञश्च तुष्टप्रकृतिमेव च । अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते । २०९ । प्राज्ञं कुलीनं गूरश्च दक्षं दातारमेव च । कृतज्ञं वृत्तिमन्तश्च कष्टमाहररिं बुधाः । २१० । आर्यता पुरुषज्ञानं शैर्यं करुणवेदिता । स्थूललक्ष्यश्च सततमुदासीन गुणोदयः । २११ । क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यस्पशुवृद्धिकरीमपि । परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्यमविचारयत् । २१२ । आपदर्थान्ननं रक्षद्वारान् रक्षेद्वनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेद्वारैरपि धनैरपि । २१३ । सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो मृशम् । संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद्बुधः । २१४ । उपेतारमुपेयश्च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः । एतत्त्वयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये । २१५ । एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः । व्यायाम्यास्तु मध्याह्ने भोक्तुमन्तः पुरं दिशेत् । २१६ । तत्रात्मभूतैः कालैरुद्यैः परिचारकैः । सुपरीक्षितमन्त्राद्यमद्यान्मन्त्रैर्विपापदैः । २१७ । विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् । विषघ्नानि च रत्नानि

सकता तो उस को भी त्याग करना और आत्मा रक्षण करना । २१२ । आपत् के अर्थ धन का रक्षा करै धन करके स्त्री का रक्षा करै स्त्री करके और धन करके आत्मा की रक्षा करै । २१३ । एक ही काल में कांप का चय प्रकृति का कांप मित्र का दुःख ये सब प्राप्त होवे तो मोह न करें किंतु साम आदि जो उपाय हैं उस में से एक एक को अथवा सब को करें । २१४ । उपाय उपाय का करने वाला उपाय से सिद्ध भई जो बस्तु इन तीनों का आश्रय करके अर्थ सिद्धि के लिये यत्न करें । २१५ । इस रीति से इन सब को मन्त्रियों के साथ मंत्र करके तदनंतर व्यायाम (अर्थात् ङुड़) करके मध्याह्न काल में स्नान करके भोजन के लिये अंतः पुर में प्रवेश करें । २१६ । अपने तुल्य काल का जानने वाला द्रव्य आदि के पाने से भेद को न होने देने वाला ऐसा जो परिचारक और विष का नाश करनेहार जो मंत्र इन सब करके परीक्षित जो अन्न है उस को भोजन करें । २१७ । विष और रोग इन दोनों का नाश करने वाली जो बस्तु उस का योग सब द्रव्य में करना और विष के नाश करनेहार जो रत्न हैं उस को सर्व काल में नियम से धारण करना विष सहित अन्न को देखने से चकोर पक्षी का नेत्र झल्ल हो जाता है इस लिये उस को

देख कर परीक्षा करना । २१८ । मुंदर रूप वाली शुद्ध आभरण वाली एकाग्र चित्त वाली परीक्षित जो स्त्री है सो पंखा जल धूप स्पर्श इन सब को करे । २१९ । इस रीति से यान शय्या आसन खान कोश प्रमाण सब अलंकार का यत्र करे । २२० । भोजन करके स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में बिहार करे तदनंतर यथा काल में पुनः कार्य को देखे । २२१ । गहना पहिर के पुनः योधा वाहन शस्त्र आभरण इन सब को देखे । २२२ । सायं काल में संध्यापासन करके अंतःपुर में शस्त्र धारण किए हुए रहस्य कहने वाले और प्रणिधी इन सभी के करने योग्य वस्तु को मुने । २२३ । दूसरे स्थान में जाकर वहां के मनुष्यों के आज्ञा देकर भोजन के किये स्त्रियों के पुनः अंतःपुर में प्रवेश करे । २२४ । फिर थोड़ा भोजन करके वाघ के शब्द से हट होकर सोवे तदुत्तर परिश्रम रतित यथा काल में उठे । २२५ । रोग से रहित राजा ऐसा विधान को करे कदाचित् आप अस्वस्थ होवे तो यह सब कर्म करने के लिये स्त्रियों के आज्ञा देवे । २२६ ॥ * ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा

नियतो धारयेत्सदा । २१८ । परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनेदकधूपनैः । वेपाभरणसंशुद्धाः सृश्रेयुः सुसमाहिताः । २१९ । एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने । खाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च । २२० । भुक्तवान्विहरेच्चैव स्त्रीभिरंतःपुरे सह । विहृत्य तु यथाकालं पुनः कायेणि चिंतयेत् । २२१ । अलंकरणं संपश्येदायुधीयं पुनर्जननम् । वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च । २२२ । संध्याञ्चोपास्य शृण्व्यादन्तर्वेश्मनि शस्त्रमृत् । रहस्याख्यायिनाञ्चैव प्रणिधीनाञ्च चेष्टितम् । २२३ । गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाय तज्जननम् । प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृत्तोन्तःपुरम्पुनः । २२४ । तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्कूर्यधोपैः प्रहर्षितः । संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतः । २२५ । एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः । अस्वस्थः सर्वमेतत्तु मृत्युपु विनियोजयेत् । २२६ ॥ * ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां राजधर्मो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ * ॥ ७ ॥ * व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैस्सह पार्थिवः । मंचजैर्मंचिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् । १ । तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् । विनीतवेपाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्याणाम् । २ । प्रत्यहं देशदृष्ट्यं शास्त्रदृष्ट्यं हेतुभिः । अष्टादशसु मार्गेषु निवृत्तानि पृथक् पृथक् । ३ । तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः । सम्भूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च । ४ । वे-

टीकायां कुल्लुक भट्ट व्याख्यानसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कल्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्मशास्त्रि गुलजार शर्म पण्डित कृतायां सप्तमोऽध्यायः । * ॥ ७ ॥ * व्यवहारों के दर्शन की दृष्टि करत सते राजा मंच के जानने व लं मंची और ब्राह्मणों के महितनखवेष होकर सभा में प्रवेश करे । १। सभा में बैठ कर अथवा खड़ा हो कर दक्षिण हाथ उठाकर नमस्त्रेण आभरण करके कार्य वालों के कार्य को देखे । २। शृणु लेना आदि आठ प्रकार के व्यवहार मार्ग में पठित जो कार्य उस को देश जाति कुल व्यवहार से जाने गए और शास्त्र से जाने गए मासी दिव्य (अर्थात् मांगंध) आदि जो कारण इन्हें करके दृष्टक् दृष्टक् प्रति दिन बिचार करे । ३ । अब आठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग को गनाते हैं शृणादान १ निक्षेप २ अस्वामि विक्रय ३ सम्भूय समुत्थान ४ दत्तानपाकर्म ५ वेतनादान ६ सम्बिद्वितिक्रम ७ क्रयविक्रयानुशय ८ स्वामि पालविवाद ९ मोमाविवाद १० दाण्डपाकृत्य ११ शकृपाकृत्य १२ सोय १३ साहस १४ स्त्री संयहण १५ स्त्री पुंघर्म १६ विभाग

१७ धृतसमाह्वय १८ ये अठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग के पद इस ग्रंथ में व्यवहार की मर्यादा में हैं । ७ । राजा नित्य धर्म के आश्रित होकर इस अठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग में ब्रह्म कार्य करने वाले मनुष्यों के कार्य विशेष का निर्णय करे । ८ । जब राजा आप कार्य को न देखें तब पण्डित ब्राह्मण को कार्य देखने की आज्ञा देवें । ९ । वह ब्राह्मण श्रेष्ठ सभा में बैठ कर अथवा खड़ा हो कर तीन मंत्रियों के साथ इस राजा के कार्य को देखें । १० । जिस देश में एक ब्राह्मण पण्डित बेद पढ़े ऊपर तीन ब्राह्मण सहित व्यवहार दर्शन में राजा की आज्ञा पाकर बैठते हैं उस सभा को ब्रह्मा की सभा जानना । ११ । अधर्म से वेधा ऊँचा धर्म जिस सभा में रहता है और सभासद उस अधर्म का हृद नही कर सकते वे सब बेधे गए हैं । १२ । सभा में जाना नहीं जाके यथार्थ वालना जान के न बोलें अथवा बिरुद्ध बोलें तो पापी होता है । १३ । जहाँ अधर्म करके धर्म और असत्य करके सत्य मारा जाता है और देखने वाले उस को निवारण नहीं करते तहाँ सभासद मारे

तनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः । क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः । ५ । सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके । स्तेयश्च साहसश्चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च । ६ । स्त्रीपुन्यर्मा विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च । पदान्यष्टाद्रुशैतानि व्यवहारस्थिताविह । ७ । एष स्थानेषु भूयिष्ठं विवादश्चरतां नृणाम् । धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् । ८ । यदा स्वयन् कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् । तदा नियुज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने । ९ । सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव चिभिर्हृतः । सभामेव प्रविश्याग्न्यामासीनः स्थित एव वा । १० । यस्मिन्देहे निषीदन्ति विप्रा वेदाविदस्त्रयः । राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान् ब्रह्मणस्तां सभाम्विदुः । ११ । धर्मो विद्वत्त्वधर्मेण सभां दत्तौपतिष्ठते । शल्यश्चास्य न कृन्तन्ति विद्वास्तत्र सभासदः । १२ । सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समंजसम् । अजुवन विव्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी । १३ । यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यचानृतेन च । हन्यते प्रेक्ष्यमाणानां हतास्तत्र सभासदः । १४ । धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः । तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधोत् । १५ । वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् । वृषलन्तम्विदुर्देवास्तस्माद्धर्मम्लोपयेत् । १६ । एक एव सुहृद्धर्मो निधनेष्यनयाति यः । शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्वि गच्छति । १७ । पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति । पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति । १८ । राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः । एनो गच्छति कर्तारं निन्दाहो

गए हैं । १४ । मारा गया धर्म मारता है रक्षा किया गया धर्म रक्षा करता है मारा गया धर्म हमको न मारे इस लिये धर्म को न मारना । १५ । भगवान् जो धर्म है उस को वृष कहते हैं उस का जो अलं (अर्थात् बारण) करता है उस को देवता लोग वृषल करते हैं इस लिये धर्म का लोप न करना । १६ । एक धर्म मित्र है क्योंकि मरे पीके भी जाता है कदाचित् कहे कि मरे पीके तो अधर्म भी जाता है तो अभी मित्र है तिस का समाधान यह है कि धर्म दृष्ट फल देने के लिये जाता है और अधर्म अनिष्ट फल देने के लिये जाता है तो जो दृष्ट फल देने के लिये जाय सोई मित्र कहाता है और भार्या पुत्र आदि तो शरीर के साथ ही अदर्शन को प्राप्त होते हैं इस लिये पुत्र आदि में स्नेह की अपेक्षा करके धर्म को न मारना । १७ । अधर्म का चार भाग होता है एक एक भाग को कर्ता साक्षी सभासद राजा ये चारो पाते हैं । १८ । जहाँ निन्दा के योग्य पुरुष निन्दा को पाता है तहाँ राजा पाप से रहित होता है और सभासद पाप से छूट जाते हैं अधर्म

करने वाला ही को पाप लगता है । १८ । जो जाति ही करके ब्राह्मण हो ब्राह्मण का कर्म कुछ भी न करता हो मृत्यु हो तो भी वह राजा के धर्म का उपदेश करने वाला होता है शूद्र तो कैसा भी होता नहीं होता । २० । जिस राजा के धर्म का विचार शूद्र करता है तिम राजा का राज्य उस के देखने ही कांक्षित मंफंभी गो की नाई कष्ट को पाता है । २१ । जिस राज्य में वज्रत शूद्र और नास्तिक हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नहीं हैं वह संपूर्ण राज्य दुर्भिक्ष व्याधि में पीड़ित होकर झट पट नाश को पाता है । २२ । धर्म सभा में बैठ कर वसों में अंग को ठाँप कर एकाग्र चित्त हो कर लोक पालों को प्रणाम करके कार्य देखने का आरम्भ करें । २३ । प्रजा का रक्षण और उत्कर्ष ये दोनों इस लोक के अर्थ और अनर्थ हैं इस को वृद्धि के और परलोक के अर्थ धर्म अधर्म हैं इस का केवल अनुग्राह करके जिस में विरोध न होवे तिस नीति से वर्ण क्रम करके कार्य वालों के कार्य को देखें । २४ । बाहर के जो चिह्न हैं स्वर वर्ण इंगित आकार चिह्न इन करके मनुष्यों के भीतर के भाव को जानें । २५ । आकार इंगित गति चेष्टा भाषित और नेत्र मुख का विकार इन सभों में भीतर का मन जाना जाता है । २६ । अनाथ बालक के धन को

यत्र निन्दते । १८ । जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणव्रतः । धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथञ्चन । २० । यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मं विवेचनम् । तस्य सोदति तद्राष्ट्रस्यङ्गे गौरिव पश्यतः । २१ । यद्राज्यं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् । विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् । २२ । धर्मासनमधिष्ठाय संवीतांगः समाहितः । प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् । २३ । अर्थानर्थानुभौ वृद्धा धर्माधर्मौ च केवलौ । वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्थिणाम् । २४ । बाह्यैर्विभावयन्निष्कर्षावमन्तर्गतं नृणाम् । स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च । २५ । आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च । नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेन्तर्गतं मनः । २६ । बालदायादिकं रिक्तं तावद्राजानुपालयेत् । यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः । २७ । जीवन्तीनां तु तामां ये तद्वरेयुः स्ववांधवाः । ताञ्छिव्याचौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः । २८ । प्रणष्टस्वामिकं रिक्तं राजान्यब्दन्निधापयेत् । अर्वाक् च्यब्दाद्वरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् । ३० । समेदमिति यो ब्रूयात्सोनुयोजो यथाविधि । संवाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद्व्यमर्हति । ३१ । अवेद्यानो नष्टस्य देशं कालञ्च तत्त्वतः । वर्णं रूपस्यमाणञ्च तत्समन्दण्डम्

उस के चाचा आदि लेंते हैं तो उस धन को तब तक राजा पालन करें जब तक उस का समा वर्तन कर्म न होवे और लड़काई न धीरे । २७ । बंधा अपुत्रा कुल में निकाली ऊँई पतिव्रता विधवा गौगिणी इन सभों के धन को भी रक्षा करें अन्याय से कोई लेंने न पावे । २८ । इन सभ को जोते ऊँछ और इन्हों के धन को इन्हों के बांधव लोग हरण करें तो धर्म करने वाला राजा उस धन के लेंने वाले को चौर दण्ड की नाई शासन करें । २८ । जिस धन का स्वामी कोई नहीं है उस धन को तीन वर्ष तक राजा अपने यहाँ स्थापन करें और तीन वर्ष के भीतर उस धन का स्वामी आवै तो उस को पावे और तीन वर्ष के ऊपर राजा लेंवे । ३० । जो मनुष्य राजा के समीप जाके कहें कि यह वस्तु हमारी है तो उस पर अनुयाग (अर्थात् प्रश्न) करें उस वस्तु का स्वरूप संख्या आदि में जब ठीक ठीक उस का स्वरूप संख्या आदि को कहें तो उस वस्तु को पावे । ३१ । जब नष्ट वस्तु का देश काल वर्ण रूप परिमाण को न कहें तो उस वस्तु के समान दण्ड को

पावे । ३२ । उम वस्तु का कूठां दशवां बारहवां भाग को रक्षण निमित्त राजा लेवे मज्जनों के धर्म को स्मरण करत संते अंश का विकल्प जो है सो धनी का निर्गुणत मगुणता देखके करना । ३३ । गिरी ऊई वस्तु मिले तो उम की रक्षा अच्छे लोगों में करा के राखे और उम के चोरा ने वाले को राजा हाथी से घात करावे । ३४ । भूमि में गड़ी ऊई वस्तु का निधि कहते हैं उम को राजा के समीप ले जावे और दृमरा आके कोई कहै कि यह हमारी है और रूप मंख्या करके उसी वस्तु है तैसी सिद्ध करे तो उम वस्तु को वह पावे और उम वस्तु का कूठां अंश अथवा बारहवें अंश को राजा लेवे अंश विकल्प तो निधि स्वामी का गुण अगुण देख के करना गुणी निधि स्वामी में बारहवां भाग और अगुणी निधि स्वामी में कूठां भाग लेवे । ३५ । झूठ बोलें तो अपने द्रव्य का आठवां भाग दण्ड देवे अथवा उसी निधि का छोड़ा भाग के समान अपने गृह में दण्ड देवे अंश विकल्प तो पूर्व कथित की नाई जानना । ३६ । पण्डित ब्राह्मण निधि को पावे तो वह संपूर्ण लेवे कोंकि वह रुभ

हेति । ३२ । आददीताथ पडभागं प्रणष्टाधिगतानृपः । दशमं द्वादशस्वापि सतान्धर्ममनुस्मरन् । ३३ । प्रणष्टाधिगतं द्रव्यन्ति-
ष्टेद्युक्तैरधिष्ठितम् । यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् राजेभेन घातयेत् । ३४ । ममायन्ति यो व्रूयान्निधिं सत्येन मानवः । तस्या-
ददीत पडभागं राजा द्वादशमेव वा । ३५ । अनृतं तु वदन्दण्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् । तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं
कलाम् । ३६ । विद्वांस्तु ब्राह्मणो हृष्टा पूर्वोपनिहितं निधिम । अशेषतोप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः । ३७ । । यं तु पश्ये-
न्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ । तस्माद्भिजेभ्यो दत्वा इमं कौशे प्रवेशयेत् । ३८ । निधीनां तु पुराणानां धातुनामेव च
क्षितौ । अर्द्धभागं ग्रहणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः । ३९ । दातव्यं सर्ववर्णभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतन्यनम् । राजा तदुपयुज्यान्-
श्रौरस्याप्नोति किल्बिषम् । ४० । जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्माश्च धर्मवित् । समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् । ४१ ।
स्वानि कर्माणि कुर्वाणादृरे संतोपि मानवाः । प्रिया भवंति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः । ४२ । नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा
नाप्यस्य पूरुषः । न च प्रापितमन्येन ग्रसेतार्थं कथञ्च न । ४३ । यथा नयत्यस्य क पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् । नयेत्तथानुमानेन

का स्वामी है । ३७ । राजा निधि को आप पावे तो उम में से आधा ब्राह्मणों को देके आधा अपने कोश (अर्थात् रजामा) में राखे । ३८ । निधि के आधा भाग को ग्रहण करने वाला राजा है कोंकि रक्षण करता है और रुभ का अधिपति (अर्थात् स्वामी है) । ३९ । चोर की चोराई वस्तु को लेकर सर्व वर्णों को राजा देवे (अर्थात् जिस की चोरी गई है उम को देवे) कदाचित् उम वस्तु को आप भोग करे तो चोर के पाप को पावे । ४० । जाति देश बर्णियां आदि बल इन रुभों के धर्मों को देख कर अपने धर्म को स्थापन करे । ४१ । अपने कर्म को करत संते दूर भी रहने वाले मरुय लोक के तिय होते हैं । ४२ । राजा और राजा के पुरुष आप से कार्य को उत्पादन न करें अर्थात् (अर्थात् अपने कार्य को निवेदन करने वाला) प्रत्यर्था (अर्थात् अर्थी के बहन को खंडन करने वाला) इन दोनों करके आवेदित जा काय है उम को धन आदि लाभ करके उपेक्षा न करें (अर्थात् उम का विचार करें) । ४३ । जिस प्रकार से व्याधा रुधिर के गिरने में मृग के स्थान

को पाता है (अर्थात् एक बाण से बेधा हुआ भागता मृग जिस मार्ग में जाता है उस मार्ग में उस के शरीर में गिरे हुए रुधिर को देख कर यह बात जानी गई कि मृग इधर गया है) तिस प्रकार से अनुमान करके धर्म के पद को राजा प्राप्त करे । ४४ । व्यवहार विधि में स्थित होकर राजा मृत्यु अर्थ आत्मा माची देश रूप काल इन सब को देखे । ४५ । धार्मिक मज्जन द्विजाति लोगों ने जिस धर्म का आचरण किया है उस देश कुल जाति के अविरोद्ध जो धर्म है उस धर्म का कल्पना करे । ४६ । उत्तमर्ण (अर्थात् ऋण देने वाला) ने अपने दिये हुए धन को पाने के लिये राजा के समीप निवेदन किया और साखी लेख आदि प्रमाण में उस धन को मिट्टी किया तब उस के धन को अधमर्ण (अर्थात् ऋण लेने वाला) से दिला देवे । ४७ । जिस जिस उपाय में उत्तमर्ण अपने धन को पावे उस उस उपाय में अधमर्ण का ग्रहण करके राजा धन को दिलावे । ४८ । धर्म (अर्थात् मृत्यु वचन) व्यवहार (अर्थात् साखी लेख आदि) कुल (अर्थात् बहाना) आचरित (अर्थात् उपवास) बल इन पाँचों उपायों में से कोई एक करके अपने दिये हुए धन को ग्रहण करे । ४९ । जो उत्तमर्ण अपने धन को अधमर्ण से उपाय करके लेता

धर्मस्य नृपतिः पदम् । ४४ । सत्यमर्थश्च सम्पश्येदात्मानमथ साक्षिणः । देशं रूपं च कालञ्च व्यवहारविधौ स्थितः । ४५ । सद्भिराचरितं यत्स्याद्धारमिकैश्च द्विजातिभिः । तद्देशकुलजातीनामविरोद्धं प्रकल्पयेत् । ४६ । अधमर्णार्थमिध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः । दापयेन्निकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् । ४७ । यैर्यैरुपायैर्यैस्त्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः । तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् । ४८ । धर्मेण व्यवहारेण ललेनाचरितेन च । प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन वलेन च । ४९ । यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णाधमर्णिकात् । न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्त्यनम् । ५० । अर्थेपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् । दापयेन्निकस्यार्थं दण्डलेणं च शक्तिः । ५१ । अपन्त्वेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि । अभियोक्ता दिग्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशत् । ५२ । अदेष्ट्यं यद्यदिशति निर्दिश्यापन्ते च यः । यथाधरात्तरानर्थान विगीतान्नाववृध्यते । ५३ । अपदिश्यापदेश्यश्च पुनर्यत्स्वपधावति । सम्यक् प्रणिहितश्चार्थस्पृष्टस्सन्नाभिनन्दति । ५४ । असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः । निरुच्यमानस्प्रश्नश्च

है उस को राजा मना न करे कि हमारे यहां निवेदन क्यों नहीं किया आपही उपाय में लेता है । ५० । अर्थों के निवेदित अर्थों को प्रत्यर्थी ने अपलाप किया (अर्थात् हम नहीं जानते ऐसा कहा) और अर्थी ने साखी लेख आदि में विभावित (अर्थात् मिट्टी किया) तो राजा उत्तमर्ण के धन को अधमर्ण से दिलाय देवे और यथा शक्ति दण्ड भी अधमर्ण को देवे । ५१ । सभा में न्याय के देखने वाले ने अधमर्ण से कहा कि उत्तमर्ण का धन दो और अधमर्ण ने कहा कि हम नहीं लीला है तब उत्तमर्ण साखी लेख आदि साधन को कथन करे । ५२ । जिस देश में अधमर्ण की स्थिति मर्यादा नहीं रहती है और उस देश का कथन उत्तमर्ण करके फिर कहे कि इस देश को मैंने नहीं कहा और पृथक् पर विरोद्ध बोलता है । ५३ । जो कहता है कि मेरे हाथ में चार ऐसा भूखण्ड इसने लिया ऐसा बरतके फिर कहता है कि मेरे लड़के के हाथ में लिया ऐसा बोलता है और जिस बात को प्राप्तिवाक (अर्थात् न्याय का दण्ड देने वाला) पृथक् है और उस बात को समाधान नहीं करता । ५४ । जो एकान्त में मामियों के साथ संभाषण करता है और भाषा (अर्थात् बदला) के सिर करने के लिये प्राप्तिवाक पृथक् है और

उस का उत्तर नहीं देता है और जो एक देश में गित नहीं रहता है । ५५ । जो बालो रोमा प्राङ्गिवाक ने पूका और बोलता नहीं है और जो कथित अर्थ को साक्षी लेख आदि में मिद्ध नहीं करता है और जो पूर्वापर बात को नहीं जानता है यं सभ अपने अर्थ की हानि को पाते हैं । ५६ । साक्षी हमारे हैं ऐसा कहके और साक्षियों को लाता नहीं इन कारणों में न्याय का देखने वाला उस को हीन जानें (अर्थात् हार जावेगा ऐसा जानें) । ५७ । जो अर्थी राज स्थान में कहके और भाषा समय में (अर्थात् प्रत्यर्थी के समीप में) कुछ बोलता नहीं है सो व्यवहार का गौरवलाघव (अर्थात् बड़ा छोटा) बिचार के बध और दण्ड के योग्य होता है । ५८ । जो प्रत्यर्थी जितने धन का अपलाप करता है और जो अर्थी जितने धन का मिथ्या बोलता है दोनों अधर्म के जानने वाले हैं उस धन में दृना दण्ड दोनों को राजा देवे । ५९ । जब प्रत्यर्थी सभा में आके कहें कि हमने इस का धन नहीं लिया है तब अर्थी प्राङ्गिवाक के समीप तीन से ऊपर साक्षियों करके अपने दिष्ट हण धनको मिद्ध करें । ६० । व्यवहार में धनी लोगों को जैसा साक्षी करना चाहिए और जैसा वह साक्षी लोग सत्य बोलें उस सभ को हम क-

नेच्छेद्यथापि निष्पतेत् । ५५ । वृहीत्युक्तं न वृयादुक्तं च न विभावयेत् । न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थ्यात्स हीयते । ५६ । साक्षिणस्सन्ति मेत्युक्ता दिशेत्युक्ता दिशेन्न यः । धर्मस्थः कारणैरतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् । ५७ । अभियोक्ता न चेद्द्वयादध्यो-
दंश्च धर्मतः । न चेत्त्रिपक्षात्प्रवृत्ताधर्मस्मृतिपराजितः । ५८ । यो यावन्निन्दुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् । तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्दिगुणन्दमम् । ५९ । पृष्टोपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैपिणा । व्यवसैसाक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ । ६० । यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः । तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतञ्च तैः । ६१ । गृहिणः पुत्रिणो मौलाः श्वविटशूद्रयोऽनयः । अर्थ्युक्तास्साक्ष्यमर्हन्ति नये केचिदनापदि । ६२ । आप्तास्सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्य्येषु साक्षिणः । सर्वधर्म-
विदो लुब्धा विपरीतास्तु वर्जयेत् । ६३ । नार्थमस्वन्धिना नाप्तानसहायानवैरिणः । न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दृपिताः । ६४ । न साक्षी नृपतिः कार्य्यो न कारुककुशीलवौ । न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न सङ्गेभ्यो विनिर्गतः । ६५ । ना-
ध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् । न दृष्टो न शिश्नो नान्त्यो न विकलेन्द्रियः । ६६ । नातो न मत्तो नोन्मत्तो न

हेतुः । ४१ । आपत्काल के अभाव में जो कोई मिले सो साक्षी हो ऐसा न चाहिए किंतु गृहस्थ पुत्रवान् कुलीन क्षत्रिय वैश्य गृहद्रु जाति अर्थी के किए हुए साक्षी भाव के योग्य होते हैं । ६२ । सभ वर्णों के कार्य में यथार्थ ब्रह्मा सभ धर्म के जानने वाले लाभ में रहित जो पुरुष हैं सो साक्षी पना के योग्य होते हैं और विपरीत (अर्थात् पूर्व कथित गुण में हीन) को वर्जन करना । ६३ । जिस अर्थ का विवाद है उस अर्थ संबंधी जो पुरुष हैं और मित्र सहाय करने वाला शत्रु जिस का दोष सर्वत्र देखने में आया है सो और व्याधि में दूषित दोष में युक्त । ६४ । राजा रसोई करने वाला नट आदि वेद पढ़ने वाला ब्रह्मचारी आदि संग में जो निकाला गया है । ६५ । दाम कृत्कर्म करने वाला विरुद्ध कर्म करने वाला असी वर्ष के ऊपर बय वाला मोलह वर्ष में नीचे बय वाला अकंसा पाण्डाल आदि कोई इन्द्रिय में रहित । ६६ । दूषित मदनीय द्रव्य (अर्थात् भांग गांजा आदि) में मत्त उन्मत्त (अर्थात् भूत आदि की उपद्रव सहित)

बुधा दया से पीड़ित परिश्रम से युक्त काम से दुःखित क्रोध सहित चोर इन सब को साक्षी न करना । ६७ । स्त्रियों की सखी स्त्री लोग होवें दिनों की साक्षी सदुष दिज लोग होवें गूढ़ों की साक्षी गूढ़ होवें अंत्य (अर्थात् चाण्डाल आदि) की साक्षी अन्त्य होवें । ६८ । बादी अथवा प्रतिवादी के अर्थ को जा जाने से साक्षी होवें बन् और गृह इन्हीं के भतर और शरीर का नाश यह तीन कार्य में गण लेने में जैसा साक्षी का लक्षण कहा है उस का आदर न करना । ६९ । उन तीनों कार्य में पूर्व कथित साक्षी के असंभव में स्त्री बाल वृद्ध शिष्य बंधु दास मजुरा ये सब भी साक्षी होवें । ७० । बाल वृद्ध आतुर उन्मत्त आदि इन्हीं की बाणी को स्थिर न जानना । ७१ । साहस (अर्थात् बल करके काम करना) चोरी स्त्री का ग्रहण बाणों से कठोर बोलना लाठी आदि से मारना इन कर्मों में साक्षियों की परीक्षा न करना जहां साक्षियों की दो मत हैं तहां बल्लत साक्षि के बचन को ग्रहण करना संख्या में सम हैं और दो मत हैं तब गुणियों के

क्षुत्पृष्णोपपीडितः । न अमार्तो न कामार्तो न क्रुद्धो नापि तत्करः । ६७ । स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशाः द्विजाः । शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामंत्यानामंत्ययोनयः । ६८ । अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् । अन्तर्वेषमन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये । ६९ । स्त्रियाप्यसंभवे कार्यम्बालेन स्थविरेण वा । शिष्येण बंधुना वापि दासेन मृतके न वा । ७० । बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा । जानीयादस्थिराम्बाचमुत्सिक्तमनसान्तथा । ७१ । साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च । वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः । ७२ । बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः । समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजेत्तमान् । ७३ । समशदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति । तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यान् ह्रीयते । ७४ । साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्थसंसदि । श्रवाङ्गरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च ह्रीयते । ७५ । यच्चानिवद्दोषीक्षेत शृणुयाद्वापि किञ्चन । पृष्टस्तत्रापि तद्व्याचय्या दृष्टं यथा श्रुतम् । ७६ । एकोऽप्युच्यन्तु साक्षी स्याद्व्यग्रशुच्योऽपि न स्त्रियः । स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येपि ये वृताः । ७७ । स्वभावेनैव यद्व्युत्तद्वाह्यं व्यावहारिकम् । अतो यदन्यद्विब्रूयुर्द्विर्मार्थान्तदपार्थकम् । ७८ ।

वाक्य को ग्रहण करना गुणियों के दो मत में ब्राह्मण जो हो उस के वाक्य को ग्रहण करना । ७३ । साक्षात् देखने से और सुनने से साक्ष्य (अर्थात् साक्षी पना) सिद्ध होता है उस में सत्य बोलने से धर्म अर्थ की हानी नहीं होती । ७४ । भले लोगों के मभा में सुनने से और देखने से बिरुद्ध जो बोलता है सो अधोमुख (अर्थात् नीचे मुख) होकर नरक में जाता है और परलोक में स्वर्ग में जाति को पाता है । ७५ । तुम इस में सा हो ऐसा कहा नहीं है और व्यवहार को तो उस ने देखा है और वह मुलाके पूछा जाय तो जैसा देखा है और सुना है तैसा कहै । ७६ । लाभ रहित एक पुरुष भी साक्षी होता है और पवित्रता सहित बल्लत स्त्री साक्षी नहीं होती क्योंकि स्त्रियों की बुद्धि स्थिर नहीं है और जो दोष से युक्त हैं सो भी साक्षी नहीं हो सकते । ७७ । अपने स्वभाव से जो कथन करें उस बात को ग्रहण करना और जो मिलाखाने से कहै वह बात व्यर्थ है (अर्थात् उस को ग्रहण न करना) । ७८ । मभा के मध्य में अर्थ और प्रत्यर्थ के

समीप आगे जा विधान कहेंगे उस हीति से सांख्य करत (अर्थात् साम उपाय से) साक्षियों को प्राड्विवाक (अर्थात् राजा की आज्ञा को पाके व्यवहार देखने वाला ब्राह्मण) नियोग करें (अर्थात् आज्ञा दें) । ७८ । अर्थ को अथवा प्रत्यर्थी के इस कार्य में परस्पर चेष्टित जो जानते हो सो सत्य करके कहो इस कार्य में तुम्हारा साक्षी पना है । ८० । साक्षी पना में सत्य बोलत मंते उत्कृष्ट लोक (अर्थात् ब्रह्म लोक आदि) को पाता है और इस लोक में बड़ी कीर्ति को पाता है और बाणी उस की चतुर्मुख से पूजित होती है । ८१ । साक्षी पना में झूठ बोलत मंते दूसरे को बश हो कर सो जन्मपर्यंत बरुण के पाश से अत्यंत बांधा जाता है इस लिये सत्य बोलना । ८२ । सत्य करके साक्षी पवित्र होता है और उस का धर्म बढ़ता है इस लिये सर्व वर्ण में साक्षी को सत्य ही बोलना चाहिए । ८३ । आत्मा की गति और साक्षी आत्मा ही है इस लिये सब मनुष्यों में श्रेष्ठ अपनी आत्मा है उस का अपमान मत करो । ८४ । पाप करने वाले यह मानते हैं कि हम को

सभांतः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिमन्निधौ । प्राड्विवाको नियुञ्जीत विधिनानेन सांत्वयन् । ७८ । यद्वयोरनयोर्वेत्य कार्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः । तद्भूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता । ८० । सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानामप्रोति पुष्कलान् । इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेवा ब्रह्मपूजिता । ८१ । साक्ष्येऽनृतं वदन् पाशैर्वध्यते वारुणैर्मृशम् । विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेद्वतम् । ८२ । सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते । तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः । ८३ । आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः । मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् । ८४ । मन्यन्ते वै पापकृता न कश्चित्पश्यतीति नः । तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवांतरपूरुषः । ८५ । यौभूमिरापोहृदयच्चन्द्रार्काग्निमयमानिलाः । राशिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञात्सर्वदेहिनाम् । ८६ । देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेद्वतं द्विजान् । उद्बुधान्प्राङ्मुखान्वा पृथक्त्वे वै शुचिः शुचीन् । ८७ । ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् । गोबीजकांचनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः । ८८ । ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीवालघातिनः । मित्रद्रुहः कृतघ्नश्च ते ते सर्वदेतो मृषा । ८९ । जन्मप्रमृति र्यात्किंचित्पुण्यं भद्रं त्वया कृतम् । तत्ते

काई नहीं देखता है और उस पाप को देवता और अपने भीतर रहने वाला पुरुष देखता है । ८५ । स्वर्ग भूमि जल हृदय में स्थित जीव चंद्र सूर्य अग्नि हम बायु राशि देवता मंड्या धर्म ये सब मनुष्यों के कर्म को जानने वाले हैं । ८६ । देवता और ब्राह्मण के समीप में ब्राह्मण सचिय वैश्य जो साक्षी हैं सो पवित्र होकर पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख हो उन से पूर्वाह्न काल में (अर्थात् दिन के प्रथम भाग में) पवित्र होकर प्राड्विवाक पूछें । ८७ । कहो ऐसा ब्राह्मण से पूछें सत्य कहो ऐसा सचिय से पूछें गो बीज सुवर्ण इस की बागंध दंको वैश्य से पूछें (अर्थात् असत्य बोलोगे तो तुमारा बैल बीया सोना ये सब नष्ट हो जायंगे) असत्य बोलने से संपूर्ण पातक करके युक्त होगे ऐसा कहिके शूद्र से पूछें । ८८ । ब्राह्मण स्त्री बालक दन को मारने वाला मित्र से द्रोह करने वाला उपकार को न मानने वाला दन सभा का जो लोक होता है सो लोक झूठ बोलने से तुम को होवे । ८९ । जन्म भर जो पुण्य तुम ने की है सो सब झूठ

बोलने से कुत्तों को मिले । ८० । अपने को तम ऐसा मानते हो कि मैं अकेला हूँ सो न मानो क्योंकि नित्य ही तुम्हारे हृदय में पाप पुण्य का देखने वाला मुनि स्थित है । ८१ । सूर्य का पुत्र यम देवता तुम्हारे हृदय में स्थित हैं उसके साथ जब तुम्हारा बिवाद न हो तो गंगा और कुरुक्षेत्र इसमें मति जाओ (अर्थात् झूठ बोलने से यम के साथ बिवाद होगा तो उसके छोड़ने के लिये गंगा और कुरुक्षेत्र इसमें जाना पड़ेगा) । ८२ । जो साक्षी झूठ बोलने में गंगा मूढ़ मुड़ाए ऊँ चूधा पियाम से पीत अंधा ऊँ भिक्षा के अर्थ कपाल लिए ऊँ शत्रु कुल में जावे । ८३ । धर्म के निश्चय में पृष्ठा गया और झूठ बोला सो पापी नोच शिर किए बद्ध अंधेरा से युक्त नरक में जाता है । ८४ । जो सभा में जाके घूस लेकर असत्य बोलता है सो मनुष्य अंध की नाई कांटा सहित मकली को भोजन करता है । ८५ । जिस मनुष्य को बोलत मते चेचक्ष (अर्थात् अंतरात्मा) शंका का नहीं करता है उस से श्रेष्ठ लोक में दूसरे पुरुष की देवता लोग

सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयात्स्वमन्यथा । ८० । एकोहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे । नित्यं स्थितस्ते हृदये पुण्यपापेक्षिता मुनिः । ८१ । यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदिस्थितः । तेन चेद्विवादस्ते मागंगां माकुरुन गमः । ८२ । नमो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षत्पिपासितः । अंधः शत्रुकुलङ्गच्छेद्यः साध्यमन्तं वदेत् । ८३ । अवाक् शिरास्तमस्यन्धेः किल्बिषी नरकं व्रजेत् । यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्ठः सन धर्मनिश्चये । ८४ । अन्यो मत्स्यानि वा श्राति स नरः कंटकैः सह । यो भापतेऽर्थवकल्पमप्रत्यक्षं सभाङ्गतः । ८५ । यस्य विद्वान् हि वदतः श्रेष्ठो नाभि शंकते । तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेन्यं पुरुषं विदुः । ८६ । यावतो बांधवान् यस्मिन् हन्ति साश्येन्त वदन् । तावतः संख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः । ८७ । पञ्च पश्वन्ते हन्ति दश हन्ति गवा नृते । शतमश्वान्ते हन्ति सहस्रं पुरुषान्ते । ८८ । हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेन वदन् । सर्वं भूम्यन्ते हन्ति मास्रभूम्यन्तं वदीः । ८९ । अप्सु भूमिर्वदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने । अजेपु चैव रत्नेषु सर्वेऽप्यमयेषु च । १०० । एतान्दोषानवेश्य त्वं सर्वानन्तभाषणे । यथा श्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद । १०१ । गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथा कारकुशी-

नहीं जानते । ८६ । जिस कर्म में झूठ बोलने से जितने बांधवों का साक्षी मारता है सो सभ से क्षत्रि लोगो क्रम से सुनो । ८७ । पशु के निमित्त गौ के निमित्त घोड़ा के निमित्त पुरुष के निमित्त साक्षी कर्म में झूठ बोलने में क्रम करके पाँच दश सो महान् बांधवों का नाश करता है । ८८ । सुवर्ण के निमित्त साक्षी कर्म में असत्य बोलने से जो भए हैं और जो हाँगे बांधव तिन सभ का और भूमि के निमित्त साक्षी कर्म में असत्य बोलने से सभ का नाश करता है इस लिए भूमि के निमित्त साक्षी कर्म में कभी असत्य न बोलना । ८९ । जल स्त्री संभोग (अर्थात् मैथुन कर्म) सोती आदि वैदूर्य मणि आदि इसमें भूमि की नाई जानना । १०० । झूठ बोलने में इतने दोषों को देखकर जैसा देखा हो और जैसा सुना हो तैसा वे मंहरत बोलें । १०१ । जीविका के लिये

गौ का रक्षा करने वाला बनियां का काम करने वाला पराई रमाई बनाने वाला गाने वाला दास कर्म करने वाला ब्याज लेने वाला जो ब्राह्मण है उनको शूद्र की भाँति आचरण करना । १०२ । जान करके दया से झूठ बोलने में स्वर्ग से नहीं गिरता और उसकी बाणों को देवता को बाणों से मनु आदि बोलते हैं । १०३ । जहाँ सच बोलने से शूद्र वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण इन्हीं का बध होता है तहाँ झूठ बोलना यह मृत्यु से भी श्रेष्ठ है । १०४ । झूठ बोल के गृह में आच के सरस्वती देवता की याग करै तब झूठ बोलने के पाप से छूटै । १०५ । अथवा कृष्णण्ड मंत्र यजुर्वेद में है उस करके किम्बा उदुत्तमं आपोहिष्ठा इन दोनों मंत्रों में से कोई एक मंत्र करके घों को अग्नि में विधि पूर्वक होम करै । १०६ । ऋण आदि व्यवहार में रोग रक्षित साक्षी खंड महीना के भीतर वृक्ष न करै तो जिस व्यवहार में साक्षी मया है उस व्यवहार के ऋण को और उस के दशवां अंश दण्ड को देवै । १०७ । न्याय सभा में बोल के साक्षी आया और सात दिन के भीतर रोग अग्निदाह

लवान् । प्रेष्यान्वाहुपिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् । १०२ । तद्वदन् धर्मतोर्येषु जानन्नप्यन्यथा नरः । न स्वर्गात् च्यवते लोक-
काहैर्वो वाचं वदन्ति ताम् । १०३ । शूद्रविटक्षत्रविप्राणां यत्रतीक्ष्णो भवेद्धयः । तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्यादिशिष्यते । १०४ ।
वाग्देवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् । अन्ततस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिम्यराम । १०५ । कृष्णण्डैर्वापि जुहुयाद्दृतमग्नौ
यथाविधि । उदितृचा वा वारुण्या नृचेनाद्देवतेन वा । १०६ । चिपक्षादवृक्साश्चमृणादिषु नरोगदः । तदणं प्राप्नुयात्स-
वेन्द्रश्वन्धश्च सर्वतः । १०७ । यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाकस्य साक्षिणः । रोगोभिर्घातिमरणमृणन्दाप्यो दमश्च सः । १०८ ।
असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः । अविन्दंस्तत्त्वतस्सत्यं शपथेनापि लंभयेत् । १०९ । महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं
शपथाः कृताः । वशिष्ठश्चापि शपथं शपेपै यवने नृपे । ११० । न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेप्यर्थे नरो दुधः । दृथाह शपथं कु-
र्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति । १११ । कामिनीषु विवाहेषु गवाम्भक्ष्ये तथेत्थने । ब्राह्मणाभ्युपपन्नौ च शपथे नास्तिपातकम् । ११२ ।
सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः । गोवाजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः । ११३ । अग्निम्वा हारयेदेनमसु चैनं निम-

जातिमरण इस में से कोई एक उस को हो तो वह साक्षी उस ऋण को और उस का दशवां अंश दण्ड को देवै । १०८ । जिस व्यवहार में साक्षी नहीं है और विचार से सिद्धांत बात को न्याय देखने वाला पा नहीं सकता तब आगे जो कहेंगे शपथ (अर्थात् सौगंध) से सिद्धांत बात को जानै । १०९ । देवता और बड़े ऋषियों ने कार्य के लिये शपथ की है वशिष्ठ ने भी विश्वा मित्र के विवाद में पियवन का बेटा मुदामा नाम राजा के समीप शपथ किया इस स्थान में ऐसी कथा है विश्वा मित्र ने कहा कि वशिष्ठ ने हमारा सब लड़का भक्षण किया तब अपना शुद्धि के लिये वशिष्ठ ने शपथ किया । ११० । ऐसे अर्थ में भी मूर्ख लोग झूठ शपथ न करै झूठ शपथ करने से इस लोक में पर लोक में गष्ट होता है । १११ । स्त्री विवाह गौ के भोजन की वस्तु दधन ब्राह्मण की रक्षा इन में झूठ शपथ करने से पातक नहीं होता । ११२ । सत्य वाहन आयुध गौ वीज मुवर्ण संपूर्ण पातक इन्हीं करके क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों को शपथ देवै । ११३ । अग्नि को उठावे अथवा जल में

बुधावे स्त्री के पुत्र के मल्लक को कृत्रावे । ११४ । जिस को अग्नि न जलावे और जल न उतिरावे और जो जलदी दुःख को न पावे उस को शपथ में शुद्ध जानना । ११५ । पूर्व काल में छोटे भाई ने वत्स ऋषी को अपवाद लगाया और वत्स ऋषी ने अपने शुद्धता के लिये अग्नि को उठाया परंतु सभ जगत का शुभाशुभ कर्म को जानने वाला अग्नि ने एक रोम भी दहन न किया । ११६ । जो जो कार्य साक्षियों के झूठ बोलने में सिद्ध हो गया है और पीछे में साक्षियों का झूठ बोलना जाना गया तो सिद्ध ऊआ कर्ष अमिद्ध हो जाता है । ११७ । लोभ मोह भय मित्रता काम क्रोध अज्ञान बालक पना इन सभ कारणों में से कोई एक कारण करके साक्षी झूठ बोलते हैं । ११८ । उन को दंड विशेष क्रम से करेंगे । ११९ । लोभ मोह भय मित्रता इन में झूठ बोलने में साक्षियों के क्रम में मूढस पण पूर्व साहस मध्यम साहस दो पूर्व साहस चार दंड देंगे । १२० । काम क्रोध अज्ञान बालक पना इन में झूठ बोलने में साक्षियों के क्रम में पूर्व साहस दश उत्तम साहस तीन दो और एक सौ

अयेत । पुत्रदारस्य वाप्येन शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् । ११४ । यमिहो न दहत्यग्निरापोनोन्मज्जयंति च । न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः । ११५ । वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा । नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः । ११६ । यस्मिन् यस्मिन् विवादे तु कैटसाक्ष्यं कृतं भवेत् । तत्तत्कार्येन्निवर्तेत कृतञ्चाप्यकृतं भवेत् । ११७ । लोभान्मोहाद्व्यान्मैत्रा-त्कामात्क्रोधात्तथैव च । अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते । ११८ । एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् । तस्य दंड-विशेषास्तु प्रवक्ष्याम्यनपूर्वशः । ११९ । लोभात्सहस्रं दंडस्तु माहात्पूर्वं तु साहसम् । भयाद्वं मध्यमौ दण्डौ भैवात्पूर्वच्चतुर्गुणम् । १२० । कामादशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् । अज्ञानाद्देशते पूर्णं वानिश्चाच्छतमेव तु । १२१ । एतानाहुः कैटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान्मनोविभिः । धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च । १२२ । कैटसाक्ष्यं तु कुर्वाणान् चीन्वर्णान्धामिके नृपः । प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् । १२३ । दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् । त्रिपु वर्णेषु यानि स्यु-रक्षन्तो ब्राह्मणो व्रजेत् । १२४ । उपस्थमुदरञ्जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् । चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनन्देहस्तथैव च । १२५ । अनुवंधश्च विज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः । सारापराधी चालोका दण्डदंडेषु पातयेत् । १२६ । अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं

पण दंड देवे । १२१ । अधर्म के रोकने के लिये धर्म के स्थापन के लिये साक्षियों के झूठ बोलने में इन दंडों को पंडितों ने कहा । १२२ । त्रिविध वैश्य शूद्र ये तीनों वर्ण साक्षी होके झूठ बोलें तो धार्मिक राजा पूर्व कथित दंड का देके अपने राज्य से बाहर निकाल देवे और ब्राह्मण को तो पूर्व कथित अपराध में अपने राज्य से धन सहित निकाल देवे । १२३ । त्रिविध वैश्य शूद्र इन तीनों वर्णों के दण्ड का दश स्थान स्वयंभू के पुत्र मनु ने कहा और ब्राह्मण तो शरीर दण्ड रहित गमन करे । १२४ । उपस्थ उदर जिह्वा हस्त पाद नेत्र नासिका कर्ण धन देह ये दश दण्ड के स्थान हैं । १२५ । बारंबार इच्छा में अपराध करना याम बन आदि अपराध स्थान दिन रात अपराध काल अपराध करने वाले का धन शरीर आदि सामर्थ्य बड़ा कोटा अपराध इन सभ को देख कर दण्ड के योग्य मनुष्यों को दण्ड देंगे । १२६ । लोक में यश (अर्थात् जीते हुए प्रसिद्ध) कीर्ति (अर्थात् मरे हुए प्रसिद्ध) इन दोनों का नाश करने वाला और परलोक में स्वर्ग का नाश करने वाला अधर्म दण्ड है इस लिए

अधर्म दण्ड न करना । १२७ । दण्ड को योग्य नहीं है उस को दण्ड देने से और के योग्य है उस को न दण्ड देने से राजा बड़ा अपयश को पाता है और नरक में जाता ही है । १२८ । प्रथम तो तुम ने अच्छा नहीं किया फिर ऐसा न करना ऐसी बाणी में डराना यह पहिला दण्ड है तदनन्तर धिक्कार तुम को है बड़ा पापी है मूर्ख है तेरा जीमा न होवे ऐसा कहना यह दूसरा दण्ड है धन दण्ड तीसरा है बध (अर्थात् अंगच्छेद) दण्ड चौथा है । १२९ । केवल बध करके भी अपराधी को बश न कर सकें तो चारों दंड देवे । १३० । लोक को सुंदर व्यवहार के लिये ताम्बा रूपा मोमा की संज्ञा कही है उस संपूर्ण को मैं कहूंगा । १३१ । झरोखा में मूर्ख की किरण आने से जो तिनका देख पड़ता है वह सभ प्रमाण में पहिला कहाता है उस को चमरेण कहते हैं । १३२ । आठ चमरेण का १ लिप्ता २ लिप्ता की १ राई २ राई का १ पोली सरसो होता है । १३३ । छ सरसों का १ मध्यम यव ३ यव की १ रत्ती ५ रत्ती का १ मासा १६ मासा का १ सुवर्ण होता है । १३४ । चार सुवर्ण का

कीर्तिनाशनम् । अस्वर्ग्यश्च परचापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । १२७ । अदंष्ट्रान्दण्डयन् राजा दंष्ट्राश्चैवाप्यदंडयन् । अयशो महदाप्नोति नरकश्चैव गच्छति । १२८ । वाग्दण्डमप्यथमक्षुर्याद्भिद्दण्डन्तदनन्तरम् । तृतीयन्धनदण्डन्तु वधदण्डमतः परम् । १२९ । वधेनापि यदा त्वेतान्निगृहीतुं न शक्नुयात् । तदैष सर्वमप्येतत्प्रयुजीत चतुष्टयम् । १३० । लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि । ताम्बरूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः । १३१ । जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । प्रथमन्त-
त्प्रमाणानान्त्रसरेणुमुच्यते । १३२ । त्रसरेणुवोष्टौ विज्ञेया लिष्टौका परिमाणतः । ता राजसर्पपस्तिस्सस्ते त्रयो गौरसर्पपः । १३३ । सर्पपाः षडयवो मध्यस्त्रियवं त्वेक कृष्णलम् । पञ्च कृष्णलको मापस्ते सुवर्णस्तु षोडश । १३४ । पलं सुवर्णश्चत्वारः पलानि धरणन्दश । द्वे कृष्णले समष्टते विज्ञेयो रौप्यमापकः । १३५ । ते षोडशस्याञ्चरणम्पुराणश्चैव राजतः । कार्पापणं तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्पिकः पणः । १३६ । धरणानि दशज्ञेयः शतमानस्तु राजतः । चतुः सौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः । १३७ । पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः । मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रान्त्येव चोत्तमः । १३८ । ऋणेदेये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति । अपन्त्वे तद्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् । १३९ । वसिष्ठविहिताम्बुद्धिन्त्यजेदित्तविवाह्विनीम् । अशीति भागं

१ पञ्च १० पल का १ धरण होता है अब रूपे का मान कहते हैं २ रत्ती का १ मासा । १३५ । सोलह मासा का १ धरण और उस को पुराण भी कहते हैं १६ मासा ताम्बा को तापिक और कार्पिक पण कहते हैं । १३६ । दश धरण का १ शतमान ४ सुवर्ण का १ निष्क होता है । १३७ । अठ्ठाई सौ पण का प्रथम साहस ५०० पण का मध्यम साहस १००० पण का उत्तम साहस होता है । १३८ । सभा में जाके अधमर्ण (अर्थात् ऋणी) कहै कि उत्तमर्ण (अर्थात् धनी) का ऋण हम को देना है तो १०० पण पोछे ५ पण दण्ड देवे और सभा में जाके अपलाप करै (अर्थात् हम नहीं धराते ऐसा कहै) और उत्तमर्ण साकी और पणबे अपना देना सिद्ध करै तो १०० पण पोछे १० पण दण्ड अधमर्ण के ऊपर होवे यह मनु जी की आज्ञा है । १३९ । द्रव्य के बढ़ाने वाली वशिष्ठ ऋषिजी की कही उरी जो दृढ़ि

(अर्थात् व्याज) उस को त्याग करै सो रुपैया का अस्सीवां भाग (अर्थात् १।) रुपैया लेवै महीना भर में १०० रुपैया पीके व्याज लेने वाला । १४०। अथवा सज्जनों के धर्म को स्मरण करत संते १००) रुपैया पीके २) रुपैया महीना भर में लेवै इस के लेने से द्रव्य पापी नहीं होता । १४१। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों से क्रम करके मासा भर में १००) रुपैया पीके २) ४) ५) रुपैया लेवै । १४२। उपकार करने वाला (अर्थात् भूमि गो दास आदि) जो आधि (अर्थात् बंधक) उस में व्याज न लेना बंधक को बज्रत दिन भया और जितना द्रव्य लिया रहा बंधक रख के उस का दृढा धन को बंधक के फल से धनी ने पाया तब उस बंधक को किसी को दे डाले या बँच डाले सो नहीं जब तक मूल धन को न पावै तब तक उस के फल का भोग करता रहे । १४३। बल से बंधक को भोग न करै और करै तो व्याज को छोड़ देवे अथवा जिस की वस्तु है उस को मूल्य देके संतुष्ट करै ऐसा न करै तो बंधक का चोर होता है । १४४। बंधक और उपनिधि (अर्थात् प्रीति करके भोग के अर्थ अर्पित जो द्रव्य) इस दोनों को जब स्वामी मांगे तब देना चाहिए यह न कहना कि इतने दिन में देंगे और बज्रत दिन

यत्कृतीयास्मादाहर्षुषिकः शते । १४० । द्विकं शतं वा यत्कृतीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् । द्विकं शतं हि यत्कृतानो न भवत्यर्थकिस्त्विषी । १४१ । द्विकं चिकञ्चतुष्कञ्च पञ्चकञ्च शतं समम् । मासस्य दृष्टिं यत्कृतीयादणानामनुपूर्वशः । १४२ । नत्वेवाधौ सोपकारे कै-
सीर्दी दृष्टिमाप्नुयात् । नचाधेः कालसंरोधान्निसर्गोस्ति न विक्रयः । १४३ । न भोक्तव्यो वलादाधिर्भुञ्जानो दृष्टिमुत्सृजेत् ।
मूल्यान तोषयेच्चैनमाधित्तेनोन्यथा भवेत् । १४४ । आधिशेषोपनिधिशेषौ न कालात्ययमर्हतः । अवहार्यौ भवेतान्तौ दीर्घ-
कालमवस्थितौ । १४५ । संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन । धेनुरुष्ट्रोवहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयज्यते । १४६ । य-
त्किञ्चिद्वशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी । भुज्यमानं परैस्तूष्णीन् स तत्त्वम्यमर्हति । १४७ । अजडश्चेदपौगण्डो विपये चास्य
भुज्यते । भग्नस्तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्वनमर्हति । १४८ । आधिः सीमा वालधनं निःशेषोपनिधिः स्त्रियः । राजस्वं श्रावियस्त्वञ्च
न भोगेन प्रणश्यति । १४९ । यः स्वामिनाननुज्ञातमाधिं भुंक्ते विचक्षणः । तेनाह्वदृष्टिर्भोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः । १५० ।

के रहने से यह दोनों नष्ट नहीं होते मूल स्वामी का स्वामित्व (अर्थात् मालिक पना) बने रहता है जिस के यहां है उस का स्वामित्व उस में नहीं रहता । १४५। धेनु ऊंट घोड़ा बैल इन सब को स्वामी के प्रेम से कोई भोग करै तो जिस के वह सब है उस का स्वामित्व नष्ट नहीं होता । १४६। धनी देखता है और मना नहीं करता उस की वस्तु को दूसरा मनुष्य दश वर्ष तक भोग किया फेर धनी उस वस्तु को नहीं पा सकता । १४७। क्योंकि भोग करने वाला कहता है कि यह जड़ (अर्थात् वौरहा) और बालक नहीं है इस के देखते ऊण भोग किया है तब वह उत्तर कृष्ण नहीं दे सकता इन लिये व्यवहार से वह भंग होता है भोग करने वाला उस द्रव्य को पाता है । १४८। बंधक सोमा बालक का धन निक्षेप (अर्थात् देखाके गिनाके कोई वस्तु को किसी के यहां स्थापन किया) उपनिधि (अर्थात् देखाए गिनाए बिना ढांपी वस्तु को किसी के यहां स्थापित किया) स्त्री (अर्थात् दासी) राजा और देव पाठी इन दोनों का धन ये सब भोग करने से नष्ट नहीं होते । १४९। बंधक के स्वामी की आज्ञा बिना जो बंधक को भोग करै सो व्याज को छोड़ देवे उस भोग का दही प्रायश्चित्त है । १५०। एक ही घर

लेने में जितना मूल है उतना ही व्याज मिलता है और अन्न वृक्ष का फल ऊर्णा आदि सोम वृषभ आदि इन सभी का व्याज मूल का योगना के ऊपर नहीं मिलता । १५१ । शास्त्र कथित वृद्धि से अधिक वृद्धि नहीं होती और जिस वर्ष में जो वृद्धि लेने को कहा है उस का उलट पलट करने से कुत्सित पथ कहाता है और उधार देके फेर मांगा उस ने न दिया तो उस दिन से ले कर (५) रुपैया सैकड़ा वृद्धि लेना । १५२ । एक दो तीन मास बीते पीछे गणना करके एक ही बेर वृद्धि देना इस रीति से नियम करके वर्ष पर्यंत धनी वृद्धि ग्रहण करै और वर्ष के बीते नियम की वृद्धि को न लेवे और शास्त्र से अकथित वृद्धि को न लेवे और लेवे तो अधर्म होता है चक्र वृद्धि काल वृद्धि कारिता कादिका इन वृद्धियों को न लेवे क्योंकि ये सब शास्त्र कथित नहीं हैं शरीर के क्रोध से जो फल मिलता है सो कारिका वृद्धि कहाती है जैसे वृद्धि देने के निमित्त गो बैल को बंधक रक्खा उस के दोहन बाहन से वृद्धि को दिया मास में लेना वह कालिका कहाती है वृद्धि की वृद्धि चक्र वृद्धि कहाती है ऋणी ने आप से जो किया सो कारिता कहाती है तिस में चक्र वृद्धि तो स्वरूपै करके निन्दित है द्विगुण से अधिक लेने

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यन्नात्येति सकृदाहता । धान्ये सदेलेवे वाच्ये नातिक्रामति पञ्चताम् । १५१ । कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिध्यति । कुसीदपथमाहुस्तम्यच्चकं शतमर्हति । १५२ । नातिसाम्बत्सरीं वृद्धिं न चाहृष्टां पुनर्हरेत् । चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या । १५३ । ऋणन्दातुमशक्नो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियाम् । स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् । १५४ । अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यमपरिवर्तयेत् । यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीन्दातुमर्हति । १५५ । चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः । अति क्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् । १५६ । समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः । स्थापयन्ति तु ताम्बुद्धिं सा तत्राधिगममप्यति । १५७ । यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः । अदर्शयन्स तन्तस्य प्रयच्छास्त्रधनादणम् । १५८ । प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकञ्च यत् । दण्डशुल्कावशेषञ्च न पुत्रो दातुमर्हति । १५९ । दर्शन-

से काल वृद्धि निन्दित है अधिक दोहन बाहन से कारिका निन्दित है ऋणी ने आपत्काल में धनी से पीड़ा पाके किया सो कारिता कहाती है सो भी निन्दित है । १५१ । ऋण देने को समर्थ नहीं है और फेर पत्र लिखने को चाहै तो वृद्धि देके पुनः पत्र लिखे । १५२ । जब वृद्धि देने की भी सामर्थ्य न हो तो वृद्धि सहित मूल का दूसरा पत्र लिखे । १५३ । गाड़ी आदि का भाड़ा करने वाला जो पुरुष सो गाड़ी वान जो कहै उस को न करै तो उस के संपूर्ण फल को नहीं पाता जैसे इहाँ से बनारस तक दूतना बोझा पड़ंचा देंगे हम को दूतना देना अथवा एक मास बोझा ठेविंगे दूतना देना ऐसा कहके काम करने लगा और पूर्व कथित को संपूर्ण न किया तो संपूर्ण भाड़ा को न पावेगा । १५४ । समुद्र के मार्ग में कुशल देश काल अर्थ इस के देखने वाले जो वृद्धि स्थापन करै उस स्थान में सोई लेना । १५५ । जो मनुष्य जिस मनुष्य का प्रतिभू (अर्थात् जामिन) होवे देखाने के लिये और देखने के समय में देखाता नहीं सो अपने धन से उस ऋण को देवे । १५६ । जामिनी वृथा दान (अर्थात् धूर्त भाट माल इन सब को दिया) इन करके जो ऋण है और पास मद्य दण्ड इन्हीं का शेष शुल्क (अर्थात् हजार) का शेष ये सब पिता के किए हैं तो पुत्र उस को न देवे । १५७ । दान प्रतिभू (अर्थात् माल जामिन) उस के मरे पीछे उस का पुत्र उस ऋण को देवे जिस ऋण के देने के निमित्त उस का

पिता जामिन हुआ है और दर्शन प्रतिभू के मरे पीछे उस का पुत्र देखने के समय में ऋणी को न देखावे । १६० । दर्शन प्रतिभू प्रत्यय प्रतिभू (अर्थात् विश्राम जामिन कि हमारे विश्राम में इस को धन देा तुम को न ठगेगा भले मनुष्य का पुत्र है अश्वत्थाम इस को है बहुत अस्त्र को उत्पन्न करने वाली भूमि इस को है इन दोनों ऋणी से जितना ऋण देना है उतना धन को लेके प्रतिभू ऊए हों और पीछे मर गए तो धनी अपना धन लेने की इच्छा किस कारण से करें प्रतिभू तो मर गया और उन के पुत्र से लेने का निषेध तो पूर्व कह आए हैं ऐसा आशंका करके कहते हैं । १६१ । कि जो धन लेके पिता प्रतिभू भया है उसी धन से प्रतिभू का पुत्र ऋण को देवे । १६२ । मत्त (भांग गांजा आदि में) उन्मत्त (व्याधि आदि में पीड़ित) आर्त्त (दुःखित) पैड़हू बाल वृद्ध संबंध रहित इन्हीं करके किया व्यवहार सिद्ध नहीं होता । १६३ । यह हम को करना है ऐसा लिखके स्थिर किया और वह जब शास्त्र कथित धर्म और परम्परा में चला आया जो समीचीन व्यवहार इन दोनों में बाहर होवे तो सत्य नहीं है (अर्थात् उस को न करना) । १६४ । कल करके जो बंधक विक्रय दान प्रतिग्रह हैं मां मभ निवृत्त हो

प्रातिभाष्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचेदितः । दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् । १६० । अदातरि पुनर्दाता विशातप्रकृता-
वृत्तम् । पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीक्षेत केन हेतुना । १६१ । निरादिष्टधनश्चेत् प्रतिभूः स्यादलंधनः । स्वधनादेव तदद्यान्निरा-
दिष्ट इति स्थितिः । १६२ । मत्तान्मत्तार्ताध्यधीनैर्वालेन स्थविरेण वा । असंयुक्ततश्चैव व्यवहारो न सिध्यति । १६३ । सत्या
न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता । वहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्यावहारिकात् । १६४ । योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रति-
ग्रहम् । यच्च वाप्युपधिमपश्येत्तत्सर्वम्बिनिवर्तयेत् । १६५ । ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतोव्ययः । दातव्यं बान्धवैस्तस्यात्प्रवि-
भक्तैरपि स्वैतः । १६६ । कुटुम्बार्थेध्यधीनोपि व्यवहारं यमाचरेत् । स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचानयेत् । १६७ ।
बलाहकं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् । सर्वान्वलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् । १६८ । त्रयः परार्थे क्रियन्ति साक्षिणः प्रतिभूः
कुलम् । चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आख्यो वणिङ्गपः । १६९ । अनादेयन्नाददीत परिशीणोपि पार्थिवः । न चादेयं समृद्धोपि

जाता है और जिस कार्य में कल जाना गया सो मभ निवृत्त होता है । १६५ । ऋण लेके कुटुंब के अर्थ व्यय करके ऋणी मर गया तो उस ऋण को विभक्त बांधव लोग देंगे । १६६ । अपने देश में अथवा विदेश में कुटुंब (अर्थात् पोष्य वर्ग) के अर्थ दाम ने भी जिस व्यवहार को किया उस व्यवहार को कुटुंबी (अर्थात् पोष्य वर्ग का स्वामी) बिसलन न करें किंतु मां । १६७ । बल से देना भोग करना पत्र लिखाना इन आदि में जितने कार्य किए गए हैं मां मभ अकृत हैं (अर्थात् सिद्ध नहीं हैं) । १६८ । साक्षी प्रतिभू कुल से तीनों पर के अर्थ क्लेश को पाते हैं और ब्राह्मण धनी बनियां राजा ये चारों पर के अर्थ बढ़ते हैं इस नियम पूर्व कथित जा तीन हैं सो प्रथम ही क्रम में अपने कार्य को स्वीकार न करें (अर्थात् माछी पना जामिनी व्यवहार देखना इन कामों को न करें) और पीछे कथित जा चार हैं सो क्रम में अपने कार्य को बल से प्रवृत्त करें (अर्थात् दान फलात्पादन ऋण द्रव्यार्पण विक्रय व्यवहार दर्शन) इन को पर अर्थ करें (अर्थात् ब्राह्मण दाता को धनी ऋणी को बनियां कीमने वाले को राजा व्यवहार करने वाले को बल से कार्य में प्रवृत्त करें) । १६९ । निर्भन भी राजा हो परंतु ग्रहण को योग्य जा उस

नहीं है उस को ग्रहण न करें और बड़ा धनी भी राजा हो परंतु ग्रहण के योग्य कंठो भी बस्तु हो तो उस को ग्रहण करें । १७० । ग्रहण के योग्य वस्तु के त्याग से और ग्रहण के योग्य वस्तु नहीं है उस को ग्रहण से राजा की दुर्बलता प्रकाशित होती है और वह राजा इस लोक में और परलोक में नाश को पाता है । १७१ । ग्रहण के योग्य वस्तु को लेने में और मजातीयों का मजातीय के साथ शास्त्रोक्त विवाह आदि संबंध कराने में बल रहित प्रजा के ग्रहण से राजा को बल होता है और वह राजा इस लोक में और परलोक में बढ़ता है । १७२ । इस लिये यम की नाईं राजा प्रिय अप्रिय को कंड़ कर क्रोध और इन्द्रिय रूढ़ को जीत कर रहे । १७३ । जो राजा मोह में अधर्म करके कार्य को करे उस दुरात्मा राजा को शत्रु लोग वश कर लेंगे । १७४ । जो राजा काम क्रोध को कंड़ कर धर्म में अर्थ को देखता है उस को पीछे सभ प्रजा रहते हैं जैसे सभ नदी समुद्र के पीछे रहती हैं (अर्थात् समुद्र में जाकर फेर उस से भिन्न नहीं होती) तिस प्रकार में राजा से भिन्न प्रजा नहीं रहते । १७५ । जो धनी अपने बल में ऋणों में अपने दिये धन को ग्रहण करता है और ऋणी राजा के पास जाकर

सहस्रमयर्थमुत्सृजेत । १७० । अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् । दौर्वल्यं स्थाप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति । १७१ । स्वादानादग्निसमर्गास्त्वन्नानाञ्च रक्षणान् । वलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्द्धते । १७२ । तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये । वर्तेत याम्पया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः । १७३ । यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः । अचिरात्तं दरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः । १७४ । कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान्धर्मेण पश्यति । प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः । १७५ । यः साधयंतं छन्देन वेदयेद्दैनिकं नृपे । स राजा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्वनम । १७६ । कर्मणापि समं कुर्याद्दैनिकायाधमणिकः । समो वक्रष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छूनैः । १७७ । अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम् । माक्षिप्रत्ययमिद्वानि कार्याणि समतां नयेत् । १७८ । कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि । महापश्ये धनिन्यार्यं निक्षेप-
निक्षेपेदुधः । १७९ । यो यथा निक्षेपेद्वस्ते यमर्थं यस्य मानवः । स तथैव ग्रहीतव्यो यथादायस्तथा ग्रहः । १८० । यो निक्षेपं

निवेदन करे तो राजा उस ऋणी से ऋण का चतुर्थांश दंड आप लेंगे और धनी को धन दिला देंगे । १७६ । धनी के समान जाति वाला अथवा धनी से नीच जाति वाला जो ऋणी है और धन देने में अमर्त्य है सो धनी का काम करके ऋण को पटावे और जो धनी की जाति से ऊंची जाति वाला ऋणी है सो धनी का काम न करे किंतु धीरे धीरे जब कुछ मिले तब देंगे । १७७ । इस विधि करके परस्पर विवाद करने वाले मनुष्यों के साक्षियों में मित्र जो कार्य उस को राजा बिह्व वाक्य को खण्डन करके सम करें । १७८ । कुलज साधु आचार युक्त धर्म जानने वाला सत्य बोलने वाला बहुरूप पुत्र पौत्र आदि से युक्त धनी ऐसा जो मनुष्य है उस को यहां निक्षेप को स्थापन करना । १७९ । जो मनुष्य जिस मनुष्य के साथ में जिस वस्तु को जिस प्रकार से स्थापन करे सो उस से उस वस्तु को उसी प्रकार से लेंगे जैसा देना वैसा ही लेंगे । १८० । निक्षेप करने वाला अपनी वस्तु को जिस पुरुष के यहां निक्षेप किया है उस से मांगता है और वह देता

नहीं तब निक्षेप करने वाले के अमंनिधि में जिस के पाम निक्षेप है उस से प्राद्विवाक पूर्ण । १८१ । माघी के अभाव में अपदेश (अर्थात् राजापदव आदि का बहाना के करने वाले) अपने जो सभ्य और चार हैं इन्हीं का जो निक्षेप नहीं देता उस के यहां हिरण्य को रखाके । १८२ । तदनन्तर निक्षेप करने वाला जिस के यहां निक्षेप किया है उस से अपने निक्षेप का मांगे जब वह देवे तो उस को सच्चा जानना उस से जो निक्षेप का मांगता है सो झूठा है । १८३ । और जब सभ्य अथवा चार ने जो निक्षेप किया है उस को भी वह निक्षेप धारी न देवे तो उस से दोनों निक्षेप को राजा लेवे यह धर्म का निश्चय है । १८४ । निक्षेप और उपनिधि इन दोनों का स्वामी के पुत्र आदि को न देवे किंतु जिस का निक्षेप है उभी को देवे । १८५ । कोई वस्तु का निक्षेप करके निक्षेप करने वाला पर गया अनंतर जिस के यहां निक्षेप है वह आप से उस निक्षेप को मरे हुए निक्षेप करने वाले के धन ग्रहण करने वाले को समर्पण किया फेर उस से निक्षेप करने वाले का पुत्र आदि और राजा ये दोनों दूसरी वस्तु को न मांगें (अर्थात् यह न कहें कि दूसरी भी वस्तु तुम्हारे यहां रखी है उस को दो ऐसा न कहें) ।

याच्यमानो निक्षेपुर्न प्रयच्छति । स याज्यः प्राद्विवाकेन तन्निक्षेपसन्निधौ । १८१ । साध्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः । अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यन्तस्य तत्त्वतः । १८२ । स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथा कृतम् । न तत्र विद्यते किञ्चिद्यत्परैरभियुज्यते । १८३ । तेषान्न दद्याद्यदि तु तद्विरण्यं यथाविधि । उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा । १८४ । निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे । नश्यतो विनिपाते तावन्निपाते त्वनाशिनौ । १८५ । स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे । न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेपुश्च वन्धुभिः । १८६ । अक्षलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् । विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्रैव परि-साधयेत् । १८७ । निक्षेपेष्टेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने । समुद्रेनापुयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत् । १८८ । चौरैर्हृत-अलेनाढमग्निनादग्धमेव वा । न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किञ्चन । १८९ । निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेपारमेव च । सर्वैरुपायैरन्विच्छेत्पथैश्चैव वैदिकैः । १९० । यो निक्षेपन्नाप्यति यश्चानिष्टिष्य याचते । तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समन्दमम् । १९१ । निक्षेपस्यापहर्तारन्तत्समं दापयेदमम् । तथापनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः । १९२ । उपधाभिश्च यः

१८६ । कुल रहित माम उपाय से प्रीति पूर्वक जिस के यहां निक्षेप रखा गया है उस के आचरण का विचार कर निक्षेप किए हुए अर्थ को साधन करें । १८७ । निक्षेप की विधि कहा और मुद्रित वस्तु को जैसा ले तैसा दे माहर को तोड़ कर उस में से कुछ न लेवे तो कुछ दृष्टन नहीं पाता । १८८ । निक्षेप किई हुई वस्तु चोर से हरी गई अथवा जल में बह गई अग्नि से भस्म हुई तो जिस के पाम रखी है वह न देवे जब उ- में से कुछ न लिए हो । १८९ । निक्षेप का ग्रहण करने वाला और निक्षेप रखे बिना निक्षेप का मांगने वाला इन दोनों को वेद में कथित जो अपथ और संपूर्ण उपाय उस करके मिश्रांत वस्तु को जानें । १९० । जो निक्षेप का नहीं देता और जो बिना रखे निक्षेप का मांगता है दोनों को चोर की नाईं दंड देना अथवा निक्षेप के समान दंड देना । १९१ । निक्षेप और उपनिधि इन दोनों का जो नहीं देता है उस को निक्षेप उपनिधि के समान दंड देना । १९२ । कुल करके पर द्रव्य को जो हरता है मशाय रुदित

उम को सभ मनूयों के समीप माना प्रकार के बध कर के मारै । १८३ । कुल के मन्निधि में जितना निक्षेप किया उस में बिरुद्ध बोलै तो उतना ही दंड पावै । १८४ । जिसने माछी रहित दिया वह माछी रहितै लेवै क्योंकि जैसा देना तैसा लेना । १८५ । निक्षेप उपनिधि और प्रीति में दिई इन तीनों का निर्णय इस रीति से राजा करै जिस में निक्षेप रखने वाले को दुःख न होवै । १८६ । जिस को द्रव्य है उस की सम्पत्ति बिना द्रव्य को दूररा बेचै तो उस को माछी न करना वह अपने को चोर नहीं मानता परंतु चोर है । १८७ । बेचने वाला द्रव्य स्वामी का संबंधी हो तो कः सौ पण दंड देवे और संबंधी न हो तो चोर के पाप को पावै । १८८ । अस्वामी ने जो दिया मोल लिया बेचा सो सभ मित्र नहीं हंता व्यवहार की मर्याद में । १८९ । जिस वस्तु का संभोग देख पड़ता है और आगम (अर्थात् पच आदि) नहीं देख पड़ता उस में आगम कारण है संभोग नहीं यह शास्त्र की मर्यादा है । २०० । व्यवहार करने वाले के

कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः । स सहायः सहन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः । १८३ । निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसन्निधौ । तावानेव स विज्ञेयो विव्रवन्दण्डमर्हति । १८४ । मिथो दायः कृतो येन गृहं तो मिथ एव वा । मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः । १८५ । निक्षिप्तस्य धनस्यैवम्प्रीत्योपनिहितस्य च । राजा विनिर्णयकुर्यादक्षिणव्यासधारिणम् । १८६ । विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामो स्वाम्यसंमतः । न तन्नयेत साक्ष्यन्तु स्तेनमस्तेनमानिनम् । १८७ । अवहाय्या भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दम् । निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिष्किपम् । १८८ । अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा । अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः । १८९ । सम्भोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः कश्चित् । आगमः कारणन्तत्र न सम्भोग इति स्थितिः । २०० । विक्रयाद्यो धनं किञ्चिद्भूमीयात्कुलसन्निधौ । क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् । २०१ । अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः । अदंडो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम् । २०२ । नान्यदन्येन संसृष्टं रूपं विक्रयमर्हति । न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् । २०३ । अन्याच्चेद्दर्शयित्वा न्यां वोढुः कन्या प्रदीयते । उभे ते एक शुक्ले वहेदित्यब्रवीन्मनुः । २०४ । नोन्मत्तया न कुष्ठिन्या न च यास्पृष्टमैथुना । पूर्वं दोषानभिस्थाप्य प्रदाता दण्डमर्हति । २०५ । ऋत्विग्यादि कृतो

समीप विक्रय देश में कोई वस्तु को किसी ने मोल लिया और मोल लेना सिद्ध हो तो न्याय में उस वस्तु को मोल लेने वाला पाता है । २०१ । जिस में मोल लिया उस को देखाने नहीं सकता और सभ के समीप मोल लेना सिद्ध करता है तो उस को राजा दंड न देवे और मोल लिई वस्तु को जिस की वस्तु नष्ट भई है वह स्वामी पावै जितने रूपैया में मोल लिई गई रही वस्तु उतना रूपैया मोल लेने वाले का गया । २०२ । कुंकुम आदि द्रव्य को कुम्भ आदि द्रव्य में मिलाकर न बेचना निकाम वस्तु को अच्छी कहकं न बेचना तैल में कम न देना समीप में देना रंग में अच्छा बनाकर न बेचना । २०३ । और कन्या दिखा के और कन्या देवे तो विवाह करने वाला एक ही शुक्ल (अर्थात् जिस वस्तु को दंड के कन्या लेंते हैं) में दोनों कन्या का विवाह करै यह मनु जी ने कहा । २०४ । उन्मत्ता कुष्ठिनी पुरुष संभोग दूषिता कन्या है उस के दोष को बिना कहे उस का विवाह कर देवे तो उस कन्या का दाता दंड के योग्य होता है । २०५ । यज्ञ में

वरण लेके ऋत्विक् अपने कार्य को त्याग करे तो जितना कर्म किए है उस के योग्य अंग को माथ कर्म करने वालों के पावे । २०६ । मंपूर्ण दक्षिणा लेके रोग आदि से अपने कर्म को त्याग करत मते मंपूर्ण दक्षिणा को पावे और अपना कर्म दूसरे से करा देवे । २०७ । जिस कर्म में जिस अंग का जो दक्षिणा है उस को उस अंग के कर्म करने वाले पावे अथवा मभ ऋत्विक् मिल के बांट लेवे । २०८ । अध्वर्यु रथ को ब्रह्मा घोड़ा को होता भी घोड़ा को उद्धाता गाड़ी को लेवे । २०९ । जिस यज्ञ का मो गौ दक्षिणा है उसका बिभाग लिखते हैं मोलह ऋत्विक् हैं तिम में चार मुख्य हैं होता अध्वर्यु ब्रह्मा उद्धाता ये चारो मंपूर्ण दक्षिणा का आधा पावे मैत्रावरुण प्रतिस्तोता ब्रह्माश्व भी प्रस्तोता ये चारो मुख्य ऋत्विक् का आधा पावे अक्का वाक् मेष्टा आग्नेध्र प्रतिहर्ता ये चारो मुख्य ऋत्विक् का हतोवांश पावे रावस्तु उत्तरंता पोता मुब्रह्मण्य ये चारो मुख्य ऋत्विक् का चतुर्थांश पावे इस स्थान में मभ का यथोक्त दक्षिणा मिले इस लिये सब का आधा यद्यपि पचाम है तथापि अइतालमै लेना तब पूर्व कथित संख्या मित्र होगी । २१० । मिल के अपने कर्म को करने वाले मनुष्य इस रीति से अंग कल्पना करें ।

यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् । तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽशस्तह कर्तृभिः । २०६ । दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्मपरिहापयन् । ह-
त्स्वमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् । २०७ । यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युक्ताः प्रत्यङ्गदक्षिणाः । स एव ता आददीत भजेरन्सव
एव वा । २०८ । रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् । होता वापि हरेदश्वमुद्धाता वाप्यनः क्रये । २०९ । सर्वेषामर्हिना
मुखास्तदर्हर्नार्हिनाऽपरे । तृतीयनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः । २१० । सम्भूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः ।
अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना । २११ । धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम् । पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयन्तस्य
तद्वेत् । २१२ । यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पास्त्रोभेन वा पुनः । राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः । २१३ । दत्त-
स्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया । अत ऊर्ध्वमप्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् । २१४ । मृतो नाती न कुर्याद्या दर्पात्कर्म
यथोदितम् । स दंष्ट्रः कृष्णलान्यष्टौ न देयश्चास्य वेतनम् । २१५ । आर्तस्तु कुर्यात्त्वस्थः सन् यथा भाषितमार्दितः । स दी-
र्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् । २१६ । यथोक्तमार्तः सुस्थोवा यस्तत्कर्म न कारयेत् । न तस्य वेतनं देयमल्पो न स्थापि

२११ । धर्म के निमित्त किसी ने कोई मांगने वाले को कुछ दिया और वह लेके धर्म में द्रव्य को नहीं लगाता तो उस द्रव्य को उस से दाता फेर लेवे । २१२ । जब लोग से वह न दे अथवा दाता ने देने को कहिके नहीं देता और लेनेवाला बलम लेके धर्म में नहीं लगाता तो राजा इन दोनों में एक सुवर्ण दंड लेवे उस चारों के प्रायश्चित्त के लिये और उस द्रव्य को दाता पावे यह तो मिद्धे ऊआ है दंड लेने ही में । २१३ । दिई बन्धु को फेर लेना इस को विधि कहा अब इस के अन्तर मजूर को मजूरी न देना इस की विधि कहेंगे । २१४ । व्याधि से रक्षित जो मनुष्य काम करने का स्वीकार किया और दर्प (अर्थात् अहंकार) में नहीं करता उस से आठ रत्ती माना दंड राजा लेवे और मजूरी उस को न दिलावे । २१५ । काम करने वाला रोग से पीड़ित होके काम का त्याग करे और अक्का होके फेर काम को करे तो बड़त दिन की भी मजूरी पावे । २१६ । दुःखित हो अथवा स्वस्थ हो काम करने वाला जिस कर्म का स्वीकार करके उस कर्म को करता है और

वह कर्म भिन्न होने को छोड़ा रह गया है उस को न आप करें और न दूसरे में समाप्ति करावें तो उसको कच्छ भी न देंगे । २१७ । मजुरी न देने की संपूर्ण विधि कहा इस के अनंतर कोई वस्तु करने की मलाह करके उस को नहीं करता उस के धर्म को कहेंगे । २१८ । जो मनुष्य ग्राम देश संघ (अर्थात् समुदाय) इन्हीं का सत्य करके संबित् (अर्थात् मलाह) को किया और लाभ में फेर उस को नहीं करता उस को राज्य में निकाल देना । २१९ । पकड़ के उस में चार मुबर्ण क निष्क एक शतमान (अर्थात् तीन भा बीस रत्ती रूपा) दंड लेवे अंश विकल्प जो है सो विषय (अर्थात् मामिला) का लाघव गौरव (अर्थात् कोटाई बढ़ाई) की अपेक्षा कर क एक एक को अथवा मभ को लेना । २२० । धार्मिक पृथिवी पति ग्राम जाति समूह में समय व्यभिचारियों का (अर्थात् मलाह को देने वालों का) यह दंड विधि को करें । २२१ । कोई वस्तु को माल लेके अथवा बेच के पश्चात्ताप करें (अर्थात् अच्छा नहीं बेचा अच्छा माल नहीं लिया ऐसा कहें) तो दश दिन के

कर्मणः । २१७ । एष धर्म्मोऽखिलेनोक्ता वेतनादानकर्मणः । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्म्मं समयभेदिनाम् । २१८ । यो ग्राम-देशसंघानां कृत्वा मत्वेन संविदम् । विसंवदेन्नरो लाभान्नं राष्ट्रादिप्रवासयेत् । २१९ । निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् । चतुस्सवर्णं पन्निष्काञ्छतमानं च राजतम् । २२० । एतदण्डविधिङ्कुर्व्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः । ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् । २२१ । क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयो भवेत् । सोऽन्तर्दृशाहानुशयव्यन्दयाच्चैवाददीत च । २२२ । परेण तु दण्डस्य न दद्यान्नापि दापयेत् । आददानो ददच्चैव राज्ञा दंड्यः शतानि पट् । २२३ । यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति । तस्य कुर्व्यान्नृपो दण्डं स्वयं पणवतिं पणान् । २२४ । अकन्येति तु यः कन्यां व्रूयाद्दोषेण मानवः । स शतम्प्राभ्रयादण्डं तस्यादोषमदर्शयन् । २२५ । पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वैव प्रतिष्ठिताः । नाकन्यासु कचिन्नृणां लुप्तधर्म्मक्रियाहिताः । २२६ । पाणिग्रहणिका मन्त्रा निथतन्दारलक्षणम् । तेषान्निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे । २२७ । यस्मिन् यस्मिन् कृते कार्यं यस्येहानुशयो भवेत् । तमनैनं विधानेन धर्म्मं पथि निवेशयेत् । २२८ । पशुषु स्वामिनाञ्चैव पालानाञ्च व्यतिक्रमे । विवादं सम्पूवक्ष्यामि यथावद्वर्म्मतत्त्वतः । २२९ । दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे । योगक्षेमेन्यथाचेत्तु

भीतर फेर फार करें । २२२ । दश दिन के ऊपर फेर फार नहीं होता और करें तो क सो पण दण्ड देंगे । २२३ । दोष युक्त कन्या का दोष बिना कहें उस का विवाह करें तो कानबे पण दंड देंगे । २२४ । शत्रुता में कन्या को अकन्या कहें (अर्थात् पुरुष संभोग दूषिता कहें) और उस बात को सिद्ध न करें तो सो पण दंड देंगे । २२५ । विवाह करने की मंत्र कन्या ही को कहा है और जो अकन्या है उस का धर्म किया तो लुप्त हो जाता है उस को विवाह की मंत्र नहीं है । २२६ । नियम करके विवाह की मंत्र ही में दारा (अर्थात् पत्नी कहाती है) उस की भिद्धि सातवें पद में होता है विवाह में मंत्र में सात पद स्त्री पुरुष चलते हैं सातवें पद में वह कन्या उस पुरुष को पत्नी होता है । २२७ । जो जो कार्य किण मंत्र जिस को पश्चात्ताप हो उस को इस विधान में धर्म युक्त मार्ग में स्थापन करें । २२८ । पशु स्वामी पाल इन्हीं के विवाद को जो का त्यां धर्म से कहेंगे । २२९ । दिन में पाल के पास स्वामि समर्पित गा की रक्षा न बनी तो पाल दोषी होता है रात्रि

में स्वामी के गृह में पाल समर्पित गौ की रक्षा न बनी तो स्वामी दोषी होता है कदाचित् गात्र में भी पाल के यहाँ गौ रही और उसकी रक्षा न बनी तो पाल दोषी होता है । २३० । जिस पालकी मजुरी कृच्छ्र नहीं की गई है वह स्वामी की मंमति में दश गौ चरावे तो एक अच्छी गौ का दूध लेंगे । २३१ । जो गौ देख नहीं पड़ती है कीड़ा से खाई गई है कृत्ता से मारी गई विषम (अर्थात् टंड़ी) भूमि में मर गई पाल में रहित होके मर गई उसका पाल देंगे । २३२ । पुकार देके चार ले गया तो उसका पाल न देंगे जब उसी समय में स्वामी के पास जाकर कहै तब । २३३ । मरे पीके गौ के अंग का स्वामी को देखावे और गौ का कांन घाम बाल बलि (अर्थात् नाभी के नीचे का भाग नम रोचना) इन सब को गौ के स्वामी को देंगे । २३४ । बकरी भेड़ी इन को जंझार ने घेरा और उस समय में पाल नहीं आया और हटते जंझार ने बकरी भेड़ी को मारा तो पाल दोषी होता है । २३५ । पाल में रहित होकर बन में चरती बकरी भेड़ी का उच्छल के जंझार ने मारा तब पाल दोषी नहीं होता । २३६ । गौ के चरने के लिये घाम के चारे और सौ धनुष तक (अर्थात् चार सौ हाथ तक खेती न करना अथवा

पालावक्तव्यतामियात् । २३० । गोपः क्षीरमृतौ यस्तु सदुह्यादशतोवराम् । गोस्वाम्यनुमते मृत्यः सास्यात्यालेऽमृतं मृतिः । २३१ । नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् । हीनम्पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु । २३२ । विघुष्य तु हतचौरैर्न पालो दातुमर्हति । यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति । २३३ । कर्णे चर्म च वालांश्च वस्तिं खायुश्च रोचनाम् । पशुषु स्वामिनान्दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दर्शयेत् । २३४ । अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पालेत्वनायति । याम्प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषम्वेत् । २३५ । तामाश्चेद्वरुद्धानां चरन्तीनां मिथो वने । यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी । २३६ । धनुश्शतं परीक्षारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः । शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणा नगरस्य तु । २३७ । तत्रापरिवृतान्यन्धमिहिस्युः पशवो यदि । न तत्र प्रणयेद्दण्डनृपतिः पशुरक्षिणाम् । २३८ । वृत्तिन्तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रेनावलोकयेत् । छिद्रञ्च वारयेत्सर्वं श्वशूकरमुखानुगम् । २३९ । पथि क्षेत्रे परिवृत्ते ग्रामांतीयेऽथवा पुनः । स पालः शतदण्डार्हो विपालान् चारयेत्पशून् । २४० । क्षेत्रेऽन्येषु तु पशुः सपादम्पणमर्हति । सर्वत्र तु सदोदेयः क्षेत्रिकस्येति धारणा । २४१ । अनिर्दशाद्वाङ्गां सूतां व-

हाथ से लाठी फेंकना जहाँ जाके लाठी गिरे उतनी भूमि की तिगुनी भूमि तक खेती न करना और मगर के चारे और तौ जो कहा है उस का तिगुना होइना । २३७ । गवई (अर्थात् घेरा) में रहित छूटी भूमि के समीप में जो धान्य है उसका पशु नाश करें तो पाल का दण्ड राजा न देंगे । २३८ । घेरा ऐसा बनावे कि जिसको जंठ न देख सकें छिद्र को बारण करें जिसमें कृत्ता मजुर का मुख धान्य में न जासके । २३९ । मार्ग के समीप का अथवा ग्राम के समीप का खेत घेरा में रहित हो और उस में जो धान्य का पशु ने नाश किया हो तो पाल सौ पण दंड देंगे और पाल में रहित पशु होवे तो उसको अपने खेत में निकाल देंगे । २४० । मार्ग और ग्राम इन्हीं का समीप होइ के दृश्ये खेत में मस्य का नाश पशु करें तो सौ पण दंड पशु पाल देंगे और अपराध के अनुसार से पशु स्वामी अथवा पशु पाल क्षेत्र का फल क्षेत्र स्वामी को देंगे यह निश्चय है । २४१ । पाल में रहित हो अथवा पाल रहित हो बिनाई गौ बिनाने से दश दिन

के भीतर सस्य का नाश करे और सांड सस्य का नाश करे तो दंड योग्य नहीं है यह मनु जी ने कहा । २४२ । अधिष्ठा के खेत की सस्य को खेती करने वाले के पशु ने भक्षण किया अथवा सस्य बोलने के समय में न बोया हो तो जितनी राज भाग की हांनि भई हो उस का दश गुना दंड देवे और खेती करने वाले को अज्ञान से उस के भृत्यों ने पूर्व कथित नाश किये हो तो पांच गुना भृत्य देवे । २४३ । स्वामी पाल पशु इन्हीं के विवाद में इस प्रकार की विधि को धार्मिक राजा करे । २४४ । दो ग्राम के सीमा विवाद का निर्णय को ज्येष्ठ मास में प्रकटित सीमा चिन्ह भये संते करे । २४५ । बट पीपर पलाश सेमर बाल ताल दूध वाले टुल इन सब में से कोई एक को सीमा के मध्य में लगाना चाहिये । २४६ । गुल्म (अर्थात् प्रकाण्ड रहित) बज्रत कांटा वाला और घोड़ा कांटा वाला जो बांस

पान्देवपशूस्तथा । सपालान्वा विपालान्वा न दंड्यान्मनुरववीत । २४२ । क्षेत्रिकस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् । ततोर्द्ध-
दण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु । २४३ । एतद्विधानमातिष्ठेद्वास्मिकः पृथिवीपतिः । स्वामिनाञ्च पशूनाञ्च पालानाञ्च
व्यतिक्रमे । २४४ । सीमाम्प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः । ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु । २४५ । सी-
मादृक्षांस्तु कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्यकिंशुकान् । शाल्मली सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् । २४६ । गुल्मान्वेणूश्च विविधान्
शमी वल्ली स्थलानि च । शरान्कुञ्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति । २४७ । तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रसवणानि च ।
सीमा सन्धिषु कार्याणि देवतायतनानि च । २४८ । उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत् । सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य
नित्यं लोके विपर्ययम् । २४९ । अश्वमेदस्योनि गोवालांस्तुपान्भस्मकपालिकाः । करीषमिष्टकाङ्गारांश्चर्करा वालुकास्तथा ।
२५० । यानि चैवम्प्रकाराणि कालाङ्गुलिर्न भक्षयेत् । तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् । २५१ । एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां
राजा विवदमानयोः । पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च । २५२ । यदि संशय एव स्यात्लिङ्गानामपि दर्शने । साक्षिप्रत्यय
एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः । २५३ । ग्रामीयककुलानाञ्च समक्षं सीमि साक्षिणः । प्रष्टव्याः सीमालिङ्गानि तयोश्चैव विवा-

और शमी लता उंची भूमि सरहरी कुलुक गुल्म (अर्थात् प्रकाण्ड रहित टेंदा टुल) इन सभी में से कोई एक को सीमा के मध्य में लगाना इस से सीमा नष्ट नहीं होता । २४७ । तडाग कुंआ बाउली झरना देव स्थान इन सभी में से कोई एक को सीमा की संधि में करना । २४८ । सीमा के ज्ञान में मनुष्यों को उलूट पलट देख के और भी ठपे छप चिन्ह को करना । २४९ । पत्यल हाड़ गौ का बाल भूसा राखी ठिकरा करमो ईंट कोदला खपरा बालू । २५० । जिस को बज्रत दिन में भूमि भक्षण न करे ऐसी जा बस्तु है उन सब को सीमा के भीतर रखना यह अप्रकाश चिन्ह है । २५१ । ये सब चिन्ह और पूर्व का भोग जल का आगम इन्हो करके सीमा का निर्णय राजा करे । २५२ । चिन्ह के देखने में जब संदेह हो तो साक्षियों के बचन से सीमा विवाद का निर्णय करे । २५३ ।

याम के मनुष्य और बाढ़ी प्रतिमादी इन्हीं के समीप में साक्षियों से सीमा का चिन्ह पृकना । २५४ । वे सब एक मत होकर सीमा का निश्चय जैसा कहें तैसी सीमा को बांधें और उन सब साक्षियों का नाम भी पत्र में लिखें । २५५ । वे सब साक्षी पुष्प की माला और लाल बस्त्र पहिनें ऊपर माथे पर माटी का टंका रख कर अपने अपने सुकृत से शाप को पाएँ ऊपर (अर्थात् झूठ चिन्ह देखाओगे तो तुम्हारा सुकृत नष्ट होगा ऐसी वचन निर्णय करने वाले की सुनें ऊपर) ज्यों का त्यों सीमा का निर्णय करें । २५६ । ज्यों का त्यों निर्णय करें तो सत्य से पवित्र होते हैं और विपरीत (अर्थात् उल्टा पलट) सीमा निर्णय करें तो एक एक कांदा सौ पण दंड देंगे । २५७ । साक्षी भी न मिलें तो सामंत (अर्थात् चारों ओर याम के बासी) चार यज्ञ पूर्वक राजा के समीप में सीमा का निर्णय करें । २५८ । सामंत भी न मिलें तो मौल (अर्थात् याम के निर्माण काल से लेकी पुरुष क्रम करके उमी याम के बासी जन) उन से निर्णय करना ये भी न मिलें (अर्थात् निर्णय न कर सकें) तो बग बासियों को आज्ञा देना निर्णय के लिये । २५९ । गर्भ हत्या करने वाला व्यभिचारिणी (अर्थात् किनाल) स्त्री शिष्य और यज्ञ

दिनोः । २५४ । ते पृष्ठास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् । निवध्नीयात्तथा सीमां समस्तांश्चैव नामतः । २५५ । शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं सग्विणो रक्तवाससः । सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैन्नेयेयुस्ते समञ्जसम् । २५६ । यद्योक्तेन नयन्तस्ते पृथन्ते सत्यसाक्षिणः । विपरीतञ्चयन्तस्ते दाप्याः स्युर्दिशतं दम् । २५७ । साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः । सीमाविनिर्णयक्युः प्रयता राजसन्निधौ । २५८ । सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् । इमानप्यनयुक्तीत पुरुषान्वनगोचरान् । २५९ । व्याधाष्ठाकुनिकान् गोपान् कैवर्तान्मूलखानकान् । व्यालगाहानुच्छृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः । २६० । ते पृष्ठास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् । ततथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः । २६१ । क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च । सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमा सेतुविनिर्णयः । २६२ । सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् । सर्वे पृथक् पृथक् दंडा राज्ञा मध्यमसाहसम् । २६३ । गृहन्तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् । शतानि पञ्च दंडाः स्यादज्ञानाद्विशतो दम् । २६४ । सीमायामविपद्वायां स्वयं राजैव धर्मवित् । प्रदिग्नेद्भूमिमेकेषामुपकारादिति स्थितिः । २६५ । एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमा-

करने वाला ये दोनों और चार ये सब अपने पाप को क्रम से भोजन देने वाला पकड़ने वाला व्याधा पक्षी पकड़ने वाले गो चराने वाले मकली में जीने वाले मूल खाने वाले (अर्थात् कंद मूल खन के बेचने वाले) सर्प को पकड़ने वाले उंक से जीने वाले वन बासी ये सब अपने प्रयोजन के लिये उस याम से सर्व कास में बग को जाते ऊपर उस याम के सीमा को जानने वाले होते हैं । २६० । ये सब पूकने से जैसा चिन्ह कां कहें तैसी दोनों याम की धर्म से सीमा राजा स्थापन करें । २६१ । क्षेत्र कूप तडाग बगीचा गृह इन सभी का सीमा निर्णय सामंत के वचन से जानना । २६२ । सामंत झूठ बोले तो एक एक कांदा मध्यम साहस दंड राजा देंगे । २६३ । गृह तडाग बगीचा क्षेत्र इन सब को डेरवा के हरण करत सते पांच सौ पण दंड देंगे । २६४ । चिन्ह और साक्षी आदि पूर्व कथित के अभाव में धर्म जानने वाला राजा उपकार से एक को देंगे (अर्थात् उस भूमि को पाने से जिस का बज्रत उपकार होता है उसी का देंगे) यद शास्त्र की मर्यादा

है । २६५ । यह संपूर्ण सोमा निर्णय कहा इस के अनंतर वाक्पाठ्य का निर्णय कहेंगे । २६६ । ब्राह्मण को चार ऐसी कठोर वचन कहके क्षत्रिय सौ पण दंड देने की योग्य होता है वैश्य डंड सौ पण अथवा दो सौ पण दंड देवै और शूद्र ऐसा कर्म करें तो मध को योग्य होता है । २६७ । क्षत्रिय को पूर्व कथित वचन ब्राह्मण कहै तो पचास पण दंड देवै वैश्य को कहै तो पचीस पण दंड देवै शूद्र को कहै तो बारह पण दंड देवै । २६८ । समान वर्ण में पूर्व कथित आक्रोश (अर्थात् ऊंच स्वर से बोलना) करने से बारह पण दंड होता है और कहने के योग्य जो वचन नहीं है उस के कहने से सौ बीस पण दंड होता है । २६९ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को कठोर बाणी से आक्षेप करत संते शूद्र जिज्ञा छेदन पाता है क्योंकि निष्ठुर अंग जो पाद है उस में उत्पन्न है । २७० । ब्राह्मण आदि को ते तू फलाने ब्राह्मण से नीच ऐसा ऊंच स्वर कर के नाम और जाति का ग्रहण करें शूद्र तो उस के मुख में बारह अंगुल प्रमाण जलता हुआ लोहे का शंकु डालना । २७१ । ब्राह्मणों को

विनिर्णये । अत ऊर्ध्वम्प्रवक्ष्यामि वाक्पाठ्यविनिर्णयम् । २६६ । शतम्ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्योऽप्यर्धशतं हे वा शूद्रस्तु वधमर्हति । २६७ । पञ्चाशद्ब्राह्मणो दंड्यः क्षत्रियस्याभिर्शंसने । वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः । २६८ । समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे । वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् । २६९ । एकजातिर्द्विजातींश्च वाचा दारुणया क्षिपेत् । जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदञ्जघन्यप्रभवो हि सः । २७० । नामजातिग्रहण्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः । निःक्षेप्योऽयोमयः शक्रुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः । २७१ । धर्मोपदेशन्दर्प्येण विप्राणामस्य कुर्वतः । तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः । २७२ । श्रुतन्देशश्च जातिश्च कर्मशारीरमेव च । वितथेन ब्रुवन्दर्पाहायः स्याद्विशतन्दमम् । २७३ । कारण्वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् । तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्पापणाऽवरम् । २७४ । मातरम्यतरञ्चायाम्मातरन्तनयङ्गुरुम् । आक्षारयश्छतन्दाप्यः पन्थानञ्चाददङ्गुरोः । २७५ । ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यान्तु दण्डः कार्यो विजानता । ब्राह्मणो साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः । २७६ । विट्शूद्रयारेवमेव स्वजातिस्मृति तत्त्वतः । छेदवर्जम्प्राणयनन्दण्डस्येति विनिश्चयः । २७७ । एष दण्डविधिः

गर्व से धर्म का उपदेश करने वाला जो शूद्र उस के मुख में और कान में तथा ऊँचा तेल को राजा डाले । २७२ । समान जाति में दंड कहते हैं तुम्हारा यह मुना नहीं है तुम इस देश में उत्पन्न नहीं हो तुम्हारी यह जाति नहीं है तुम्हारा शरीर संस्कार (अर्थात् वज्रोपवीत आदि) नहीं ऊँचा है ऐसा अप्रकार से कहत संते दो सौ पण दंड देवै । २७३ । काँला और पंगु इन्हीं को मध्य से भी काँला पंगु न कहना कदाचित् कहै तो एक कार्पापण दंड देवै । २७४ । माता पिता स्त्री भाई पुत्र गुरु इन का पातक आदि से शाप देवै (अर्थात् पातको इस ऐसा कहै और गुरु को राह न देवै) तो सौ पण दंड देवै । २७५ । ब्राह्मण को क्षत्रिय अथवा क्षत्रिय को ब्राह्मण पतन योग्य बाणी ऊंच स्वर से कहै तो ब्राह्मण पूर्व साहस दंड को देवै क्षत्रिय मध्यम साहस दंड देवै । २७६ । इसी रीति से वैश्य शूद्र में भी अपनी जाति में जिज्ञा छेद रहित दंड जानना यह शास्त्र का निश्चय है । २७७ । वाक्पाठ्य की दंड विधि यह कहा इस के अनंतर

दंड पारुष्य की विधि कहेंगे । २७८ । अंत्यज (अर्थात् चाण्डाल) जिस किसी अंग में बड़े लोगों के अंग पर प्रहार करें उस अंग को काट आलना यही मनु जी की आज्ञा है । २७९ । हस्त के उद्यम से मारे तो हस्त काटना पाद के उद्यम से मारे तो पाद काटना । २८० । छोटा मनुष्य बड़े मनुष्य के साथ एक आसन पर बैठे तो उस के कटि में चिन्ह करके निकाल देवै अथवा जिस में मरै न ऐसी रीति से चूतर उस का काट देवै । २८१ । दर्प से दंष्ट्र पर शूकै मूत बिठा करै तो क्रम से दोनों अंठा लिंग मार्ग इन्हीं का छेदन करै । २८२ । ब्राह्मण का केश पाद दाही घोवा छपण (अर्थात् अण्ड) इस को अहंकार से ग्रहण करने वाला जो शूद्र है उस का हाथ काटना यह विचार न करना कि इस को पीड़ा होगी । २८३ । लचा भेद करने वाला रक्त निकालने वाला ये दोनों भौ पण दंड को पाँच मांस भेद करने वाला हाड भेद करने वाला क्रम से छ निष्क देश निर्वासन इस दंड को पाँच यह दंड समान जाति में जानना । २८४ । संपूर्ण छत्तों का जैसा जैसा उपभोग

प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः । अत ऊर्ध्वमुपवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् । २७८ । येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेष्टेमन्त्यजः । छे-
त्तव्यन्तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् । २७९ । पाणिमुद्यम्य दण्डत्वा पाणिच्छेदनमर्हति । पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदन-
मर्हति । २८० । सहासनमभिप्रेषुस्तृणस्यापकृष्टजः । कदां कृताङ्गो निर्वास्यः स्फिकं चास्यावकर्त्तयेत् । २८१ । अवनिष्ठीवतो
दर्प्याहावोष्ठौ छेदयेन्नृपः । अवमृचयतो मेद्रमवश्रद्धयतो गुदम् । २८२ । केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् । पादयोर्द्वा-
दिकायाञ्च ग्रीवायां वृणोषु च । २८३ । त्वग्भेदकः शतदंष्ट्रो लोहितस्य च दर्शकः । मांसमेता तु पण्डितान्प्रवास्यस्त्वस्थिभे-
दकः । २८४ । वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगो यथा यथा । तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा । २८५ । मनुष्याणाम्प-
शूनाञ्च दुःखाय प्रहृते सति । यथा यथा महद्दुःखन्दण्डं कुर्यात्तथा तथा । २८६ । अङ्गावपोडनायाञ्च व्रणशोणितयोस्तथा ।
समुत्थानव्ययन्दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा । २८७ । द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा । स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं रात्रौ
दद्याच्च तत्समम् । २८८ । चर्म चार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च । मूल्यात्पञ्च गुणो दंडः पुष्पमूलफलेषु च । २८९ । यानश्च
चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च । दशातिवर्त्तनान्याहुः शेषे दंडो विधीयते । २९० । छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक् प्रतिमुखागते ।

करै तैसा तैसा दंड पाँच मारने में तैसा ही जानना यह शास्त्र का नियम है । २८५ । मनुष्य और पशु इन्हीं को जैसा जैसा दुःख देवै तैसा तैसा दंड पाँच । २८६ । हाथ पाँव आदि में व्रण (अर्थात् छिद्र) रक्त से पीड़ा भये मंते पीड़ा करने वाला जितने दिन में अच्छा न हो उतने दिन - १ औषध और पथ में व्यय (अर्थात् खर्च) भया है उस को देवै कदाचित् देने की इच्छा न करै तो व्यय और दंड दोनों देवै । २८७ । जान के अथवा बिना जाने जो मनुष्य जिस की द्रव्य को नाश करे सो उस को संतुष्ट करै और उस द्रव्य के समान राजा को दंड देवै । २८८ । चर्म चर्म का पात्र काष्ठ लोष्ठ (अर्थात् माटी) का पात्र पुष्प मूल फल इन्हीं का नाश करने वाला मूल से पाँच गुना दंड देवै । २८९ । सवारों सवार सवारों का स्वामी इन सब को दण्ड स्यान्मं दंड न देना और स्यान्मं दंड देना । २९० । छिन्न नास्ये भग्नयुगे तिर्यक् प्रतिमुखागते ।

नाथ की रस्सी १ और जूआ २ टूट गया हो भूमि की विषमता से रथ आदि टेंढ़ी ३ और मनुख आई हो ४ अक्ष ५ (अर्थात् चक्र के भीतर का काष्ठ) और चक्र ६ टूट गया हो । २८१ । चर्म बंधन ७ पशु के सीवा को रस्सी ८ कोड़ा ९ से मभ टूट गए हों और ऊंच खर करके हट जाओ ऐसे सारथी ने पुकारा हो १० तो रथी सारथी रथ स्वामी इन में किसी को दंड न देना । २८२ । जहां सारथी के दोष से रथ को जैसा चलना चाहिए तैसा नहीं चलता है और उस चाल से कोई मर गया हो तहां अशिक्षित सारथी के रथ पर राखने से रथ स्वामी दो मौ पण दंड देंगे । २८३ । सारथी रथ हांकने में निपुण हो और रथ से कोई मर गया हो तो दो मौ पण दंड सारथी देंगे सारथी निपुण न हो और रथ से कोई मर गया हो तो अशिक्षित सारथी के रथ पर राखने से रथ स्वामी सारथी और चढ़े हुए मनुष्य से सभ सौ मौ पण दंड देंगे । २८४ । सारथी के समुख दूसरी रथ आई अथवा बड़त गौ आदि पशु समुख आए और इन्हों से रथ रोकी गई और चित्त के अनवधानता से अपनी रथ को पीछे ले जाने में समर्थ नहीं है और घोड़े को कोड़ा मार के आगे ले जाता है इस में कोई मर गया हो तो बिचार न करना सारथी को दंड देना ।

अक्षमङ्गे च यानस्य चक्रमङ्गे तथैव च । २८१ । छेदने चैव यन्त्राणां योत्क्ररश्म्योस्तथैव च । आक्रंदे चाप्यपैहीति न दंडं
मनुरवधीत् । २८२ । यच्चावपर्तते चक्रं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु । तत्र स्वामो भवेद्दंडो हिंसायां द्विशतन्दमम । २८३ । प्राजक-
श्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति । यग्यस्थाः प्राजकेनाप्ते सर्वे दंड्याः शतं शतम् । २८४ । स चेत्तु पथिसंरुद्धः पशुभिर्वा रथेन
वा । प्रमापयेत्प्राणमृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः । २८५ । मनुष्यमारणे शिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् । प्राणमृतम् महत्स्वर्द्धं गो-
गजोद्ग्रहयादिषु । २८६ । क्षुद्रकाणाम्पशूनान्तु हिंसायां द्विशतो दमः । पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु । २८७ । गर्द-
भाज्राविकानान्तु दण्डः स्यात्पञ्च मायिकः । मायकस्तु भवेद्दण्डः श्वशूकरनिपातने । २८८ । भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता
च सोदरः । प्राप्तापराधादंड्यास्यू रज्जा वेणुदलेन वा । २८९ । पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथञ्च न । अतोऽन्यथा तु
प्रहरणं प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् । ३०० । एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः । स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिन्दंडविनि-
र्णये । ३०१ । परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां नियमे नृपः । स्तेनानां नियमादस्य यशोराष्ट्रञ्च वर्द्धते । ३०२ । अभयस्य हि यो

२८५ । मनुष्य के मारण में शीघ्र चोर की नाई पापी होता है (अर्थात् उत्तम साहस दंड के योग्य होता है) गौ हाथी ऊंट घोड़ा आदि जो बड़े जीव हैं इन्हीं के मारने में मध्यम साहस दंड देंगे । २८६ । छोटे पशु के मारने में दो मौ पण दंड देंगे शुभ जो मृग पक्षी हैं उन्हीं के मारने में पचास पण दंड देंगे । २८७ । गद्गहा बकरी भेड़ इज के मारने में एक मामा रूपा देंगे । २८८ । भार्या पुत्र दास शिष्य सहोदर भाई इन्हीं से अपराध भया हो तो रस्सी से और बांस के फलठा से इन्हीं का ताड़न करना । २८९ । मस्तक कोड़ के पीठ में मारना इस से बिपरीत ताड़न करें तो चोर को पाप को पावे (अर्थात् बाग दंड धन दंड को पावे) । ३०० । यह संपूर्ण दण्ड पारुष्य का निर्णय कहा इस के अन्तर चोर के दंड विधि का निर्णय कहेंगे । ३०१ । चोरों के नियम में (अर्थात् दंड देने में) परम यत्न को करें इस से इस राजा का यश और राज्य बढ़ता है । ३०२ । अभय का देने वाला राजा सर्व काल में पूजित होता है और सर्व काल में उस राजा की अभय दक्षिणा वाली यज्ञ बढ़ती

है । ३०३ । चारों ओर से प्रजों की रक्षा करने से धर्म का कृष्ण भाग को राजा पाता है और रक्षा न करने से उन्हीं के अधर्म का कृष्ण भाग को पाता है । ३०४ । प्रजों के रक्षण से प्रजों का किया जो पाठ याग दान पूजा उस का कृष्ण भाग को पाता है । ३०५ । सब जीवों की धर्म से रक्षा करत मंते और बध के योग्य को बध करत मंते लक्ष दक्षिणा वालो याग को प्रतिदिन वह राजा करता है । ३०६ । प्रजों की रक्षा बिना किए हुए प्रजों से भेंट कर शुल्क (अर्थात् महसूल) जो लेता है सो राजा छट पट नरक में जाता है । ३०७ । जो राजा प्रजों को रक्षा नहीं करता और प्रजों से अपने भाग को ग्रहण करता है सो संपूर्ण मल को ग्रहण करता है । ३०८ । मर्यादा को काँड़ने वाला नास्तिक (अर्थात् परलोक को न मानने वाला) लूटने वाला रक्षा का न करने वाला अपना भाग लेने वाला जो राजा है वह नरक में जाता है । ३०९ । रोकना बाँधना नाना प्रकार का बध करना इन तीनों कर्म से यज्ञ पूर्वक अधार्मिक पुरुषों का नियन्त्रण करें । ३१० । पापियों के

दाता स पूज्यः सततनृपः । सच्चं हि वर्जते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् । ३०३ । सर्वतो धर्मपद्मागो राज्ञो भवति रक्षतः । अधर्मादपि पद्मागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः । ३०४ । यदधीते यद्यजते यददाति यदर्चति । तस्य पद्मागभागाया सम्यग्भवति रक्षणात् । ३०५ । रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् । यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः । ३०६ । योऽरक्षन्धर्मादिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः । प्रतिभागं च दण्डश्च स सद्यो नरकं व्रजेत् । ३०७ । अरक्षितारं राजानं वलिपद्मागहारिणम् । तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् । ३०८ । अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुपकम् । अरक्षितारमन्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् । ३०९ । अधार्मिकं चिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः । निरोधनेन वधेन विविधेन वधेन च । ३१० । निग्रहेण हि पापानां साधूनां सग्रहेण च । द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः । ३११ । शान्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्याणां नृणाम् । बालहृद्वातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः । ३१२ । यः क्षिप्तो मर्पयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते । यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति । ३१३ । राजा स्तेनेन गंतव्यो मुक्तकेशेन धावता । आचक्ष्णणेन तत्स्तेयमेवं कर्मास्मि शाधि माम् । ३१४ । स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् । शक्तिञ्चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा । ३१५ । शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्ते-

नियन्त्रण से साधुओं के संरक्षण से यज्ञ करने से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की नाईं निरंतर पवित्र राजा होता है । ३११ । अपना हित करने वाला राजा दुःख करके निषिद्ध भाषण करते अर्थी प्रार्थी बाल हृद्वा आतुर इन्हों के बाक्य को सहन करें । ३१२ । दुःखित मनुष्य से निषिद्ध भाषण को पाके जो क्षमा करता है सो स्वर्ग में पूजित होता है और जो ऐश्वर्य से क्षमा नहीं करता सो नरक में जाता है । ३१३ । ब्राह्मण का दण्ड मासा आदि मोना चोराने वाला आप से शिखा को खोले हुए दौड़ करके राजा के समीप जाकर मूसल खैर की लाठी दोनों ओर की तीखी बरकी लाह दंड इन्हों में से कोई एक को कांधे पर रख के कई वि ऐसा काम करने वाला मैं हूँ मेरा दंड करिए । ३१४ । ३१५ । राजा उस को दंड देवे अथवा काँड़ देवे तो चोरी के पाप से वह कूट जावे कदाचित् खेद से

उस को दंड न देवे तो चोर के पाप को पावे । ३१६ । गर्भ हत्या करने वाला व्यभिचारिणी (अर्थात् किमाल) स्त्री शिष्य और धन्य करने वाला ये दोनों और चोर ये सब अपने पाप को क्रम से भोजन देने वाला पति गुरु राजा इन्हीं में धोते हैं । ३१७ । जैसे पुण्य करने वाले स्वर्ग में जाते हैं तैसे पाप करने वाले राजा से दंड पाके निर्मल ऊँच स्वर्ग में जाते हैं । ३१८ । कृत्रां पर से रस्सी और घड़ा को चोराने वाला पत्रमरा को भेद करने वाला एक मासा मोना दंड देवे और घड़ा रस्सी को उसी कृत्रां पर रख देवे । ३१९ । दो सौ गंडा पैसा भर को द्रोण कहते हैं बीस द्रोण का कुंभ कहाता है दश कुंभ में अधिक धान्य को चोराने तो उस का बध करना सो चार और द्रव्य स्वामी इन्हीं का गुण विचार के ताड़न अङ्गुष्ठेन मारण इन्हीं को करना इससे कम होवे तो चोराई गई वस्तु का ग्यारह गुना दंड देना जैसे एक मन चोराने तो ग्यारह मन देवे और चोराई गई वस्तु को स्वामी पावे (अर्थात् जिस की चोरी हुई है सो पावे) । ३२० । मोना रूपा पट्ट वस्त्र इन सभी के सो गंडा भर के ऊपर चोराने में बध करना विषय का समीकरण तो देस काल और चोर द्रव्य स्वामी इन दोनों का जाति गुण देख के करना इसी

यादिमुच्यते । अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् । ३१६ । अन्नादे धूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी । गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् । ३१७ । राजनिर्द्धूतदण्डस्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायांति सन्तः सुकृतिनो यथा । ३१८ । यस्तु रज्जुद्वटकृपाद्वरेद्विद्याच्च यः प्रपाम् । स दण्डम्प्राप्नुयान्मायं तच्च तस्मिन्समाहरेत् । ३१९ । धान्यन्दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोभ्यधिकम्बधः । शेषे षेकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् । ३२० । तथाधरिममेयानां शताद्भ्यधिके वधः । सुवर्णरजतादीनामुत्तमानाञ्च वाससाम् । ३२१ । पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते । शेषे त्वेकादशगुणम्नूच्यादण्डम्प्रकल्पयेत् । ३२२ । पुरुषाणाङ्गुलीनानां नारीणाञ्च विशेषतः । मुख्यानाञ्चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति । ३२३ । महापशूनां हरणे शस्त्राणामौपधस्य च । कालमासाद्य कार्यञ्च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् । ३२४ । गोपु ब्राह्मणसंस्थासु छूरिकायाश्च भेदने । पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्द्धपादिकः । ३२५ । सूचकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च । दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च । ३२६ । वेणुवैदलभाण्डानां लवणानान्तथैव च । मृण्मयानाञ्च हरणे मृदोभस्मन एव च । ३२७ ।

प्रकार से आगे के श्लोक में भी जानना । ३२१ । पूर्व कथित वस्तु पचास गंडा से ऊपर सौ गंडा के भीतर हो तो उस के चोराने में हस्त छेदन करना पचास गंडा के नीचे जितना हो उस का ग्यारह गुना दंड देवे । ३२२ । कुलीन पुरुष और महाकुल की स्त्री श्रेष्ठ रत्न इन्हीं में से कोई एक के हरण में बध करना । ३२३ । हाथी घोड़ा भैंस गौ हथियार औषध इन सभी में से कोई एक वस्तु के हरण में दुर्भिक्ष आदि काल और प्रयोजन इन्हीं को देख कर ताड़न अंग छेदन बध को राजा करे । ३२४ । ब्राह्मण की गो के हरण में और बंझा गौ के बाहन के अर्थ नामिका छेदन में बकरा भेड़ा आदि यज्ञ के योग्य पशु के हरण में शीघ्र आधा पाद काटना । ३२५ । ऊर्णा आदि सूत्र कपास का सूत्र किण्व (अर्थात् सुरा बीज द्रव्य) गोबर गुड़ दही दूध मंठा जल तृण । ३२६ । सूत्र बांस के टुकड़े का बनाया हुआ जलाहरण पात्र आदि लवण माटी का पात्र माटी भस्म । ३२७ । मक्खली पत्ती तेल घी मांस मधु पशु संभव (अर्थात् मृग चर्म गेंडा का घृत्त आदि)

। ३२८ । इस प्रकार के और जो हैं (अर्थात् जिस में मार नहीं है मैनजिल आदि) भोजन के योग्य पक्वान्न दाह्य लङ्घ्या आदि भात इन सभी में कोई एक वस्तु के हरण में उस के मोल से दंड देवे । ३२९ । पुष्य क्षेत्र में स्थित हरित धान्य खचा सहित गुल्म लता वृक्ष एक पुरुष के खेजाने योग्य धान्य इन सभी में से कोई एक वस्तु के चोराने में देश काल बिचार के एक मासा मोना अथवा एक मासा रूपा दंड होता है । ३३० । पुत्ररा रहित धान्य शाक मूल फल इन्हीं में से कोई एक वस्तु के चोराने में चोराने वाला उस वस्तु स्वामी का संबंधो हो (अर्थात् एक घाम बाम आदि संबंध सहित हो) तो पचास पण दंड देवे और संबंध रहित हो तो सौ पण दंड देवे । ३३१ । द्रव्य स्वामी के देखत संते बल से द्रव्य का हरण करे फेर पूकृत संते कहै कि हम ने नहीं हरण किया मो भी चोर कहाता है । ३३२ । जो मनुष्य और की द्रव्य को चोरावे अथवा अग्नि होच के जाला से अग्नि होच की अग्नि को और गृह्णाग्नि (अर्थात् बलि बैद्य देव कर्म के

मत्स्यानाम्पक्षिणाञ्चैव तैलस्य च घृतस्य च । मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसम्भवम् । ३२८ । अन्येषाञ्चैवमादीनामद्यानामो-
दनस्य च । पक्वान्नानाञ्च सर्वेषान्तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः । ३२९ । पुष्येषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च । अन्येषु परिपूतेषु
दण्डः स्यात्पञ्च कृष्णालः । ३३० । परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च । निरन्वये शतन्दण्डः सान्वयेऽर्धशतन्दमः । ३३१ ।
स्यात्साहसं त्वन्वयवत् प्रसभं कर्म यत्कृतम् । निरन्वयं भवेत्स्तेयं हत्वापव्ययते च यत् । ३३२ । यस्त्वेतान्युपकृतानि द्रव्याणि
स्तेनयेन्नरः । तमाद्यन्दण्डयेद्राजा यश्चाग्निश्चोरयेद्गृहात् । ३३३ । येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृपु विचेष्टते । तत्तदेव हरेत्तस्य
प्रत्यादेशाय पार्थिवः । ३३४ । पिता चार्यस्तुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः । नादंष्ट्रो नाम राज्ञोस्ति यः स्वधर्मेन तिष्ठति ।
३३५ । कार्पापणं भवेदंष्ट्रो यच्चान्यः प्राक्तनोजनः । तत्र राजा भवेदंष्ट्रः सहस्रमिति धारणा । ३३६ । अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य
स्तेये भवति किल्बिषम् । षोडशैव तु वैश्यस्य द्वाविंशत्क्षत्रियस्य च । ३३७ । ब्राह्मणस्य चतुः षष्टिः पूर्णम्वापि शतं भवेत् । द्विगुणा
वा चतुः षष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः । ३३८ । वानस्पत्यं मूलफलं दार्वगन्धर्थन्तथैव च । तृणञ्च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ।

लिये अन्न पक्ष जिस अग्नि में होता है) को चोरावे मो प्रथम साहस दंड पावे और फेर अग्नि स्थापन के लिये जो व्यय (अर्थात् खर्च) हो मो अग्नि स्वामी को देवे । ३३३ । जिस जिस अंग से पर द्रव्य को हरण करे उस उस अङ्ग को कटन करना कि जिस में फेर ऐसा कर्म न करे । ३३४ । राजा को अदंष्ट्र (अर्थात् दण्ड दंडन योग्य नहीं) कोई नहीं है पिता आचार्य मित्र माता भार्या पुत्र पुरोहित ये सभी अपने धर्म में स्थित न हों तो दंड के योग्य होते हैं । ३३५ । जिस अपराध में राजा को छोड़ कर और मनुष्य कार्पापण परिमित दंड के योग्य होता है उस अपराध में राजा सहस्र पण परिमित दंड के योग्य होता है । ३३६ । वस्तु के गुण दोष को नहीं जानने वाला जो शूद्र बैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण इन्हीं का जिस चोरी में जो दंड कहा है उस का अठ गुना सोलह गुना बत्तिस गुना चौंसठ गुना अथवा सौ गुना वा एक सौ अठ्ठाईस गुना दंड को क्रम से शूद्र बैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण पावे परंतु वस्तु का गुण और दोष को जानने वाले हों तो । ३३७ । । ३३८ । गवेई से

चोर नहीं जो वृक्ष आदि उस का मूल फल पुष्प और होम के लिये लकड़ी गो घास के लिये वृण इन सब को हरण करे तो उस को दंड न देना और वह अधर्म नहीं कहाता है यह मनु जी ने कहा । ३३८ । चोर को पड़ाके और यज्ञ कराके उस के हाथ से धन लेने की इच्छा करते जो ब्राह्मण है सो जैसा चोर है वैसा ही वह है । ३४० । ब्राह्मण जपिय वैश्य ये सब मार्ग में चले जाते हैं और भोजन को कुच्छ पास न हो तो पराये के खेत से दो ऊख और दो मूकिका को खेवें तो दंड देने के योग्य नहीं होते । ३४१ । दर्प करके पराये घोड़ा आदि जो बंधे नहीं हैं उन को बांधने वाला और घोड़ शाला में बंधे ऊए घोड़ा आदि को छोड़ देने वाला दास घोड़ा रथ इन्हीं का हरण करने वाला चोर के पाप को पाता है । ३४२ । इस विधि से चोरों का निग्रह करने वाला राजा इस लोक में यश को और परलोक में उत्तम सुख को पाता है । ३४३ । इंद्र के पद पर चढ़ने की इच्छा करने वाला विनाश रहित यश का इच्छा करने वाला राजा क्षण भर भी साहसिक

३३८ । यो दत्तादायिनो हस्तास्त्रिष्वेत ब्राह्मणो धनम् । याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः । ३४० । द्विजो ध्वजः क्षी-
खहतिर्दाविष्णू द्वे च मूलिके । आददानः परस्त्रे चान्न दण्डन्दातुमर्हति । ३४१ । असन्धितानां सन्धाता सन्धितानाञ्च मोक्ष-
कः । दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् । ३४२ । अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् । यशोस्मिन्प्राप्नु-
याल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् । ३४३ । ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेष्य शशास्त्रयमव्ययम् । नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकव्रतम् ।
३४४ । वाग्दुष्टान्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसितः । साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृतमः । ३४५ । साहसे वर्तमानन्तु योम-
र्षयति पार्थिवः । स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषश्चाधिगच्छति । ३४६ । न मित्रकारणाद्राजा विपुलादा धनागमात् । समुत्सृ-
जेत्साहसिकाग्नेर्बभूतभयावहान् । ३४७ । अस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मे यत्रोपहृद्यते । द्विजातीनाञ्च धर्माणां विल्लवे का-
लकारिते । ३४८ । आत्मनश्च परिचाले दक्षिणानाञ्च सङ्गरे । स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति । ३४९ । गुरुम्बा
बालहृद्दौ वा ब्राह्मणम्बा बहुश्रुतम् । आततायिनमायातं हन्या देवाधिचारयन् । ३५० । नाततायि वधे दोषो हन्तुर्भवति

(अर्थात् बल से कर्म को करने वाला) नरकी उपेक्षा (अर्थात् बहट्टियाना) न करे । ३४४ । गाली देने वाला और चोर दंड से मारने वाला इन दोनों से साहस करने वाला पापी है । ३४५ । साहसिक मनुष्य के अपराध को जो राजा सहन करता है सो झट पट नाश को और शत्रुता को पाता है । ३४६ । संपूर्ण जीव को भय देने वाला साहसिक नर को मित्रता से अथवा बड़त धन पाने से राजा न छोड़े । ३४७ । काल करके धर्म के नाश समय में ब्राह्मण जपिय वैश्य ये तीनों वर्ण शस्त्र को धारण करें । ३४८ । आत्मा यज्ञ की सामग्री स्त्री ब्राह्मण इन्हीं की रक्षा में और संघाम में धर्म से (अर्थात् बिष आदि से जो शस्त्र लिप्त नहीं उस से) नाश करत संते दोष को नहीं पाता । ३४९ । गुरु बाल हृद्ध बड़त पढ़ा ऊँचा ब्राह्मण ये सब आततायी (अर्थात् आग लगाने वाला बिष देने वाला धन लेने वाला खेत और स्त्री इन्हीं का हरण करने वाला) छोके आवै तो बिचार न करना इन्हीं को मारना । ३५० । आततायी के वध में मारने वाले को दोष नहीं होता प्रकाश

अथवा अप्रकाश जो मारने वाले की क्रोध से मारे गए उसकी प्रकाश अप्रकाश क्रोध को क्रम से पाता है । ३५१ । पर स्त्री के व्यभिचार में प्रवृत्त मनुष्यों को उद्देश करन हार इण्ड से चिन्ह करके देस से निकाल देवै । ३५२ । स्त्री के में इसी करके वर्णमंकर होता है जिस से जगत का नाश होता है (अर्थात् शुद्ध स्त्री से उत्पन्न पुरुष याग करै तो उस याग में अग्नि में जो आहुति पड़ती है सो सूर्य के पाम जाती है और वह आहुति पाके सूर्य वृष्टि करते हैं उस से जगत का भस्म होता है जब वर्णमंकर भया तब मूल का हरण करने वाला अधर्म उस से शुद्ध स्त्री से उत्पन्न कोई पुरुष मिलेगा नहीं तब जगत का नाश हो जायगा । ३५३ । एकांत में पर स्त्री से जो संभाषण करता है और पहिले से उस का दोष जाना गया है उस को पूर्व माहम दंड देना । ३५४ । जिस का दोष पहिले से जाना नहीं गया है और कोई कारण से एकांत में पर स्त्री से संभाषण करता है उस को दंड न देना । ३५५ । जल में पैठने की मार्ग ग्राम के बाहर टण लता से युक्त जन रहित स्थल बन नदी संगम इन स्थान में पर स्त्री से संभाषण करै तो संग्रहण को पाता है । ३५६ । माला गंध अनुलेपन भूषण बख इन्हीं का भोजना इसी आलिङ्गन आदि एक खट्वा पर बैठना यह सब मय-

कथ्यन । प्रकाशश्चाऽप्रकाशश्चा मन्युस्तमन्युमृच्छति । ३५१ । परदाराभिमर्षेषु प्रवृत्तानाम्महीपतिः । उद्देजनकरैर्देण्डैश्चि-
न्धित्वा प्रवासयेत् । ३५२ । तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसङ्करः । येन मूलहरोऽधर्मस्सर्वनाशाय कल्पते । ३५३ । पर-
स्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः । पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् । ३५४ । यस्त्वेनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत
कारणात् । न दोषम्प्राप्नुयात्किञ्चिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः । ३५५ । परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थे गच्छे वनेपि वा । नदीनाम्वापि
सम्भेदे स सङ्ग्रहणमाप्नुयात् । ३५६ । उपचारक्रियाकलिः स्पर्शा भूषणवाससाम् । सह खट्वासनञ्चैव सर्वे संग्रहणं स्मृतम् ।
३५७ । स्त्रियं स्पृशेद्देशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया । परस्परस्यानुमतं सर्वं सङ्ग्रहणं स्मृतम् । ३५८ । अव्राह्मणः सङ्ग्रहणे
प्राणान्तन्दण्डमर्हति । चतुर्णामपि वर्णानन्दारा रक्ष्यतमाः सदा । ३५९ । भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा । स-
म्भाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः । ३६० । न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिपिद्धः समाचरेत् । निपिडो भाषमाणस्तु सु-
वर्णन्दण्डमर्हति । ३६१ । नैव चारणदारेषु विधिर्नात्मापजीविषु । सज्जयन्ति हिते नारीर्निर्गृढाश्चारयन्ति च । ३६२ । कि-

हण कहाता है इस बात को मनु आदि ऋषि ने कहा । ३५७ । जो स्त्री का जघन आदि को छूता है अथवा पुरुष का वृषण आदि को स्त्री ने छुआ और पुरुष ने क्रोध न किया तो परस्परानुराग से सब संग्रहण कहाता है यह मनु आदि ने कहा । ३५८ । ब्राह्मण को काँड़ कर और वर्ण को संग्रहण में प्राणांतिक दंड देना क्यों कि चारों वर्ण को स्त्री अति रत्ना के योग्य हैं । ३५९ । भिक्षु काट दोषित (अर्थात् यज्ञ के लिये लिया है दोषित जिस -) रमोई करने वाला आदि ये सब भिक्षु आदि अपने कार्य के लिये स्त्रियों के साथ सम्भाषण करै इन को निवारण न करना । ३६० । एक बेर मना किया गया कि तुम उस स्त्री से न बोलना और फिर वह पुरुष उस स्त्री से सम्भाषण करै तो एक सुवर्ण (अर्थात् शास्त्रोक्त मोहर मासा मोना) दंड देवै । ३६१ । नट गवैया आदि की स्त्री और स्त्री के व्यभिचार की से जो जीविका करते हैं उन की स्त्रियों में पूर्व कथित विधि नहीं है क्योंकि वह सब आगे किये हुए अपनी स्त्रियों को सर्वत्र भेजते हैं । ३६२ । परंतु ये भी सब

परखी हैं इस लिये इन्हीं के साथ सम्भाषण से थोड़ा दंड सम्भाषण करने वाला पावे दासी और एक गृह में जिस स्त्री को रोक के रक्ता है वह और संन्यासिनी इन्हीं के साथ सम्भाषण करने वाला थोड़ा दंड को पावे । ३६३ । इच्छा को नहीं करती जो अपने समान जाति वाली कन्या उस को जो गमन करता है उस को उसी क्षण में लिङ्गच्छेदन आदि बध दंड देना परंतु ब्राह्मण को नहीं क्योंकि उस को शरीर दंड का निषेध है और इच्छा करने वाली कन्या अपने समान जाति वाली उस को गमन करे तो बध को नहीं पाता है । ३६४ । अपनी जाति से ऊंच जाति को भजन करने वाली कन्या थोड़ा भी दंड को नहीं पाती और अपने जाति से नीच जाति को भजन करने वाली कन्या को बांधि के गृह में स्थापन करना । ३६५ । इच्छा करने वाली अथवा न इच्छा करने वाली जो उत्तम जाति को स्त्री उस को सेवन करने वाला नीच जाति जो पुरुष से जाति की अपेक्षा करके अङ्गच्छेदन बध रूप दंड को योग्य होता है इच्छा करने वाली समान जाति को स्त्री तो वच्छ दे के रुवा करे तो दण्ड को योग्य नहीं होता परंतु पिता जब मारे तो उस को शुल्क (अर्थात् मोक्ष के योग्य द्रव्य) को देकर बिसाड़ करे

श्विदेव तु दाप्यः स्या सम्भाषान्ताभिराचरन् । प्रैथ्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च । ३६३ । प्रोऽकामान्द्रूपयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति । स कामान्द्रूपयंस्तुल्या न वधम्प्राप्नुयात्तरः । ३६४ । कन्याम्भजन्तीमुत्कृष्टं किञ्चिदपि दापयेत् । जघन्यं सेवमानान्तु संयताम्वासयेद्गृहे । ३६५ । उत्तमां सेवमानस्तु जघन्या वधमर्हति । शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि । ३६६ । अभिवह्य तु यः कन्यां कुर्याद्वर्षेण मानवः । तस्याशु कर्त्ये अङ्गुल्यौ दण्डश्चार्हति पट शतम् । ३६७ । स कामां द्रुपयंस्तुल्यो नाङ्गुलिच्छेदमाप्नुयात् । द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसङ्गविनिवृत्तये । ३६८ । कन्यैव कन्या या कुर्यात्तस्याः स्याद्विशतो दमः । शुक्लश्च द्विगुणन्दयाच्छिक्ताश्चैवाप्नुयादश । ३६९ । या तु कन्याम्प्रकुर्यात्कञ्ची सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति । अङ्गुल्योरेव वा छेदं खरेणोदहनन्तथा । ३७० । भर्तारं लंघयेद्य तु स्त्रीज्ञातिगुणदर्पिता । ताः श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहु संस्थिते । ३७१ । पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे । अभ्या दध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापवृत् । ३७२ । सम्बत्सराभिस्तस्य दुष्टस्य द्वि-

। ३६६ । जो मुख्य दस्ताकार करके समान जाति वाली स्त्री को अर्चकार करके गमन वर्धित योनि में अङ्गुली प्रक्षेप मात्र करके दूषित करता है उस पुरुष को दो अङ्गुली का छेदन करना और छ मोपण दण्ड देना । ३६७ । इच्छा करने वाली समान जाति की स्त्री का पूर्व कथित राति से दूषित करे तो अङ्गुली-च्छेद को नहीं पाता परंतु प्रसङ्ग निवृत्ति के लिये दो मोपण दण्ड करना । ३६८ । जो कन्या कन्या की योनि में अङ्गुली प्रक्षेप करके नाश करे उस को दो मोपण दंड देना और अङ्गुली प्रक्षेप करने वाली कन्या का पिता दुना शुल्क देवे । ३६९ । जो स्त्री कन्या की योनि में अङ्गुली प्रक्षेप करके दूषित करे उस का गृह मुड़ा देना और दो अङ्गुली का छेद करना गदहा पर चढ़ा के राजमार्ग (अर्थात् सड़क) में गमन कराना अपराधानुसार से दंड विवक्ष को जानना । ३७० । जाति और गुण दम के गर्व से भर्ता के लंघन करने वाली स्त्री को राजा बहुत अनुषंगे रथीप में वृत्ता से भोजन करावे । ३७१ । पूर्व कथित पर स्त्री गमन करने वाले पुरुष को तप्त स्नान शय्या में स्थापन करके चारों ओर काष्ठ रख के आग लगा देवे जिस में वह पापी दग्ध होवे । ३७२ । पर स्त्री ब्राह्म्य (अर्थात् ब्राह्मण

काल में जिस का यज्ञोपवीत नहीं हुआ) की स्त्री चाण्डाल की स्त्री इन्हीं का गमन करके दण्ड पुरुष बिना दंड के पाए हुए एक वर्ष के उपरान्त फिर उसी स्त्री का गमन करे तो एक बेर गमन करने में जो दण्ड कहा है उस का दण्ड देवे । ३७३ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की स्त्री पति आदि से अरक्षित हो अथवा रक्षित हो उस का गमन करने वाला शूद्र का लिङ्गच्छेद सर्व द्रव्य हरण वध दंड करना तिस में अरक्षिता में लिङ्गच्छेद सर्वस्वहरण करना रक्षिता में लिङ्गच्छेद सर्वस्वहरण वध करना । ३७४ । वैश्य को रक्षित ब्राह्मणों गमन में एक वर्ष निरोध (अर्थात् जेहलखाना में रहना) के अनन्तर सर्वस्वहरण दंड देना और इसी अन्याय में क्षत्रिय को सहस्र पण दंड देना गदहा के मूत्र से मूड़ मूड़ा देना । ३७५ । पति आदि से अरक्षित ब्राह्मणी का गमन करने वाला वैश्य और क्षत्रिय क्रम से पञ्च शत पण सहस्र पण दंड देवे । ३७६ । पति आदि से रक्षित ब्राह्मणी का गमन करने वाला क्षत्रिय वैश्य शूद्र को नाई दंड के योग्य है (अर्थात् सर्वाङ्ग से हीन करनेसे) अथवा लाल कुश से बेठन करके वैश्य को दहन करना और शरपत्र (अर्थात् मरहरी) से बेठन करके क्षत्रिय को दहन करना यह दंड गुणवती

गुणो दमः । ब्राह्मण्या सह संवासे चाण्डल्यातावदेव तु । ३७३ । शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा दैजातं वर्णमावसन । अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण ह्येतैः । ३७३ । वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः । सहस्रं क्षत्रिया दंडो मोण्डश्चमूत्रेण चार्हति । ३७५ । ब्राह्मणो यद्यगुप्तान्तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ । वैश्यस्यश्च शतकुर्व्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् । ३७६ । उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह । विलुप्तौ शूद्रवहंश्चौ दग्धयौ वा कटाग्निना । ३७७ । सहस्रम्ब्राह्मणो दंडो गुप्तास्त्रिप्राम्बलावृजन् । शतानि पञ्च दंडः स्यादिच्छत्या सह सङ्गतः । ३७८ । भौक्ष्यम्प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते । इतरेषां वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् । ३७९ । न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् । राट्पादेनं वद्धिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् । ३८० । न ब्राह्मणवधाङ्गूयानधर्मो विद्यते भुवि । तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् । ३८१ । वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो ब्रजेत् । यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः । ३८२ । सहस्रम्ब्राह्मणो दण्डन्दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन । शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहस्रो वै भवेद्दमः । ३८३ । क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतन्दमः । मूत्रेण मौञ्जमच्छेत् क्षत्रिया दण्डमेव वा । ३८४ । अगुप्ते

ब्राह्मणों के गमन में जानना । ३७३ । पति आदि से रक्षित ब्राह्मणी में बल से गमन करने वाला ब्राह्मण को सहस्र पण दंड देना और उस ब्राह्मणी के दण्ड से गमन करने वाला ब्राह्मण को पांच सौ पण दंड देना । ३७८ । प्राणान्तिक दंड के स्थान में ब्राह्मण को मूड़ मूड़ाना यही दंड है और बर्षों की प्रणान्तिक दंड है । ३७८ । सर्व पाप में स्थित भी ब्राह्मण हो परंतु उस का वध कभी न करना धर्म संहित और शरीर दण्डरहित राज्य में निकाल देना । ३८० । संसार में ब्राह्मण के वध से दूसरा बड़ा अधर्म कोई नहीं है इस लिये ब्राह्मण वध का मन न भो राजा चिंतन न करे । ३८१ । पति आदि से रक्षित वैश्या का गमन क्षत्रिय करे अथवा वैश्या की क्षत्रिया का गमन वैश्य करे तो पति आदि से अरक्षित ब्राह्मणी के गमन में जो दंड कहा है सोई दंड दोनों को देना । ३८२ । पति आदि से रक्षित क्षत्रिया और वैश्या का गमन करने वाला ब्राह्मण को सहस्र पण दंड देना और पति आदि से रक्षित शूद्रा के गमन में क्षत्रिय वैश्य का सहस्र पण दंड

देना । ३८२ । पति आदि से अरक्षित स्त्रियां में गमन करने वाला वैश्य को पांच सौ पण दंड देना और उसी में गमन करने वाला क्षत्रिय को गद्गहा के मूच-के त्रिर मुड़ाये देना यही दंड है । ३८४ । पति आदि से अरक्षित स्त्रियां वैश्या शूद्रा का गमन करने वाले ब्राह्मण को पांच सौ पण दंड देना और चांडाल आदि की स्त्री में गमन करने वाला ब्राह्मण को सहस्र पण दंड देना । ३८५ । चोर और परस्त्री में गमन करने वाला दृष्टवचन बोलने वाला बलात्कार करके कर्म करने वाला दंड आदि से मारने वाला ये सब जिस राजा के राज्य में नहीं हैं सो राजा इंद्रकोक को पाने वाला है । ३८६ । अपने राज्य में इन पांचों का निग्रह करने वाला राजा राजों में साम्राज्य (अर्थात् मंडलेश्वर का कर्म) करने वाला है और इस लोक में यश करने वाला है । ३८७ । अपने कर्म में समर्थ और दृष्टता से रहित क्षत्रिक और यजमान इन दोनों में एक को एक त्याग करे तो त्याग करने वाले को सौ पण दंड देना । ३८८ । पातित्य दोष से रहित माता पिता की रत्न इन्हीं में से कोई एक का त्याग करे तो ऋ सौ पण दंड देवे । ३८९ । ब्राह्मण स्त्रिय वैश्यों का गार्हस्थ्य आदि आश्रम में शास्त्रार्थ का विवाद होवे तो राजा

स्त्रियां वैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् । शतानि पञ्च दंष्ट्रः स्यात्सहस्रं त्वन्यजस्त्रियम् । ३८५ । यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्य-
स्त्रोगो न दृष्टवाक् । न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शकलोकभाक् । ३८६ । एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानाम्बिषये स्वके ।
साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः । ३८७ । ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यश्चर्त्विक् त्यजेद्यदि । शक्तकर्मण्यदृष्टश्च तयो-
र्दण्डः शतं शतम् । ३८८ । न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति । त्यजन्नपतितानेतान् राजा दंष्ट्रः शतानि षट् । ३८९ ।
आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः । न विब्रूयानृपो धर्मश्चिकीर्षन हितमात्मनः । ३९० । यथाहमेतान्भयर्थं ब्राह्म-
णैस्तद्द पार्थिवः । सात्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मम्प्रति पादयेत् । ३९१ । प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशति स्त्रिये । अर्हा-
वभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् । ३९२ । ओचियः ओचियं साधुभूतिदृष्ट्येष्टभोजयन् । तदन्नं द्विगुणन्दाय्यो रक्ष्यश्चैव
माषकम् । ३९३ । अंधो जडः पीठसर्पि सप्तत्यास्यविरथ यः । ओचियेषूपकुर्वन् न दाप्याः केनचित्कारम् । ३९४ । ओचियं
व्यधितातीं च वालवृद्धावकिञ्चनम् । महाकुलीनमार्यश्च राजा संपूजयेत्सदा । ३९५ । शास्त्रलोफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकाः

अपने हित की इच्छा करत संते यह शास्त्रार्थ है ऐसा साहस करके न बोलै । ३९० । ब्राह्मणों के संहित राजा विवाद करने वालों को तथा योग्य पूजा करके पहिले शांति कर्म से उन्हीं के क्रोध को दूर करके अपने धर्म को कथन करै । ३९१ । मंगल शांति कर्म में बीच ब्राह्मण के भोजन कराते ऊए प्रातिवेश्य (अर्थात् अपने गृह के समीप गृह में रहने वाला योग्य ब्राह्मण) और अनुवेश्य (अर्थात् अपने गृह से एक गृह छोड़ के दूसरे गृह में रहने वाला योग्य ब्राह्मण) इन दोनों को भोजन न करावे ब्राह्मण तो एक मासा रूपा दंड देवे । ३९२ । विभव कर्म (अर्थात् विवाह आदि उत्सव कर्म) में बेद पाठी और प्रातिवेश्य अनुवेश्य बेद पाठी इन्हीं को भोजन न करावे तो एक मासा माना और भोजन का दूना अन्न दंड देवे । ३९३ । अंधा बहिरा पंगुल और पूर्ण मत्तर वर्ष वाला धन धान्य से बेद पाठियों का उपकार करने वाला इन सभी से लोण कोश वाला भी राजा अपने गृहण योग्य कर को न लेवे । ३९४ । बेद पाठी व्याधित दुःखित बाल वृद्ध अकिञ्चन (अर्थात् जिस को

कुच्छ नहीं है) महा कुलीन उदार चरित वाला इन सभी का सर्व काल में राजा पूजन करे । ३८५ । सेमर की चिक्कन पीढ़ा पर धीरे से बख को धावी धावे और दूसरे का बख दूसरे को न देवे और बहुत दिन तक अपने गृह में न रखे । ३८६ । जोलहा बख बनाने के लिये दस गंडा भर मूत लेंगे तो ग्यारह गंडा भर बख देवे इस से कम देवे तो बारह पण दंड राजा को देके और स्वामी का संतोष करे । ३८७ । शुष्क (अर्थात् राजा के ग्रहण योग्य भाग) में कुशल और संपूर्ण वस्तु के बेचने में पंडित ऐसा पुरुष जिस वस्तु का जो मोल स्थापन करे उस में जो लाभ हो उस के बीसवां भाग को राजा ग्रहण करे । ३८८ । राजा के योग्य जो वस्तु है और जिस वस्तु को और के पास बेचने को राजा ने मना किया है उन्हीं को लोभ में और म्यान में बेचे तो उस के सर्व धन को राजा हरण करे । ३८९ । शुष्क स्थान (अर्थात् राज भाग ग्रहण स्थान) को परित्याग करत संत अकाल में क्रय विक्रय करत संत ताल में झूठ बोलत संत राज भाग का आठ गुना दंड देवे । ४०० । सब वस्तुओं का आना जाना स्थिति चय दृष्टि इन सब को बिचार के क्रय विक्रय करना । ४०१ । पांच पांच दिन बीत संत अथवा पक्ष पक्ष बीत

शमैः । न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् । ३८६ । तन्तुवायो दशपलन्दद्यादेकपलाधिकम् । अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकन्दमम् । ३८७ । शुष्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः । कुर्युरर्घं यथा पण्यन्ततो विंशं नृपो हरेत् । ३८८ । राज्ञः प्रस्थातभागानि प्रतिपिज्ञानि यानि च । तानि निहरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः । ३८९ । शुष्कस्थानं परिहरन्न काले क्रयविक्रयो । मिथ्यावादी च संस्थाने दाप्योष्टगुणमत्ययम् । ४०० । आगमन्निर्गमं स्थानन्तथा दृष्टिक्षयावभौ । विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत् क्रयविक्रयौ । ४०१ । पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते । कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनमृपः । ४०२ । तुल्यमानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्कुलक्षितम् । पटसु पटसु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् । ४०३ । पणं यानन्तरे दाप्यम्यौरुषोऽङ्गपणन्तरे । पादम्यशुश्च योपिच्च पादाङ्गं रिक्तकः पुमान् । ४०४ । भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यन्दाप्यानि सारतः । रिक्तभागानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छदाः । ४०५ । दीर्घाध्वनि यथा देशं यथा कालन्तरो भवेत् । नदीतीरेषु तद्विद्यात्ममुद्रे नास्ति लक्षणम् । ४०६ । गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः । ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तुरिकन्तरे । ४०७ ।

संत सब वस्तुओं के मोल को स्थापन करे । ४०२ । ममीका तोला मेर पमेरी आदि का और प्रम्य द्रोण आदि पात्र का नूनाधिक को राजा देखे पुनः परीक्षा कठण कठण महीना में करे और राज मुद्रा से चिह्नित सब वस्तु को करे । ४०३ । नौका पर चढ़के उतरने में यान (अर्थात् सवारी) के पीछे एक पण लेना भार सहित पुरुष पीछे आधा पण पशु और स्त्री इन्हीं के पीछे पण का चतुर्थांश बोझ रहित पुरुष पीछे पण का अष्टमांश लेना । ४०४ । पूर्ण भाण्ड सहित गाड़ी आदि से भरी ऊई वस्तु को अपेक्षा करके सारामार बिचार करके तरण का कल्पना करना पूर्ण भाण्ड जो नहीं है और सामग्री रहित जू पुरुष हैं उन्हीं से यत्किञ्चित् (अर्थात् छोड़ा) लेना । ४०५ । नदीमार्ग से दूर जाने में नदी का प्रबल वेग स्थिर जल योग्य वर्षा काल आदि का बिचार करके नाव का भाड़ा कल्पना करना और समुद्र में तो बाधु के आधीन गमन है इस लिये पूर्व कथित वार्ता का बिचार नहीं है किंतु जो उचित हो सो लेना । ४०६ । दो मास के ऊपर के गर्भ वाली

स्त्री संन्यासी बानप्रस्थ ब्राह्मण ब्रह्मचारी इन सब से तरण का मोल न लेना । ४०० । नाव में केवटों के अपराध से कोई वस्तु का नाश हो तो उस को सब केवट मिलके अपने अपने अंश से देंगे । ४०८ । केवटों के अपराध से जल में गड़ उई वस्तु का व्यवहार निर्णय को कष्टा दैविक नाश में केवटों का नियम नहीं है । ४०८ । बनियां का कर्म बाज खेतो पशु रत्ना इन सब कर्मों को बनियां से करावै ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की सेवा शूद्रों से करावै । ४१० । जीविका से कष्ट को पाए ऊँच क्षत्रिय वैश्य को दया करके ब्राह्मण अपने कार्य को कराते ऊँच पोषण करें । ४११ । कर्म करने की इच्छा नहीं करने वाले जो घञ्जोपवीत आदि संस्कार को पाए ऊँच ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन्हीं से अपने प्रभाव करके लोभ से कर्म कराने वाला ब्राह्मण उस से छ सौ पण दंड राजा लेवे । ४१२ । मोल लिया हो अथवा मोल न लिया हो जो शूद्र उस से दास्य कर्म कराना क्योंकि ब्राह्मण के दास्य कर्म के लिये ब्रह्मा ने शूद्र को उत्पन्न किया है । ४१३ । दास्य कर्म से दाम को स्वामी त्याग न करे तो दाम दास्य कर्म से छूटता नहीं क्योंकि दास्य कर्म शूद्र के स्वभाव से उत्पन्न है उस कर्म को कौन छुड़ाय सकता है

यन्नाविकिञ्चिद्वाशानां विशीर्येतापराधतः । तद्वाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वर्तोशतः । ४०८ । एष नैयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः । दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति नियमः । ४०८ । वाणिज्यं कारयेद्द्वैशं कुशीदं कृपिमेव च । पशूनां रक्षणञ्चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् । ४१० । क्षत्रियञ्चैव वैश्यञ्च ब्राह्मणो वृत्तिकर्पितौ । विभ्रयादानृशंस्थेन स्वानि कर्माणि कारयन् । ४११ । दास्यं तु कारयेन्नोभाद्राह्मणः संस्कृतान द्विजान् । अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दंशः शतानि पट । ४१२ । शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा । दास्यायैव हि सृष्टोसौ ब्राह्मणस्य स्वयम्भुवा । ४१३ । न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्यादिमुच्यते । निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति । ४१४ । ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदक्षिणैः । पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः । ४१५ । भार्यापुत्रश्च दासश्च चय एवाधनाः स्मृताः । यन्ने समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम् । ४१६ । विभ्रयं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत् । न हि तस्यास्ति किञ्चित्त्वं भर्तृहार्यधनो हि सः । ४१७ । वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् । तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदञ्जगत् । ४१८ । अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्ताम् वा-

। ४१४ । ध्वजाहृत (अर्थात् संग्राम से जीत के लिए) भक्त दास (अर्थात् भोजन के अर्थ दास्य) कर्म का स्वीकार करने वाला गृहज (अर्थात् गृह में दासी से उत्पन्न) क्रीत (अर्थात् मोल लिया) दाक्षिण (अर्थात् दान से मिला) पैत्रिक (अर्थात् पिता पितामह क्रम से प्राप्त भया) दंड दास (अर्थात् दंड आदि को शोधन के अर्थ दास्य भाव का स्वीकार करने वाला) ये सात दास की धानि हैं । ४१५ । भार्या पुत्र दास ये तीनों धन से रहित हैं ये सब धन को अर्जन करें तो जिस के ये तीनों हैं उसी का धन है । ४१६ । दास शूद्र से धन ग्रहण ब्राह्मण करे इस में कुछ बिचार न करे क्योंकि उस का कुछ स्वत्व नहीं है वह अधन है वह जो धन अर्जन करे उस धन का स्वामी उस का भर्ता है । ४१७ । वैश्य और शूद्र ये दोनों अपने कर्म से रहित न होने पावें कदाचित् ये दोनों अपने धर्म से च्युत हों तो इस जगत् को क्षोभित (अर्थात् आकुलित) करें । ४१८ । कर्म को सिद्धि और वाहन आय (अर्थात् प्राप्ति) व्यय (अर्थात् खर्च) कोष (अर्थात् खज़ाना) आकर (अर्थात् खानि) इन

सभों को नित्य ही देखे । ४१८ । इस रीति से संपूर्ण व्यवहारों को समापन करता ऊँचा राजा संपूर्ण पाप को छोड़कर परम गति को पाता है ॥ ४२० ॥
 ॥ • ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लुक भट्ट व्याख्यानुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल मिश्र कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत पाठ शालीय धर्म शास्त्रि
 गुणज्ञान शर्म पंडित हतायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ • ॥ धर्म मार्ग में स्थित जो स्त्री और पुरुष इन दोनों के संयोग और वियोग में नित्य जो धर्म है उस को
 कहेंगे । १ । रात्रि दिन अपने पुरुषों से स्त्रियों को अस्वतंत्र (अर्थात् पराधीन) करना विषयों में जो लगी हैं उन को अपने वश में स्थापन करना । २ । बाह्यावस्था में
 पिता युवावस्था में पति वृद्धावस्था में पुत्र स्त्रियों की रक्षा करते हैं स्त्री स्वतंत्र (अर्थात् अपने अपने अधीन) होने के योग्य नहीं होती हैं । ३ । दान समय में
 कन्या को न देवें तो पिता दोषी होता है और अतु काल में स्त्री का गमन पति न करे तो दोषी होता है भर्ता के मरे मंते माता की रक्षा पुत्र न करे तो दोषी

होनानि च । आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोपमेव च । ४१९ । एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समापयन् । व्यपोह्य किल्बिषं
 सर्वम्प्राप्नोति परमाङ्गतिम् । ४२० ॥ * ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे मृगुप्रोक्तायां संहितायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ • ॥
 पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्तन्ति तिष्ठतोः । संयोगे विप्रयागे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् । १ । अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्य्याः
 पुरुषैः स्वैर्हिवा निश्चयम् । विषयेषु च सज्जन्यः संस्थाप्याद्यात्मनो वशे । २ । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । रक्षन्ति
 स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति । ३ । कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन पतिः । मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुर-
 रक्षिता । ४ । सृष्टेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः । द्योर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः । ५ । इमं हि सर्व-
 वर्णानाम्प्रयत्ने धर्ममुत्तमम् । यतंते रक्षितुं भार्या भर्तारो दुर्बला अपि । ६ । स्वाम्प्रसूतिश्चरित्रश्च कुलमात्मानमेव च ।
 स्वञ्च धर्म्मप्रयत्नेन भार्या रक्षन्ति रक्षति । ७ । पतिर्भार्यां सम्प्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते । जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां
 जायते पुनः । ८ । यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथा विधम् । तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः । ९ । न काश्चि-
 द्योपितः शक्तः प्रसङ्ग परिरक्षितुम् । एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् । १० । अर्थस्य संग्रहे चैनां व्ययेचैव नियोज-

होता है । ४ । थोड़े प्रसंग से भी विशेष करके स्त्रियों की रक्षा करना और स्त्री अरक्षित नहीं तो दोनों कुल को (अर्थात् पिता कुल भर्ता कुल को) शोक दंती है । ५ ।
 सभ वर्णों के इस उत्तम धर्म को देखते हुए दुर्बल भर्ता भी भार्या की रक्षार्थ यत्न करते हैं । ६ । अपनी संतति और चरित्र कुल आत्मा अपना धर्म इन सभ को भार्या
 रक्षण करत मंते रक्षा करता है । ७ । पति भार्या में प्रवेश करके गर्भ होके मसूर में उत्पन्न होता है जाया में जायात्व धर्म वही है कि जाया में आप उत्पन्न होंगे । ८ ।
 जैसे मनुष्य का सेवन स्त्री करती है तैसा ही पुत्र उत्पन्न करती है इस लिये संतति के विग्रहार्थ बल पूर्वक स्त्री की रक्षा करना चाहिए । ९ । ठटते कोई पुरुष
 स्त्री का रक्षा करने में समर्थ नहीं होता है आगे कहेंगे जो उपाय उस से रक्षा करने के समय पुरुष होता है । १० । अर्थ का संग्रह व्यय कर्म (अर्थात् खर्च) पतिव्रता

धर्म अन्न बनाना गृह की सामग्री को देखना इन सब कर्मों में अधिकार देना । ११ । आज्ञा करने वाले अच्छे पुरुष से गृह में रोकी हो स्त्री तिस पर भी रक्षित नहीं होती अपने को आप जो रक्षा करती हैं वही सुरक्षित होती हैं । १२ । मद्यपान दुर्जन संग पति का विरह इधर उधर घूमना अकाश में सोना और के गृह में बास ये ह नारी के दूषण हैं । १३ । स्त्री रूप और वय इस्को नहीं देखती मुरूप हो अथवा कुरूप हो परंतु पुरुष हो उसी का भोग करती हैं । १४ । यत्न पूर्वक रक्षित भी स्त्री हो परंतु पुंस्त्वलीपना चलचित्तता प्रेम का अभाव स्वभाव इन करके भर्ता का बिकार करत ही है । १५ । ब्रह्मा के सृष्टि समय से स्त्रियों का यह स्वभाव जानके रक्षा के लिये पुरुष यत्न को करे । १६ । शय्या आसन अलंकार इन्हों को बनाने का स्वभाव काम क्रोध कठोरता द्रोह भाव कुचाल इन सब को स्त्रियों के लिये मनु जी ने सृष्टि के आदि में कल्पना किया (अर्थात् दिया) इस लिये यत्न से रक्षा करना चाहिए । १७ । मंत्रों करके क्रिया स्त्रियों की नहीं है यह धर्म व्यवस्था के प्राप्त है इन्द्रिय और मंत्र इन दोनों में स्त्री रक्षित है असत्य की नाईं अशुभ है यह शास्त्र की मर्यादा है । १८ । स्त्रियों का

येत् । शौचे धर्मोन्नपत्त्याश्च पारिणा द्यस्य चेक्षणे । ११ । अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैरातकारिभिः । आत्मानमात्मनायास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः । १२ । पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् । स्वप्नोन्मत्तगोहवासश्च नारी संदूषणानि षट् । १३ । नैता रूपं प्रतीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः । सुरूपम्वा विरूपम्वा पुमानित्येव भुञ्जते । १४ । पौंश्चल्याश्चलचित्ताश्च नैस्ते ह्याश्च स्वभावतः । रक्षिता यत्नतोपीह भर्तृघेता विकुर्वते । १५ । एवं स्वभावं ज्ञात्वासां प्रजापति निसर्गजम् । परमं यत्नमातिष्ठेत्युरुषो रक्षणम्पुति । १६ । शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम् । द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् । १७ । नास्ति स्त्रीणां क्रिया मंचरिति धर्मो व्यवस्थितः । निरिन्द्रिया ह्यमंचाश्च स्त्रियोऽन्तर्मितिस्यितिः । १८ । तथा च श्रुतयो वहव्यो निगीता निगमेष्वपि । स्वालक्षण्यापरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः । १९ । यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता । तन्मे रेतः पिता वृक्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् । २० । ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा । तस्यैव व्यभिचारस्य निन्वः सम्यगुच्यते । २१ । यादृग्गुणेन भर्ता स्त्री संयुज्येत यथाविधि । तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा । २२ । अक्षमास्त्रा

व्यभिचार शीलता स्वभाव है यह कहा तिस में श्रुति प्रमाण देते हैं ब्रह्म श्रुति वाक्य में लिखा है कि हम नहीं जानते ब्राह्मण हैं कि अब्राह्मण हैं यह आदि वेद में लिखा है उस में प्रायश्चित्त रूप जो श्रुति है उस को मुने । १९ । कोई पुरुष माता का मानसव्यभिचार देख के कहता है कि मन बाणी काय कर्म करके पति को छोड़कर दूसरे पुरुष की इच्छा न करे सो पतिव्रता कहाती है उस से भिन्न अपतिव्रता कहाती है मेरी माता अपतिव्रता होकर पर पुरुष में लोभ किया वह पर पुरुष संकल्प दुष्ट माता का रजरूप बीर्य को मेरा पिता शुद्ध करे इस श्लोक रूप मंत्र का प्रथम से तीन पाद स्त्रियों के व्यभिचार शीलता का बोधक है यह मंत्र चातुर्मास्य याग में काम आती है । २० । चिन्त करके पति का अनिष्ट जो कुछ ध्यान करती है उस व्यभिचार का पूर्व कथित मंत्र सुन्दर शोधन है यह मनु आदि ऋषियों ने कहा । २१ । जिस विधि करके जैसे पुरुष से संयोग स्त्री करतो है तैसा ही आप होती है जैसे समुद्र करके मदी । २२ ।

अधम योनि से उत्पन्न अन्न माला नाम की स्त्री ने वज्रिष्ठ ऋषि का संयोग किया और सारंगी ने मद पाशका संयोग किया दोनों पूजित ऊर्ध्व । २२ । इन्हें आदि और भी स्त्री नीच योनि से उत्पन्न ऊर्ध्व इस लोक में अपने अपने भर्ता के गुणों से बड़ाई के प्राप्त ऊर्ध्व । २४ । स्त्री पुरुषों की नित्य शुभ यात्रा को मैं ने कहा अब इस लोक में परलोक में उत्तर काल में सुख हेतु जो प्रजा धर्म है उस को जानो । २५ । गृह में उत्पत्ति के लिये बड़ी भाग्य वाली पूजा के योग्य गृह की दीप्ति स्त्री और लक्ष्मी हैं इन्हों में विशेष कुछ नहीं है दोनों समान हैं । २६ । पुत्र और कन्या इन्हों की उत्पत्ति उत्पन्न भये का रक्षण नित्य ही लोक यात्रा इन सभी का प्रत्यक्ष आदि कारण स्त्री है । २७ । मंति धर्म कार्य उत्तम सेवा अपना और पितर इन दोनों का स्वर्ग ये सब स्त्री के अधीन हैं । २८ । मन बाणी देह से संयत (अर्थात् दोष रहित) होकर अपने पति को छोड़कर दूसरे पुरुष का संयोग जो स्त्री नहीं करती सो भर्तृ लोक को पाती है और लोक में भले लोग

वशिष्ठेन संयुक्ताधमयोनिजा । शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् । २३ । एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्पृष्ठप्रसूतयः । उत्कर्षं योपितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः । २४ । एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा । प्रेत्येह च मुखोदर्का-
न्प्रजाधर्मान्निबोधत । २५ । प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः । स्त्रियः त्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन । २६ । उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् । प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् । २७ । अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा । दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह । २८ । पतिं यानाभिचरति मनोवाग्देहसंयता । सा भर्तृलोकाना-
प्नोति सद्भिः साध्वीति चाच्यते । २९ । व्यभिचारान् भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निश्चिताम् । ऋगालयोनिश्चाप्नोति पापरोगैश्च पोद्यते । ३० । पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः । विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासन्निबोधत । ३१ । भर्तुः पुत्रम्विजानंति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि । आहुरुत्पादकक्लेचिदपरे श्लेचिणम्विदुः । ३२ । श्लेचभूतास्मृता नारी बीजभृतः स्मृतः पुमान् । श्लेचबी-
जसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् । ३३ । विशिष्टं कुचचिदीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुचचित् । उभयन्तु समं यच्च सा प्रसूतिः प्रश-
स्यते । ३४ । बीजस्यैव च योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते । सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता । ३५ । यादृशन्मूष्यते बीजं श्लेचे कालोपपादिते । तादृगोऽहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्यज्जितं गुणैः । ३६ । इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते । न च यो-

उस को साध्वी कहते हैं । २९ । लोक में भर्ता के व्यभिचार से स्त्री निन्दित होती है और मित्रार की योनि को पाती है पाप रोगों करके पीड़ित होती है । ३० । पुराने अच्छे बड़े ऋषियों ने पुत्र की प्रति संसार के हित पुण्य रूप जो धर्म कहा उस को जानो । ३१ । भर्ता का पुत्र है ऐसा सब जानते हैं और भर्ता में दो प्रकार की श्रुति है बीज वाले का पुत्र है ऐसा कोई कहते हैं श्लेच वाले का पुत्र है ऐसा कोई कहते हैं । ३२ । श्लेच भूत नारी है बीज रूप पुरुष है श्लेच बीज के संयोग से सब देह वालों की उत्पत्ति है । ३३ । कहीं बीज बड़ा है कहीं योनि बड़ी है जहाँ दोनों सम हैं सो मंति बहुत अच्छी है । ३४ । बीज और योनि इन दोनों में बीज बड़ा है सब जीवों की उत्पत्ति बीज के लक्षण करके लक्षित है । ३५ । बीज बाने के समय में श्लेच में जैसा बीज बाते है तैसा अपने गुणों करके युक्त

उत्पन्न होता है। ३६। पंच महा भूतों में आरंभ के प्राप्त जितने जीव हैं उन्हीं की नित्य योनि (अर्थात् कारण) सेच है और कोई भी योनि के गुण की पुष्टि में बीज अपेक्षा नहीं करता इस लिये बीज ही प्रधान है। ३७। एक ही खेत में बोने की समय में खेती करने वाले ने यव गोह्वं चना आदि बीज को बोया और वह बीज अपने स्वभाव में नाना प्रकार होता है भूमि तो एक रूप है परंतु बीज एक रूप नहीं होता इस लिये बीज ही प्रधान है। ३८। ब्रोहि (अर्थात् घाठी आदि) बालि (अर्थात् धान आदि) मूंग तिल उड़ुद यव लहसुन जख ये सब बोए मंते नामा रूप से उगते हैं। ३९। बोया और उगा और यह नहीं होता किंतु जो बोते हैं वही उगता है। ४०। अब सेच का प्राधान्य देखाते हैं इस कारण से नम अच्छे जानने वाले ज्ञान (अर्थात् वेद) विज्ञान (अर्थात् व्याकरण शास्त्र आदि वेद का अंग) इन्हीं के जानने वाले आयुष की इच्छा करने वाले जो मनुष्य हैं सो परस्त्री में बीज को कभी न डालें। ४१। जिस प्रकार से परस्त्री में बीज को न बोना इस अर्थ में पूर्व काल के जानने वाले ऋषियों ने वायु का कहा ऊआ जो गाथा (अर्थात् कंद विशेष युक्त वाक्य) उस का कीर्तन किए हैं। ४२। आकाश

निगुणान्कांश्चिद्वीजं पुष्यति पुष्टिपु। ३७। भूमावप्येककेदारैः कालोत्तानि कृषीवलैः। नानारूपाणि जायन्ते वीजानीह स्वभावतः। ३८। ब्रोहयः शालयो मुद्गास्तिला मापास्तथा यवाः। यथा बीजम्परोहन्ति लघुनानीक्षवस्तथा। ३९। अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते। उष्यते यद्धि यद्वीजन्तत्तदेव प्ररोहति। ४०। तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना। आयुष्कामेन वप्तव्यन्न जातु परयोपिति। ४१। अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः। यथा बीजन्न वप्तव्यं पुंसापरपरिग्रहे। ४२। नश्यतीपुयथा विद्धः खेविद्धमनुविध्यतः। तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजम्परपरिग्रहे। ४३। पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदोविदुः। स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम्। ४४। एतावानेव पुरुषो यज्जायात्माप्रजेतिह। विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना। ४५। न निष्कुर्याद्विसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते। एवं धर्मम्विजानन्ममः प्राक् प्रजापतिनिर्मितम्। ४६। सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते। सकृदाह ददानीति चीण्येतानि सतां सकृत्। ४७।

यथा गोऽश्वोऽपि दासीपु महिष्यजाविकसु च। नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्यङ्गनास्वपि। ४८। येऽस्त्रेचिणो बीजवन्तः में बाण से विद्ध जाए पत्नी का फेर बाण से बंध करने वाले का बाण जिस प्रकार से नाश के प्राप्त होता है (अर्थात् प्रथम जिस ने बंध किया उसी को मृग लाभ होता है) तिसी प्रकार से परस्त्री में बीज नाश के प्राप्त होता है (अर्थात् जिस की स्त्री है उसी को अपत्य लाभ होता है)। ४३। इस पृथिवी को पृथु राजा ने प्रथम ग्रहण किया पोंछे अनक राजों के संबन्ध भए मंते भी पृथु को भार्या है यह अतीत काल के जानने वालों ने जाना है और जिस ने जंच नीच भूमि के सम किया है उसी का खेत है जिस ने प्रथम बाण से बंध किया है उसी का वह मरा ऊआ पत्नी है यह पूर्व काल के जानने वालों ने कहा। ४४। एक ही पुरुष नहीं होता किंतु भार्या और अपनी देह अपत्य (अर्थात् पुत्र कन्या) यह सब मिल के पुरुष कहाता है यह ब्राह्मणों ने कहा कि जो भर्ता है सोई भार्या है यह ऋषियों ने कहा। ४५। बंचने से और त्याग से स्त्री भार्या की भर्ताल (अर्थात् भार्या का धर्म) से नहीं छूटती पूर्व ही ब्रह्मा ने यह धर्म का निर्णय किया यह हम सब जानते हैं ऐसा मनु जी ने कहा। ४६। विभाग कन्यादान देंगे यह तीनों बात भले लोगों को एकही बेर होती हैं। ४७। जिस प्रकार से नौ छोड़ा ऊंड

दासो भैंसि बकरी भेड़ि इन्हों में संतति उत्पन्न करने वाले का स्वामी उत्पन्न ऊँर संतति को नहीं पाता किसी प्रकार से दूसरे की स्त्री में बीज डालने वाला अपत्य (अर्थात् संतति) को नहीं पाता । ४८ । दूसरे के खेत में बीज बोने वाला उस बीज के फल को कभी नहीं पाता । ४९ । दूसरे की गौ में दूसरे का वृषभ जो बकरू को उत्पन्न करे तो गौ का स्वामी उस बकरू को पाता है और वृषभ का बीर्य व्यर्थ हुआ । ५० । किसी प्रकार से दूसरे के खेत में बीज बोने वाला खेत वाले का अर्थ करता है आप फल को नहीं पाता । ५१ । इस स्त्री में जो उत्पन्न हो सो हमारा और तुम्हारा दोनों का होवे ऐसा फल को मन में न रख के जो उत्पन्न किया सो खेत वाले का होता है बीज से योनि बद्धत बड़ी है । ५२ । इस स्त्री में जो उत्पन्न हो सो हमारा और तुम्हारा दोनों का होवे ऐसा मन में रख के जो उत्पन्न किया उस का भागी खेत वाला और बीज वाला दोनों होते हैं । ५३ । वायु से उड़ि के बीज जिस के खेत में पड़ा उस का फल खेत वाला पाता है बीज वाला नहीं पाता । ५४ । गौ घोड़ा दामि ऊँट बकरी भेड़ि पक्षी भैंसि इन्हों की उत्पत्ति में यही धर्म जानना । ५५ । शृगु जो कहते हैं कि आप लोगों

परस्त्रेचप्रवापिणः । ते वै सस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् । ४९ । यदन्यगोपु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् । गोमिनामेव ते वत्सा मोर्ध स्तदितमार्थभम् । ५० । तथैवाश्वेचिणो बीजं परस्त्रेचप्रवापिणः । कुर्वन्ति श्वेचिणामर्थं न बीजी लभते फलम् । ५१ । फलन्वनभिसंधाय श्वेचिणां बीजिनान्तथा । प्रत्यक्षं श्वेचिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी । ५२ । क्रियाभ्युपगमात्स्वेतहीजार्थं यत्प्रदीयते । तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी श्वेचिक एव च । ५३ । औघवाता हतं बीजं यस्य श्वेचे प्ररोहति । श्वेचिकस्यैव तद्बीजम् वत्सा लभते फलम् । ५४ । एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युप्राजाविकस्य च । विहङ्गमहिपीणाश्च विज्ञेयः प्रसवं प्रति । ५५ । एतद्वः सारफलानुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम् । अतः परम्पुवश्यामि योपितान्धर्ममापदि । ५६ । आतुर्ज्येष्ठस्य भार्याया गुरुपत्न्यनुजस्य सा । यवीयसस्तु या भार्या सुपा ज्येष्ठस्य सा स्मृता । ५७ । ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् । पतिता भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि । ५८ । देवराज्ञा सपिण्डाज्ञा स्त्रिया सम्यङ्गियुक्तया । प्रजेप्सिताधिगंतव्या संतानस्य परिश्रये । ५९ । विधवायान्नियुक्तस्तु घृताक्ता वाग्यतो निशि । एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयकथञ्च न । ६० । द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते

में बीज और योनि का प्राधान्य अप्राधान्य को कहा इस के अनंतर स्त्रियों के आपत्काल में जो धर्म है उस को कहेंगे । ५६ । जेठा भाई की जो स्त्री है सो छोटे भाई की गुरु पत्नी कहाती है और छोटे भाई की जो स्त्री है सो जेठे भाई की पत्नी कहाती है । ५७ । आपत्काल न हो और पिता आदि की आज्ञा भी भई हो परंतु जेठे भाई की स्त्री में कनिष्ठ और कनिष्ठ भाई की स्त्री में ज्येष्ठ गमन करें तो दोनों पातल होते हैं । ५८ । सन्तान के अभाव में श्वसुर आदि की आज्ञा को पाए ऊँर स्त्री सपिण्ड से अथवा देवर से दक्षित प्रजा को प्राप्त करें । ५९ । विधवा स्त्री में पिता आदि की आज्ञा को पाए ऊँर पुत्र रात को मौन होके देह में घी लगा के एक पुत्र को उत्पन्न करे दूसरे पुत्र को कभी न उत्पन्न करे । ६० । एक पुत्र और अपुत्र ये दोनों सम हैं ऐसा बड़े लोगों के प्रवाद से पिता आदि की आज्ञा से उत्पन्न जो पुत्र है उस का प्रयोजन सिद्ध न भया ऐसा मानने वाले और पिता आदि की आज्ञा से पुत्रो

त्यादनं विधिं के जानने वाले जो दूसरे आचार्य हैं सो स्त्रियों में दूसरे पुत्र की उत्पत्ति को भी धर्म से मानते हैं । ६१ । जब गर्भ उत्पन्न हो चुका तब जेठा भाई गुरु की नाई छोटे भाई की स्त्री पतोह की नाई आपुस में दोनों रहें यह जब जेठा भाई को कनिष्ठ भाई की स्त्री में पुत्र उत्पन्न करने की पिता आदि की आज्ञा भई हो तब जानना । ६२ । पिता आदि की आज्ञा पाके और विधि छोड़ के इच्छा से जेठा भाई कनिष्ठ भाई की स्त्री में गमन करे अथवा कनिष्ठ भाई जेठा भाई की स्त्री में गमन करे तो दोनों पतित होते हैं जेठा भाई पतोह में गमन करने वाला कहाता है छोटा भाई गुरु पत्नी में गमन करने वाला कहाता है । ६३ । अब नियोग (अर्थात् पुत्रोत्पत्ति के लिये पिता आदि की आज्ञा) का निषेध करते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्ण विधवा स्त्री में पुत्रोत्पत्ति के लिये आज्ञा न दें और आज्ञा देने से नित्य धर्म को नाश करते हैं । ६४ । विवाह के मंत्र में नियोग नहीं लिखा है और विधवा स्त्री के साथ रमण नहीं लिखा है । ६५ । राजा वेण के राज्य में यह पशु धर्म को मनुष्यों के लिये वेण राजा ने कहा उस को पंडित द्विजों ने निंदा किया है । ६६ ।

स्त्रीषु तद्विदः । अनिर्दत्तं नियोगार्थमपश्यन्तो धर्मतस्तयोः । ६१ । विधवायान्नियोगार्थं निर्दत्ते तु यथाविधि । गुरुवच्च क्षुपावच्च वर्त्तेयातां परस्परम् । ६२ । नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तेयातान्तु कामतः । तावुभौ पतितौ स्यातां क्षुपागगुरुतल्पगौ । ६३ । नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः । अन्यस्मिन् हि नियुंजाना धर्म इत्युः सनातनम् । ६४ । नोदाद्विकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् । न विवाहविधावुक्तं विधवा वेदनं पुनः । ६५ । अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः । मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेणोराज्यं प्रशसति । ६६ । स महीमखिलां भुंजन् राजर्षिप्रवरः पुरा । वर्णानां संकरश्चक्रे कामोपहतचेतनः । ६७ । ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम् । नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हति साधवः । ६८ । यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः । तामनेन विधानेन निजोर्विन्देत देवरः । ६९ । यथा विध्यधिगम्यैनां शुक्रवस्त्रां शुचिव्रताम् । मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृद्वतादृतौ । ७० । न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः । दत्वा पुनः प्रयच्छन् हि प्राप्नोति

पूर्व काल में काम से नष्ट बुद्धि वाला राजर्षियों में श्रेष्ठ वेण राजा संपूर्ण पृथिवी का भोग करत संते वर्णों का संकर (अर्थात् मिलावट) किया । ६० । उस दिन के मोह करके संतान के लिये विधवा स्त्री को जो आज्ञा देता है उस की निंदा साधु लोग करते हैं । ६८ । नियोग की विधि और निषेध को कहा उस का व्यवस्था कहते हैं जिस कन्या को बाणी से किसी को दिया और विवाह भया नहीं जिस को दिया रहा वह मर गया उसका सहेर भाई उस कन्या का विवाह को आने जो विधि कहेंगे उस करके करे । ६९ । पवित्रता सहित अन्न करने वाली श्रेत वस्त्र पहिरे ऊई कन्या का विधि पूर्वक विवाह करके सम अतु काल की रात्रि में एक एक बार गर्भ ग्रहण तक उस का गमन करे उस में जो संतति होगी सो जिस को बाणी से प्रथम दिया है उसी का कहावेगा । ७० । बुद्धिमान मनुष्य एक को कन्या देके फेर उस कन्या को दूसरे को न देवे कदाचित् देवे तो सहस्र पुरुष को बध को पाता है सप्त पदी के पूर्व भार्या के धर्म की उत्पत्ति नहीं होती तब

दूसरे के देने की शंका भई इस लिये इस वचन को कहा । ७१ । निन्दित व्याधि युक्त बहृत दृष्ट कष्ट से प्राप्त जो कन्या उस को विधि पूर्वक ग्रहण करके भी त्याग करना । ७२ । दोष युक्त कन्या के दोष को विना कहे उस को देने वाला दरात्मा का कन्या दान अर्थ है । ७३ । भार्या की जीविका करके कार्य वाला पुरुष विदेश जावे क्योंकि भूखों में मरती हुई शीलवती भी स्त्री पर पुरुष का भजन करेंगी इस लिये जीविका करके तब विदेश में जावे । ७४ । जीविका विधान करके विदेश में पुरुष के गण संते नियम में स्थित होके स्त्री जीवे और जीविका विधान बिना किए हुए विदेश में पुरुष के गण संते मृत कातना और अनिन्दित कारीगरी इन्हें आदि जो कर्म हैं उन्से जीवे । ७५ । गुरु की आज्ञा संपादन आदि धर्म कार्य के लिये विद्या के अर्थ यश के अर्थ काम के लिये विदेश गण पुरुष की आज्ञा को क्रम से आठ छ तोन वर्ष तक करे इस के अनंतर पति के समीप में स्त्री जावे । ७६ । विरोध करने वाली स्त्री का प्रतीक्षा (अर्थात् आज्ञा) एक वर्ष तक पुरुष करे इस के अनंतर भी विरोध करती रहे तो भूषण आदि जो धन दिया है उस को लेकर उस के साथ संभोग न करे भोजन और वस्त्र को तो

पुरुषान्ततम् । ७१ । विधिवत्प्रतिष्ठद्वापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् । व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् । ७२ । यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् । तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः । ७३ । विधाय वृत्तिभार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः । अष्टत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि । ७४ । विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता । प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छित्यैरगर्हितैः । ७५ । प्रोषिते धर्मकार्यार्थं स्मृतीश्वरोऽप्ये नरः समाः । विद्यार्थं पट यशार्थं वा कामार्थं चींस्तु वत्सरान् । ७६ । संवत्सरस्मृतीक्षेते द्विपंतीं योपितम्पतिः । उर्द्ध्वं संवत्सराश्वेनां दायं हत्वा न संवसेत् । ७७ । अतिक्रामेत्प्रमत्तं वा मत्तं रोगार्तमेव वा । सा चीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा । ७८ । उन्मत्तं पतितं कीवमवीजं पापरोगिणम् । न त्यागेऽस्ति द्विपन्त्याश्च न च दायोपवर्तनम् । ७९ । मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् । व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंसाऽर्थघ्नी च सर्वदा । ८० । बंध्याऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा । एकादशे स्त्री जननी मद्यस्त्वप्रियवादिनी । ८१ । या रोगिणी स्यात् हिता संपन्ना चैव शीलतः । सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् । ८२ । अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता

देवे । ७७ । जूआ खेलना आदि में प्रमत्त मद करने वाली वस्तु सहित रोग में दुःखित ऐसे पति का अपमान जो स्त्री करती है उस को तीन महीना तक भूषण वस्त्र न देना । ७८ । वायु आदि में उन्मत्त पतित नपुंसक व्याधि में बीज रहित पाप रोगी ऐसे पति में विरोध करने वाली स्त्री का त्याग करना और उस का धन न लेना । ७९ । मद्य पीने वाली साधुओं के आचरण से रहित शत्रुता करने वाली व्याधि में युक्त घात करने वाली भिन्नतर अर्थ का नाश करने वाली ऐसी स्त्री हो तो दूसरा विवाह करना । ८० । बंध्या (अर्थात् जिस को संतान न हो) मृत प्रजा (अर्थात् जिस की संतति हो हो के मर जाय) केवल कन्या ही को उत्पन्न करने वाली ऐसी स्त्री के ऊपर क्रम से आठ वं दस वं ग्यारह वं वर्ष में दूसरा विवाह करना और अप्रिय बोलने वाली स्त्री के ऊपर तो तुरंत दूसरा विवाह करना । ८१ । जो स्त्री रोगिणी हो परंतु हित करने वाली हो शील में युक्त हो उस की आज्ञा प के दूसरा विवाह करना और उस का अपमान कभी न करना । ८२ । जिस स्त्री

के ऊपर दूसरा बिवाह पति ने किया और वह स्त्री रूष्ट होके गृह से निकलती हो तो उस को रोक के गृह में रखना अथवा कुल के समोपत्याग करना । ८३। ऋचिय आदि की स्त्री भर्ता आदि से निवारित हैं और बिवाह आदि उत्सव में भी निषिद्ध मद्य को पीवें अथवा नृत्य आदि स्थान जन समुदाय में गमन करें सो हरणी सुवर्णदंड देंगे । ८४। ब्राह्मण ऋचिय वैश्य ये सभ अपने वर्ण की और दूसरे वर्ण की स्त्रियों का बिवाह करें तो उन स्त्रियों की ज्येष्ठता पूजा गृह ये सभ वर्ण क्रम से प्रधान होता है । ८५। भर्ता के शरीर की सेवा नित्य धर्म कार्य इन को सभ वर्णों में अपने वर्ण की जो स्त्री है सोई करें दूसरे वर्ण की स्त्री न करें । ८६। उन दोनों कर्म को अपने वर्ण की स्त्री रहत संते मोह से दूसरे वर्ण की स्त्री से करावें तो जैसा ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न ब्राह्मण चाण्डाल है तैसा वह है यह ऋषियों ने कहा । ८७। कुलाचार आदि से उत्कृष्ट स्वरूप अपने जाति वाला ऐसा बर जब मिले तब छोटी भी कन्या होवै (अर्थात् बिवाह के योग्य न होवै) तो उस का विधि पूर्वक बिवाह कर देना । ८८। अतुमती भी कन्या होकर गृह में मरण तक रहे परंतु उस कन्या को गुण हीन पुरुष को कभी न देंगे । ८९। तीन वर्ष

गृहात् । सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ । ८३ । प्रतिपिद्वापि चेद्यातु मद्यमभ्युदयेष्वपि । प्रेक्षा समाजं गच्छेद्वा सा दंष्ट्रा कृष्णलानि षट् । ८४ । यदि स्वाश्व पराश्वपि विंदेरन गोपितो द्विजाः । तासां वर्णक्रमेण स्याज्येष्ठम्पूजा च वैश्व च । ८५ । भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यश्च नैत्यकिम् । स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन । ८६ । यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्यास्थितयान्यथा । यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः । ८७ । उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च । अप्राप्तामपि तान्तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि । ८८ । काममामरणात्तिष्ठेद्भृहे कन्यर्तुमत्यपि । न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् । ८९ । त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यर्तुमती सती । ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विंदेत सदृशम्यतिम् । ९० । अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् । नैनः किंचिद्वाप्नोति न च यं साधिगच्छति । ९१ । अलंकारान्नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयम्बरा । मातृकं भ्रातृदत्तम्वा स्तेनास्याद्यदि तं हरेत् । ९२ । पित्र्येन दद्याच्छुल्कान्तु कन्यामृतुमतीं हरन् । स हि स्वाम्यादतिक्रामेद्वतूनां प्रतिरोधनात् । ९३ । त्रिंशद्वार्षो वहेत्कन्यां ह्यद्यां द्वादशवर्षिकीम् । त्र्यष्टवर्षोष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः । ९४ ।

तक अतुमती कन्या अच्छे बर की आशा करे इस के अनंतर सदृश पति को प्राप्त होवै । ९०। पिता आदि नहीं देते और कन्या आप से भर्ता का स्वीकार करे तो उस कन्या बर को दोष नहीं । ९१। स्वयंवरा (अर्थात् आप से पति का स्वीकार करने वाली कन्या) माता पिता भाई का दिया ऊआ भूषण को न लेंवै और लेंवै तो चोर कह्यो है । ९२। अतुमतीकन्या का बिवाह करने वाला बर कन्या के पिता को शुल्क (अर्थात् जिस दस्त को देकर कन्या ग्रहण करे) न देंवै क्योंकि अतु के प्रतिरोध से (अर्थात् पहिले ही बिवाह होता तो अतु काल में गर्भ धारण होता उस के रुकावट से) पिता अपने स्वामी भाव से छूट जाता है । ९३। तीस वर्ष का बर हृदय के प्रिय बारह वर्ष की कन्या का बिवाह करे अथवा चौबीस वर्ष का बर आठ वर्ष की कन्या का बिवाह करे यह योग्य काल देखाया है नियम नहीं है इतने दिन में वेद ग्रहण कर चुकता है तब गृहस्थाश्रम में आने को बिलंब न करें । ९४। देवता की दिई ऊई कन्या को पति पाता है अपनी इच्छा से नहीं इस लिए

देवता का हित करत संते उस साध्वी स्त्री का पोषण नित्य ही करें। ८५। गर्भ धारण के लिये स्त्री को और गर्भ स्थापन के लिये पुरुष को उत्पन्न किया इस लिये वेद में स्त्री पुरुष का साधारण धर्म है (अर्थात् स्त्री के साथ ही अग्नि होत्र आदि धर्म को पति करें)। ८६। कन्या का शुल्क देके शुल्क देने वाला मर जाय तो उस के भाई के साथ उस कन्या का विवाह करना परंतु वह कन्या जब माने। ८७। शूद्र भी कन्या को देत संते शुल्क न लेवे उस के स्नेह से ठंपा ऊँचा कन्या विक्रय कहाता है। ८८। एक को कहके दूसरे को देना इस बात को कोई छोटे बड़े ने कभी नहीं किया। ८९। शुल्क नाम जो मोल है उस करके ठंपा ऊँचा कन्या विक्रय इस को पूर्व जन्म में भी कभी न सुना। ९००। मरण तक दोनों का बियोग न होवे यह संक्षेप में स्त्री पुरुष का परम धर्म जानना। १०१। जिस में परस्पर बियोग न होवे ऐसा यत्र किया करके स्त्री पुरुष करें। १०२। स्त्री पुरुष का आपस का प्रेम (अर्थात् परस्परानुराग) युक्त जो यह धर्म है

देवदत्ताम्पतिर्भार्याम्बिंदते नेच्छयात्मनः। तां साध्वीं विभृत्यान्नित्यं देवानाम्प्रियमाचरन्। ८५। प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थञ्च मानवाः। तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः। ८६। कन्यायान्दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः। देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते। ८७। आददीत न शूद्रोपि शुल्कं दुहितरन्ददन्। शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृ विक्रयम्। ८८। एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः। यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते। ८९। नानुशुश्रूम् जात्वेत- तूर्वेष्टपि हि जन्मसु। शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम्। १००। अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणांतिकः। एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः। १०१। तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ। यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरे तरम्। १०२। एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः। आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायधर्मन्निबोधत। १०३। ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम्। भजेरन् पैत्रिकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः। १०४। ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पितृव्यनमश्चेपतः। शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरन्तथा। १०५। ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः। पितृणामनृण्यैव स तस्मात्सर्वमर्हति। १०६। यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानंत्यमश्रुते। स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः। १०७। पितेव पालयेत्पुत्रान्

और आपत्काल में संतान की प्राप्ति इन दोनों को कहा इस के अनंतर दाय भाग (अर्थात् हिस्सा) को जानो। १०२। माता पिता के मरणानन्तर सभ मिल के माता पिता के द्रव्य को सभ विभाग करें माता पिता के जीते हुए सभ लड़के असमर्थ हैं। १०४। पिता के संपूर्ण धन का जंठा ही स्वेव और मध्यम भाई छोटे भाई ये सभ जेठ से जीवन का पावें जैसे पिता से पाते रहे। १०५। जेठ पुत्र उत्पन्न होने में मनुष्य पुत्रवान् कहाता है और पितरों के क्षण से छूट जाता है इस लिये जेठ पुत्र सभ धन लेने के योग्य होता है। १०६। जिस के भये संतं क्षण को पिता शोधन करता है और मोक्ष का पाता है सोई धर्म से जायमान पुत्र है और सभ काम में जायमान है यह क्षपियों ने कहा। १०७। पिता की नाई जेठ पुत्र सभ भाईयों की रक्षा करें और

जेठे भाई में पुत्र की नाईं कोटे भाई रहें । १०८ । जेठ ही कुल को बढ़ाता है और विनाश करता है और लोक में वज्रत पृथ्वी जेठ ही है मज्जन लोगों ने उस की निंदा नहीं की है । १०९ । जो ज्येष्ठता का आचरण करता है सो माता पिता की नाईं है और जो ज्येष्ठता का आचरण नहीं करता है सो बंधु की नाईं पूज्य है । ११० । इस रीति से सब एक में रहें अथवा धर्म करने की इच्छा करके पृथक् रहें पृथक् रहने से धर्म बढ़ता है इस लिये पृथक् रहना धर्म से युक्त है । १११ । संपूर्ण द्रव्य में श्रेष्ठ द्रव्य और बीसवां अंश ज्येष्ठ को और मध्यम को चालीसवां भाग कनिष्ठ को दसवीं भाग देके जो बचे उस का सम भाग करके सब कोई लेंवें । ११२ । ज्येष्ठ और कनिष्ठ को जैसा कहा है तैसा ही देना मध्यम को मध्यम धन भी देना । ११३ । सर्व धन में जो श्रेष्ठ धन है और सजातीय धन में जो श्रेष्ठ धन है और गौ आदि जो पशु हैं उन में दश में से एक श्रेष्ठ पशु इन तीनों वस्तु का ज्येष्ठ लेंवें परंतु यह विभाग ज्येष्ठ गुणी हो और कनिष्ठ

ज्येष्ठो भ्रातृन् यवीयसः । पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः । १०८ । ज्येष्ठः कुलं वर्द्धयति विनाशयति वा पुनः । ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः । १०९ । यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः । अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बंधुवत् । ११० । एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया । पृथग्विवर्द्धते धर्मस्तस्माद्वर्मा पृथक् क्रिया । १११ । ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् । ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयन्तु यवीयसः । ११२ । ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् । येन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमन्धनम् । ११३ । सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः । यच्च सातिशयं किञ्चिद्विशतश्चाग्र्या-द्वरम् । ११४ । उद्धारो न दशस्वस्ति सम्पन्नानां स्वकर्मसु । यत्किञ्चिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्द्धनम् । ११५ । एवं समुद्धृतोद्दारे समानं शान्प्रकल्पयेत् । उद्दारेऽनुद्धते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना । ११६ । एकाधिकं हरेत् ज्येष्ठः पञ्चोद्धर्द्धन्ततोऽनुजः । अंशमंशं यवीयांस इति धर्माव्यवस्थितः । ११७ । स्वेभ्योऽग्नेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्ध्वातरः पृथक् । स्वात्त्वादंशाच्चतुर्भाग्यपतितास्युरदि-त्सवः । ११८ । अजाविकं सैकशफन्नं जातु विपमं भजेत् । अजाविकं तु विपमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते । ११९ । यवीयान् ज्येष्ठ-भार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि । समस्तञ्च विभागः स्यादिति धर्माव्यवस्थितः । १२० । उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ।

मध्यम निर्गुणी हो तब जानना । ११४ । सब भाई अपने कर्म में मग्न रहें तो जो उद्धार पीछे कह आए हैं सो करना किंतु जेठ का मान रखने के लिये कुछ एक कोटी वस्तु देना । ११५ । इस प्रकार से ज्येष्ठ को उद्धार देके अवशिष्ट धन का सम विभाग करना और उद्धार न दें तो आगे जो अंश कल्पना करेंगे सो करें । ११६ । दो अंश ज्येष्ठ लेंवें उससे कनिष्ठ उधे, अंश लेंवें सब में कोटा एक अंश लेंवें यह धर्म व्यवस्थित है (अर्थात् व्यवस्था के प्राप्त ह । ११७ । पृथक् पृथक् अपने अंश में चतुर्थांश सब भाई भगिनी को दें न दें तो पतित होते हैं । ११८ । बकरी भेड़ एक खुर वाले (अर्थात् घोड़ा आदि) ये सब विषम हो (अर्थात् चार भाई हैं और पांच घोड़ा हो) तो विषम विभाग न करना (अर्थात् बचें सो जेठ लेंवें) । ११९ । कोटा भाई जेठ भाई की स्त्री में पुत्र उत्पन्न करें तो उस पुत्र के साथ चाचा लोग सम विभाग करें उस पुत्र का जेठ भाई का भाग न दें यह धर्म व्यवस्थित है । १२० । प्रधान का गौण करना यह बात धर्म नहीं है

उत्पत्ति में पिता प्रधान है इस लिये धर्म करके पिता का सेवन करें । १२१ । एक को दो स्त्री हो और कौटी स्त्री में पहिले लड़का भया और जेठी स्त्री में पीछे लड़का भया इस त्याग में कैसा भाग करना ऐसी संशय में समाधान आगे के श्लोक में कहेंगे । १२२ । प्रथम विवाहिता स्त्री में पीछे में जो भया है सो एक श्रेष्ठ वृषभ उद्धार लेवे और भाई उस श्रेष्ठ वृषभ से कनिष्ठ वृषभ उद्धार लेवे माता के विवाह क्रम में ज्येष्ठता जानना । १२३ । ज्येष्ठ स्त्री में पहिले लड़का भया हो तो पंद्रह गो और एक वृषभ लेवे तिस के अनंतर लक्ष्मरी स्त्री में जो लड़के भये हैं सो अपनी माता के विवाह क्रम में जेठाई का पाण्डु वस्त्री गो का विभाग करे यह नियम है । १२४ । सम जाति की स्त्री में उत्पन्न जितने लड़के हैं उन्हीं में माता के विवाह क्रम में जेठाई नहीं है किंतु जन्म से जेठाई है । १२५ । केवल विभाग ही में जन्म से जेठाई है यह नहीं किंतु ज्योतिष्ठाम यज्ञ में दंड के बलाने के लिये स्वब्रह्मण्य नाम का मंत्र है उस में पहिले जो लड़का भया है उस के नाम से कहा जाता है कि फलाने लड़के का बाप यज्ञ करता है ऐसा ऋषियों ने कहा और जो माय ही दो लड़के उत्पन्न

पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्भर्मेण तं भजेत् । १२१ । पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः । कथन्तत्र विभागः स्यादिति-
चेत्संशयो भवेत् । १२२ । एकं वृषभमुद्धारं संहरेत् स पूर्वजः । ततोपरे ज्येष्ठवृषास्तद्वनानां स्वमातृतः । १२३ । ज्येष्ठस्तु जातो
ज्येष्ठायां हरेवृषभपोद्धृश । ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा । १२४ । सदृशस्त्रीषु जातानाम्पुत्राणामविशेषतः । न
मातृतो ज्येष्ठमस्ति जन्मतो ज्येष्ठमुच्यते । १२५ । जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्राह्मण्यास्वपि स्मृतम् । यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो
ज्येष्ठता स्मृता । १२६ । अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् । यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् । १२७ ।
अनेन तु विधानेन पुरा चक्रोऽथ पुत्रिकाः । विवृद्धार्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः । १२८ । ददौ सदृशधर्माय कश्यपाय चयो-
दश । सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् । १२९ । यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा । तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां
कथमन्यो धनं हरेत् । १३० । मातुस्तु यौतकं यस्यात्कुमारी भाग एव सः । दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलन्धनम् । १३१ ।

होते हैं वहां यद्यपि गर्भ स्थापन में प्रथम बीज से उत्पन्न पीछे होगा और पहिले बीज से उत्पन्न आगे होगा तथापि पहिले उत्पन्न होगा सोई जेठ कहावेगा । १२६ । कन्या दान समय में दामाद के साथ ऐसी सलाह करें कि हमारे पुत्र नहीं हैं इस कन्या में जो पुत्र होगा सो हमारा आहु आदि कर्म करने वाला होगा इस प्रकार से कन्या को पुत्रिका करें । १२७ । पूर्व काल में अपने वंश बढ़ने के लिये इस विधान में दक्ष प्रजापति ने पुत्रिका किया । १२८ । प्रसन्नता में बत्कार पूर्वक दक्ष प्रजापति ने धर्म को दक्ष कश्यप को तेरह चंद्रमा को सत्ताईस कन्या दिया । १२९ । जैसी अपनी आत्मा है तैसा ही पुत्र है और पुत्र के समान कन्या है इस लिये आत्मा के समान कन्या रहत संते किस प्रकार से दूसरा कोई धन का हरण करें । १३० । माता के मरे संते उस का यौतक धन जिस का लक्षण आगे कहेंगे सो धन कुमारी कन्या पाती है और पुत्र रहित पुरुष या मम धन दौहित्र (अर्थात् लड़की का लड़का) पाता है । १३१ । पुत्र

रहित पुरुष का संपूर्ण धन दौहित्र लेवे और दो पिण्ड देवे एक अपने पिता को और एक अपने नाना को । १२२ । लोक में पोता और नाती इन दोनों में विशेष नहीं है (अर्थात् सम हैं क्योंकि दोनों में एक का पिता और एक की माता इन दोनों को उत्पत्ति एक ही से है । १२३ । पुत्र रहित पुरुष को पुत्रिका किए सते जब पुत्र उत्पन्न हो तो उस स्थान में पुत्रिका के साथ औरस पुत्र का सम विभाग होता है स्त्री को जेठाई नहीं है इस लिये जेठाई का अधिकार पावेगी । १२४ । पुत्र रहित पुत्रिका के मरे सते उस के धन को उस का पति लेवे इस में विचार कुछ न करे । १२५ । कन्या को पुत्र भाव करके माना हो अथवा पुत्र भाव करके न माना हो परंतु वह कन्या अपने जात वाले घर में पुत्र उत्पन्न करे तो वह पुत्र पुत्र रहित नाना का धन लेवे नाना को पिण्ड देवे उस करके नाना पोता वाला कहाता है । १२६ । पुत्र करके इंद्र आदि लोक को जीतता है और पोता करके अनंत फल को पाता है और पोता को पुत्र करके सूर्य लोक को पाता है । १२७ । जिस कारण से पुत्र कहिए नरक उससे न कहिए पिता का रक्षण करे इसी कारण से पुत्र कहाता है इस बात को

दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् । स एव दद्याद्दौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च । १३२ । पौत्रदौहित्रयोर्लोकं न विशेषोऽस्ति धर्मतः । तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः । १३३ । पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते । समस्तच विभागः स्यात् ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः । १३४ । अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन । धनं तत्पुत्रिका भर्ता हरेत्तैवाविचारयन् । १३५ । अकृता वा कृता वापि यं विंदेत्सदृशासुतम् । पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्द्वयम् । १३६ । पुत्रेण लोकाम जयति पौत्रेणानंत्यमश्नुते । अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रह्मस्याप्नोति विष्टपम् । १३७ । पुत्रान्नो नरकं यस्मात्पितरं चायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा । १३८ । पौत्रदौहित्रयोर्लोकं विशेषो नापपद्यते । दौहित्रोऽपि ह्यमुच्यते सन्तारयति पौत्रवत् । १३९ । मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः । द्वितीयन्तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पुत्रसुतः पितुः । १४० । उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु द्विजः । सह रेतैव तद्विक्थं संप्राप्नोऽप्यन्यगोचरतः । १४१ । गोचरिक्थं जनयितुर्न हरेद्द्विजः सुतः । गोचरकथ्यानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा । १४२ । अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्यातय देवराजम् । उभौ तौ नार्हता भागं जारजातककामजौ । १४३ । नियुक्तायामपि पुमान्नायां जातोऽविधानतः । नैवार्हः पैत्रिकं रिक्थम्यतितोत्पादितो हि

ब्रह्मा जी ने कहा । १३८ । संसार में पोता नाती दोनों सम हैं नाती भी नाना को परलोक में पोता की भाँति तागता है । १३९ । पुत्रिका पुत्र प्रथम पिण्ड माता को देवे दूसरा पिण्ड नाना को देवे तीसरा पिण्ड नाना के बाप को देवे । १४० । दूसरे गोत्र में भी लड़का आया हो परंतु सभ गुण से युक्त हो और वह जिस का दत्तक पुत्र भया है उस के सभ धन को पाता है । १४१ । उत्पन्न करने वाले का गोत्र और द्रव्य को दत्तक पुत्र नहीं पाता किंतु जिस का दत्तक होता है उसी का गोत्र और द्रव्य को पाता है और उसी को पिण्ड देता है जिसे उत्पन्न भया है उस को पिण्ड नहीं देता । १४२ । पिता आदि की आज्ञा बिना देवर आदि से विधवा स्त्री ने उत्पन्न किया जो पुत्र सो और पुत्र रहत सते अग्र आदि की आज्ञा करके देवर से स्त्री ने उत्पन्न किया जो पुत्र सो ये दोनों भाग को नहीं पाते क्योंकि एक जार (अर्थात् दूसरा पति) से उत्पन्न है और दूसरा काम से उत्पन्न है । १४३ । अग्र आदि की

आज्ञा को पाए हुए स्त्री विधान से पुत्र उत्पन्न करे तो वह पुत्र पिता के धन को नहीं पाता क्योंकि वह पुत्र पतित से उत्पन्न है । १४३ । जिस प्रकार से और पुत्र धन को हरण करता है उसी प्रकार से असुर आदि की आज्ञा से स्त्री ने उत्पन्न किया जो पुत्र सो धन को ग्रहण करे सोच वासे का वह बीज है और वह उत्पत्ति धर्म से है । १४५ । मरे भारी का धन और स्त्री इन दोनों को जो ग्रहण करे सो उस स्त्री में पुत्र उत्पन्न करके उसी पुत्र को धन देवे । १४६ । असुर आदि की आज्ञा को पाए हुए स्त्री देवर से अथवा दूसरे वपिण्ड से पुत्र को उत्पन्न करे और वह पुत्र काम से उत्पन्न भया है ऐसा जाना जाय तो धन को नहीं पाता और वह अर्थ उत्पन्न है ऐसा ऋषि लोग कहते हैं और नारद ऋषि ने काम से उत्पन्न पुत्र का लक्षण कहा है कि संभोग समय में स्त्री के मुख से अपमं मुख को न लगाने और अमं से अंग को न लगाने केवल योगि में लिंग प्रवेश करके जो उत्पन्न हो सो संतान के अर्थ है वह काम से उत्पन्न नहीं है इन्को भिक्षा रीति से उत्पन्न हो सो काम से उत्पन्न कहाता है । १४७ । एक योगि में (अर्थात् समान जाति की वृद्धत स्त्री में पृथक् कथित विभाग को जानने और वृद्धत जाति की वृद्धत स्त्री में एक से उत्पन्न वृद्धत पुत्रों का विभाग आगे कहेंगे सो जानने । १४८ । क्रम से ब्राह्मण को जब चारों वर्ष को स्त्री होवे तो उन

सः । १४४ । हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः । श्रेष्ठिकस्य तु तद्वीजं धर्मतः प्रसवश्च सः । १४५ । धर्मं यो विभृया-
न्नातुर्मृतस्य स्त्रियमव च । सोपत्यं धातुस्त्याद्य दद्यात्तस्यैव तद्वत्तम् । १४६ । या नियुक्तान्यतः पुत्रन्देवरादाप्यवाप्नुयात् । तं काम-
जमरिक्थीयं दृष्टोत्पन्नम्पुचक्षते । १४७ । एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु । वच्चीषु चैकजातानां नाना स्त्रीषु निवा-
धतः । १४८ । ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतसस्तु यदि स्त्रियः । तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयम्विधिः स्मृतः । १४९ । कीनाग्रे
गोदृषो यानमलंकारश्च वेश्म च । विप्रस्योद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः । १५० । अंशं दायाद्वरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रिया सुतः ।
वैश्याजः सार्द्धमेवांशमंशं शूद्रा सुतो हरेत् । १५१ । सर्वं वा ऋक्थजातं तद्वशा परिकल्प्य च । धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिना-
ऽनेन धर्मवित् । १५२ । चतुरोशान्द्वरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रिया सुतः । वैश्यापुत्रो हरेद्वांशमंशं शूद्रा सुतो हरेत् । १५३ । यद्यपि
स्यात्तु सत्पुत्रो यद्यपुत्रोऽपि वा भवेत् । नाधिकन्दशमादद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः । १५४ । ब्राह्मणश्चत्रियविशां शूद्रा पुत्रो न

स्त्रियों में उत्पन्न जो पुत्र है उसी के विभाग में आगे कहेंगे जो विधि उस को जानने । १४९ । खेती करने वाला मनुष्य गौ को बहने वाला वृषभ और घोष (अर्थात् घोड़ा आदि) अलंकार गृह और जितने अंश हैं उन में एक प्रधान अंश इन सभ को ब्राह्मणी के पुत्र को उद्धार देके शेष का विभाग आगे जो रीति कहेंगे उस रीति से करे । १५० । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन चारों वर्ण की स्त्री में ब्राह्मण से उत्पन्न जो पुत्र है सो क्रम से तीन दूर उड़ एक अंश को लेवे । १५१ । अथवा सभ धन का दस भाग करके आगे जो रीति कहेंगे उस से धर्म करके युक्त विभाग की धर्म के जानने वाले करें । १५२ । चारों वर्ण की स्त्री के पुत्र वर्ण क्रम करके चार तीन दो एक अंश को ग्रहण करे । १५३ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्ण की स्त्री में ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न भया हो अथवा न भया हो परंतु शूद्र वर्ण की स्त्री के पुत्र को धर्म करके दशवां अंश से अधिक न देवे । १५४ ।

ब्राह्मण ऋषिय वैश्य दन तीनों वर्णों के धन का यह सब बूढ़ वर्ण की स्त्री का पुत्र नहीं करता है उस का पिता जो देवै बोई उस का धन है । १५५ । ब्राह्मण ऋषिय वैश्य के समान वर्ण में उत्पन्न जो पुत्र है सो जेठ को उद्धार देके और धन का सब भाग करे । १५६ । बूढ़ को अपने वर्ण ही की स्त्री है दूसरे वर्ण की नहीं है इस लिये सो लड़के हों तो भी सम भागै पाते हैं । १५७ । ब्रह्मा के पुत्र मनु जी ने मनुष्यों को जो बारह प्रकार के पुत्र कहा तिस में पहिले छे, छ बंधु दायाद (अर्थात् बांधव कहते हैं और गोच का धन हरने वाले) कहते हैं और उत्तर के छ अबांधव अदायाद (अर्थात् बांधव भी नहीं कहते और गोच का धन लेने वाले भी नहीं) कहते हैं । १५८ । औरस श्रेचज दत्तक कृत्रिम गूढोत्पन्न अपविद्ध ये छ दायाद बांधव कहते हैं । १५९ । कानीन सहोदर क्रीन पौनर्भव स्वयंदत्त शौद्र ये छ अदायाद बांधव कहते हैं । १६० । निकाम नाव करके जल को तरत संते जैसे फल को पाता है तैसे फल को निकाम पुत्र से नरक को तरत संते पाता है । १६१ । ब्याधि आदि से नष्ट बीज वाला पुरुष की स्त्री में पिता आदि की आज्ञा को पाए हुए पुत्र रहित देवर आदि ने पुत्र

ऋक्थभाक् । यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनम्भवेत् । १५५ । समवर्त्तासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजम्भनाम् । उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् । १५६ । शूद्रस्य तु सवर्णेव नाऽन्या भार्या विधीयते । तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतम्भवेत् । १५७ । पुत्रान्हादश यानाह नृणां स्वायंभुवो मनुः । तेषां षड्बुधायादाः षडदायादबांधवाः । १५८ । औरसः श्रेचजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च । गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बांधवाश्च षट् । १५९ । कानीनश्च सहोदरश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा । स्वयन्दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबांधवाः । १६० । यादृशं फलमाप्नोति कुल्लवैः संतरन् जलम् । तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरं स्तमः । १६१ । यद्येकऋक्थिनौ स्यातामौरसश्चैवौ सुतौ । यस्य यत्पैत्रिकं रिक्तं स तद्बृह्णीत नेतरः । १६२ । एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः । शेषाणामानुशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् । १६३ । षष्ठं तु श्रेचजस्यांशं प्रदद्यात्पैत्रिकाहनात् । औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पंचममेव वा । १६४ । औरसश्चैवौ पुत्रौ पितृरिक्तस्य भागिनौ । दशापरे तु क्रमशो गोचरिक्थांशभागिनः । १६५ । स्वे श्रेचे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्भि यम् । तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् । १६६ । यस्तत्पुत्रः

उत्पन्न किया पीछे श्रेचज आदि से पुष्ट बीज हुए संते उस पुरुष ने अपनी स्त्री में पुत्र उत्पन्न किया तब उस पुरुष का धन का स्वामी श्रेचज औरस दो पुत्र हुए तिस पर यह बात मनु जी ने कहा कि जिस को बीज से जो उत्पन्न हो सो उस का धन पावे । १६२ । एक हो औरस पुत्र पिता के संपूर्ण धन का स्वामी है वह और भाईयों को दया करके भोजन और बख को देवै । १६३ । पिता आदि की आज्ञा से पुत्र उत्पन्न करने वाला पुत्रवान हो तो श्रेचज औरस दोनों पुत्र अपने पिता के धन का छ भाग करै अथवा पांच भाग करै एक भाग को श्रेचज लेवै और सब धन को औरस लेवै अंश का विकल्प जो है सो जब श्रेचज गुणवान हो तो पांच भाग करना और गुण से रहित हो तो छ भाग करना । १६४ । श्रेचज औरस यह दोनों पुत्र पिता के धन को ग्रहण करने वाले हैं और जो दश पुत्र हैं सो गोच और धन दन दोनों का क्रम से ग्रहण करते हैं । १६५ । संस्कार से युक्त जो अपनी स्त्री है उस में आप पुत्र उत्पन्न करै वह औरस पुत्र कहाता है सब पुत्रों से श्रेष्ठ है । १६६ । नपुंसक और ब्याधि से युक्त और मरा हुआ दन पुरुषों की स्त्री में धर्म करके पिता आदि की आज्ञा से देवर आदि ने जो पुत्र उत्पन्न किया सो

स्नेहज कहता है । १६७ । आपत्काल में माता पिता जल से प्रीति सहित समान जाति पुत्र को देवे सो दत्तक कहाता है । १६८ । समान जाति वाला गुण दोष का जानने वाला पुत्रों के गुण से युक्त ऐसे को पुत्र करै सो द्विचिम कहाता है । १६९ । गृह में उत्पन्न भया और किस के बीज से भया वह जाना नहीं जाता सो जिस की स्त्री है उस का गृहोत्पन्न पुत्र कहाता है । १७० । माता पिता दोनों ने अथवा एक ने जिस पुत्र का त्याग किया उस पुत्र को दूसरे ने ग्रहण किया सो ग्रहण करने वाले का अपविद्ध पुत्र कहाता है । १७१ । पिता के गृह में विवाह रहित कन्या ने एकान्त में जिस पुत्र को उत्पन्न किया सो पुत्र उस कन्या से विवाह करने वाले का कामीन पुत्र कहाता है । १७२ । गर्भिणी कन्या है सभ कोई जानता है अथवा गर्भ है कोई जानता नहीं और उस कन्या का विवाह हो तो विवाह करने वाले का सहोद पुत्र कहाता है जो विवाह के अनंतर होता है । १७३ । माता पिता से जिस पुत्र को पुत्र को अर्थ मोल लेवे वह पुत्र गुण से सदृश हो अथवा

प्रमीतस्य क्रीवस्य व्याधितस्य वा । स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः स्नेहजः स्मृतः । १६७ । माता पिता वा दद्यातां यमद्विः पुत्रमा-
पदि । सदृशं प्रीति संयुक्तं स ज्ञेयो द्विचिमः सुतः । १६८ । सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् । पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स वि-
ज्ञेयश्च द्विचिमः । १६९ । उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः । स गृहे गृह उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तस्यजः । १७० । माता-
पितृभ्यामुत्पृष्टं तयारन्यतरेण वा । यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते । १७१ । पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना बोधुः कन्यासमुद्भवम् । १७२ । या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञाताऽपि वा सती । बोधुः स गर्भो भवति
सहोद इति चोच्यते । १७३ । क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापिधोर्यमंतिकात् । स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोपि वा । १७४ ।
या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयंश्चया । उत्पादयेत्पुनर्भत्वा स पौनर्भव उच्यते । १७५ । सा चेदक्षतयोनिः स्यान्नतप्रत्याग-
तापि वा । पौनर्भवेन भर्त्ता सा पुनः संस्कारमर्हति । १७६ । मातापितृविहीना यस्य क्तो वा स्यादकारणात् । आत्मानं स्पर्शये-
द्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः । १७७ । यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् । स पारयन्नेव श्वस्तस्मात्पारश्वः स्मृतः ।

असदृश हो परंतु जाति से सदृश हो सो मोल लेने वाले का क्रीत पुत्र कहाता है । १७४ । जिस स्त्री को पति ने त्याग किया अथवा विधवा अपनी इच्छा से दूसरे पुरुष को भार्या होके उस पुरुष से पुत्र को उत्पन्न करै सो पुत्र उत्पन्न करने वाले का पौनर्भव पुत्र कहाता है । १७५ । विवाहिता स्त्री है और पुरुष संभोग से दूषित नहीं है और दूसरे पुरुष का आश्रय करै तो उस पुरुष के साथ फेर विवाह के योग्य होती है अथवा कुमार पति को ढाड़कर दूसरे पुरुष की आश्रय करके पुरुष संभोग से दूषित न होके फेर उसी कुमार पति के आश्रित हो तो फेर उस के साथ विवाह के योग्य होती है । १७६ । माता पिता जिस का मर गया हो अथवा कारण बिना माता पिता ने जिस का त्याग किया है वह अपनी आत्मा को जिस को देवे वह उस का स्वयंदत्त पुत्र कहाता है । १७७ । काम करके ब्राह्मण से विवाहित शूद्र वर्ण की स्त्री में जो उत्पन्न भया पुत्र सो जावत हो श्व (अर्थात् मुरदा) है इस लिये वह उस ब्राह्मण का पारश्व

पुत्र कहाता है । १७८ । दासों में अथवा दासी की दासी में शूद्र से उत्पन्न जो पुत्र सो पिता की आज्ञा से अन्न को पाता है यह धर्म व्यवस्था को प्राप्त है । १७९ । कोचज आदि एकादश पुत्र जो हैं उन को पण्डितों ने पिण्ड दान आदि क्रिया का लोप न हो इस के लिये पुत्र प्रति निर्धि (अर्थात् पुत्र के स्थानापन्न) कहा है । १८० । प्रसङ्ग से और के बीज से उत्पन्न जो लड़के कहे हैं सो सब औरस पुत्र के रहत संते जिस के बीज से जो उत्पन्न हैं सो उसी के पुत्र कहाते हैं दूसरे के नहीं । १८१ । एक से उत्पन्न चार पांच पुत्र में एक भी पुत्रवान् हो तो उसी पुत्र करके सब पुत्रवान् कहाते हैं यह मनु जी ने कहा । १८२ । एक पुरुष को चार पांच स्त्री हैं उन में एक पुत्रवती हो तो उस पुत्र से सब स्त्री पुत्रवती कहाती हैं यह मनु जी ने कहा । १८३ । द्वादश प्रकार के पुत्र में पूर्व पूर्व के अभाव में पर पर धन को पाते हैं बड़त पुत्र सम हों तो धन को सब पावें । १८४ । भाई और पिता ये धन को नहीं पाते किंतु पुत्र ही धन को पाता है पुत्र न हो तो पिता भाई धन को पाते हैं । १८५ ।

१७८ । दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् । सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः । १७९ । श्लेचजादीन्सुताने-
तानेकादश यथोदितान् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीपिणः । १८० । य एतेभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ।
यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु । १८१ । भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् । सर्वांस्तान्स्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनु-
रवतीत । १८२ । सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् । सर्वांस्तान्स्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्म्मनुः । १८३ । श्रेयसः श्रेयसो
लाभे पापीयान् ऋक्यमर्हति । वहवश्चेत्तु सदृशः सर्वे ऋक्यस्य भागिनः । १८४ । न भ्रातरौ न पितरः पुत्रा ऋक्यहराः पितुः ।
पिता हरेदपुत्रस्य ऋक्यं भ्रातर एव च । १८५ । त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिपु पिण्डः प्रवर्तते । चतुर्थः संप्रदातैषां पंचमो नापप-
द्यते । १८६ । अनन्तरस्तपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् । अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा । १८७ । सर्वेषामप्यभावे
तु ब्राह्मणा ऋक्यभागिनः । वैविद्याः शुचयो दांतास्तथा धर्मो न हीयते । १८८ । अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति-
स्थितिः । इतरेषां पुत्रवर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः । १८९ । संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् । तत्र यहश्चजातं स्यात्तत्तस्मि-
न्प्रतिपादयेत् । १९० । द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने । तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्स तद्गृहीत नेतरः । १९१ ।

पिता पितामह प्रपितामह इन तीनों को पिण्ड जल देना चौथा देने वाला ह पांचवां कोई नहीं है । १८६ । सपिण्ड में (अर्थात् मात पुरुष में) मरे हुए का जो गमीची हो सो धन को पाता है सपिण्ड न हो तो सकुल्य (अर्थात् मात पुरुष के ऊपर वाला) धन को पाता है उस के न होने में आचार्य उसके अभाव में शिष्य ये सब क्रम से धन को पाते हैं । १८७ । ये सब न हों तो तीनों वेद के पढ़ने वाले और दंडियों के दमन करने वाले पवित्र से सहित ब्राह्मण लोग धन को पाते हैं इस रीति से धर्म हानि को नहीं पाता । १८८ । ब्राह्मण के धन को राजा कभी न लेवै दूररे के धन को सब के अभाव में राजा लेवै । १८९ । पुत्र रहित मरे हुए पुरुष की स्त्री सगोत्र पुरुष से यशुर आदि की आज्ञा से पुत्र का उत्पन्न करे तो उस पुत्र को सब धन देवै । १९० । एक स्त्री को दो पुरुष से दो पुत्र हो और माता के धन के लिये विवाद करते हों तो जिस के पिता ने जो धन उस स्त्री को दिया हो सो धन वह पावै दूसरा न पावै । १९१ । माता के मरे पीछे सब सहादर भाई और बुआ

रो भगिनो ये सभ सम भाग करके माता के धन को लेंवें । १८९ माता के धन को कन्या पावै और कन्या की कन्या को भी नानी के धन से कुछ प्रीति सहित देंवें । १९३ । अथग्न्यध्यावाहनिक प्रीति कर्म में प्राप्त धन भाई पिता माता ने जो दिया ये ह प्रकार की स्त्री धन है यह ऋषियों ने कहा । १८४ । प्रसन्न होके पति ने जो दिया और अन्वाधेय इन दोनों धन को उस स्त्री के मरे पीके उस का प्रजा (अर्थात् संतति) लेंवें भर्त्ता न पावै । १८५ । ब्राह्म देव आर्य गांधर्व होके पति ने जो दिया और अन्वाधेय इन दोनों धन को उस स्त्री के मरे पीके उस का प्रजा (अर्थात् संतति) लेंवें भर्त्ता न पाता है । १८६ । आमु र पैशाच राक्षस इन तीन प्राजापत्य इन पांचा विवाह में स्त्री को मिला जो धन है उस को संतति रहित स्त्री के मरे पीके उस का भर्त्ता पाता है । १८७ । ब्राह्मण को चारो वर्ण की स्त्री विवाह में स्त्री को प्राप्त जो धन है उस को प्रजा रहित स्त्री के मरे पीके उस स्त्री के माता पिता पातें हैं भर्त्ता नहीं पाता । १८८ । ब्राह्मण को चारो वर्ण की स्त्री विवाहित हैं उन में ब्राह्मणी को कन्या है और क्षत्रिय आदि तीन वर्ण की स्त्री संतति और पति से रहित हैं और उस स्त्री को किसी प्रकार से पिता ने

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहेदराः । भजेरन्मातृकं रिक्तं भगिन्यश्च सनाभयः । १८२ । यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः । मातामह्याधनात्किञ्चित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् । १८३ । अथग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि । मातृमातृपितृ-प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् । १८४ । अन्वाधेयं च यद्वत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् । पत्यौ जीवत वृत्तायाः प्रजायास्तद्वत्तं भवेत् । १८५ । ब्राह्मदैवार्पगांधर्वप्राजापत्येषु यद्वत् । अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते । १८६ । यत्त्वस्याः स्याद्वत्तं दत्तं विवाहेष्टा-सुरादिषु । अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते । १८७ । स्त्रियां तु यद्ववेदितं पित्रा दत्तं कथंचन । ब्राह्मणा तद्वत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् । १८८ । न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बादहमध्यगात् । स्वकादपि च विस्तारि स्वस्य भर्तुरनाश्रया । १८९ । पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत् । न तन्भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते । २०० । अनंशौ जीवपतितौ जा-त्यंधवधिरौ तथा । उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः । २०१ । सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्या मनीषिणा । आसा-च्छादनमत्यंतं पतितो ह्यददद्भवेत् । २०२ । यद्यर्थितः तु दारैः स्यात्स्त्रीवादीनां कथंचन । तेषामुत्पन्न तंतूनामपत्यं दायमर्ह-

धन दिया हो उस धन को उस स्त्री के मरे पीके ब्राह्मण वर्ण स्त्री की कन्या पावै और कन्या न हो तो पुत्र पावै । १८८ । भाई आदि बहुत लोगों का जो साधारण (अर्थात् मभ का) धन है उस को भार्या आदि गहना के लिये न लेंवें और भर्त्ता की आज्ञा बिना भर्त्ता का दिया धन भी न लेंवें इस से यह बात जानी गई कि यह स्त्री धन नहीं है । १८९ । पति के जीते हुए जो अलंकार स्त्री ने धारण किया है उस को दाय (अर्थात् हिस्सा) लेने वाले विभाग न करें कदाचित् न करें तो पतित होते हैं । २०० । नपुंसक पतित जन्म से अंधा और बहिरा व्याधि आदि से उत्पन्न जड़ (अर्थात् विकलांतःकरण) मूक (अर्थात् गूंगा) और कोई इंद्रियों से रहित जो हैं ये सब अंश को नहीं पाते । २०१ । इन मभ (अर्थात् पीके जो कह आए हैं नपुंसक आदि) को यथाशक्ति आसाच्छादन जीने तक देना शास्त्र जानने वाला जो विभाग लेने वाला मनुष्य है उस को उचित है न दे तो पतित होता है । २०२ । नपुंसक आदि को विवाह करने की इच्छा है

तो विवाह करके यथा योग्य उन के स्त्री में पुत्र उत्पन्न कराके उस पुत्र को अंश देवै। २०३। पिता के मरे पीछे जेठ पुत्र विभाग के पहिले जो कुछ धन अर्जन करै उस में सभ छोटे भाई पावै परंतु विद्यावान होवै तो। २०४। विद्या रहित सभ भाईयों की मेहनत से धन होवै तो उस में सम भाग करना वह धन पिता का नहीं है यह शास्त्र का निश्चय है। २०५। विद्या मैत्री विवाह मधुपर्क इन्हों करके जो धन मिलै उस में किसी का भाग नहीं है जो अर्जन करै सोई लवै। २०६। भाईयों के मध्य में जो अपने कर्म से समर्थ है और पिता के धन को लेने की इच्छा नहीं करता है उस को अपने अंश से कुछ देके भाग रहित करना क्योंकि उस की लड़के पीछे से विवाद न करै कि हमारे पिता ने अंश नहीं लिया है हम को दो। २०७। पिता के धन का नाश न हो और अपने श्रम से जो अर्जन करै उस धन को इच्छा न हो तो भाईयों को न देवै।

ति। २०३। यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोधिगच्छति। भागोयवीयसां तच्च यदि विद्यानुपालिनः। २०४। अविद्यामां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत्। समस्तच विभागः स्यादपि च इति धारणा। २०५। विद्याधनन्तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनमभवेत्। मैत्रमैत्राद्विद्वच्चैव माधुपर्किकमेव च। २०६। आतृणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा। स निर्भाज्यस्वकादंशात्किञ्चिद्विद्वत्पजीवनम्। २०७। अनुपपन्नपितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम्। स्वयमीहितलब्धन्तन्नाकामो दातुमर्हति। २०८। पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात्। न तत्पुत्रैर्भजेत्साह्वमकामः स्वयमर्जितम्। २०९। विभक्तः सह जीवन्तो विभजेरन् पुनर्यदि। समस्तच विभागः स्याज्ज्येष्ठान्तच न विद्यते। २१०। येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः। श्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते। २११। सोदर्या विभजेरन्तं समेत्य सहितास्समम्। आतरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च समाभयः। २१२। यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भातृन् यवीयसः। सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः। २१३। सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति आतरो धनम्। न चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम्। २१४। आतृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह।

२०८। पिता के द्रव्य को किसी ने कौन लिया हो और पिता ने उस में फेर न पाया हो और पुत्र उस द्रव्य को अपने परिश्रम से पावै तो उस द्रव्य का विभाग अपने पुत्रों के साथ न करै और इच्छा हो तो करै क्योंकि वह द्रव्य अपने पुरुषार्थ में आई है पितामह की नहीं है। २०९। एक बेर विभाग हो गया हो फेर अपनी इच्छा से मिलके रहै और पुनः विभाग करै तो जेठ भाई को जठांश न देवै। २१०। भाईयों के मध्य में जेठ भाई अथवा छोटा भाई विभाग काल में संन्यास आदि करके अपने अंश से भ्रष्ट हो अथवा मर गया हो तो उस के भाग का लोप न करना किंतु उस का भी भाग लगाना। २११। उस भाग को सभ भाई और भगिनो मिलके सम भाग करै। २१२। जो जेठ भाई लोभ से छोटे भाईयों को भाग न देवै सो जेठ भाई नहीं कहाता है और राजा से दंड को पाता है। २१३। निकाम कर्म में स्थित हैं सभ भाई तो धन को नहीं पाते छोटे भाई के बिना दिए जेठ भाई सभ के धन को केवल अपना ही न करै। २१४। सभ

भाई मिल के धन को अर्जन करें तो विभाग काल में विषम विभाग पिता न करें । २१५ । पुत्रों से विभक्त होके पिता ने फेर पुत्र उत्पन्न किया तो वह पुत्र केवल पिता ही का धन पाता है और उस के साथ पूर्व विभक्त भाई मिले हों तो उन्हीं के साथ विभाग भए पीछे जो पुत्र उत्पन्न भया है सो विभाग करें । २१६ । संतति रहित पुत्र के धन को माता ग्रहण करें माता न हो तो पितामही (अर्थात् आजी) ग्रहण करें । २१७ । शास्त्र की विधि से ग्रहण और धन का विभाग भए पीछे जो कुछ धन देखने में आवे उस का सम भाग सब करें । २१८ । बस्त बाहन भूषण लड्ढा मनुआ कुंआ आदि जलाधार दामी मंत्री पुरोहित आदि गौ आदि का निकसने की मार्ग इन सभों का विभाग न करना अपने कार्य के योग्य सब कोई लेंगे । २१९ । संवज आदि पुत्रों के विभाग को क्रम से आप लींगा से कहा इस के अनंतर जूआ के धर्म को जानो । २२० । द्यूत और समाह्वय इन को राज्य में न होने दे यं दोनों राज्य का नाश करने वाले हैं । २२१ ।

न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथञ्च न । २१५ । ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्जनम् । संस्थास्तेन वा येस्युर्विभजेत स तैस्सह । २१६ । अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् । मातर्यपि च वृत्तायाम्पितृर्माता हरेद्जनम् । २१७ । चरणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि । पश्चाद् दृश्येत यत्किञ्चित्तत्सर्वं समतां नयेत् । २१८ । वस्त्रम्यचमलङ्कारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः । योगश्रेमप्रचारञ्च न विभाज्यमृचयते । २१९ । अयमुक्ता विभागो वः पुत्राणाञ्च क्रियाविधिः । क्रमशः श्वेचजादीनां द्यूतधर्मनिबोधत । २२० । द्यूतं समाह्वयञ्चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् । राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् । २२१ । प्रकाशमेतत्तात्पर्यं यदेवनसमाह्वयौ । तयोर्निवृत्त्यं प्रतीयाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् । २२२ । अप्राणिभिर्यत्क्रियते तस्मैके द्यूतमुच्यते । प्राणिभिः क्रियमाणस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः । २२३ । द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत् वा । तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः । २२४ । कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पापंडस्यांश्च मानवान् । विकर्मस्थान शौंडिकांश्च क्षिप्रन्निर्वासयेत्पुरात् । २२५ । एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः । विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः । २२६ । द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् । तस्मात् द्यूतं न सेवेत् हास्यार्थमपि वृद्धिमान् । २२७ । प्रच्छन्नस्वा प्रकाशस्वा तन्निषेवेत्

ये दोनों प्रकाश चोरी हैं इस लिये इन दोनों के नाश में राजा यत्न सहित रहें । २२२ । प्राण रहित पामा आदि से दाव लगाके क्रीड़ा करना द्यूत कहाता है और प्राण सहित माल भंडा भेसा चोड़ा से दाव लगाके क्रीड़ा करना समाह्वय कहाता है । २२३ । द्यूत और समाह्वय इन दोनों को जो करें और करावें तिन को और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के चिन्ह को धारण करने वाले शूद्र को राजा नाश करें । २२४ । द्यूत आदि का करने वाला नचनियां गवैया क्रूर पापंडी निकाम कर्म करने वाला सुरा बनाने वाला इन सब को पुर में राजा जलदी निकाल देंगे । २२५ । ये सब ठपे ऊप चोर हैं दुष्ट कर्म करके अच्छे प्रजा को बाधा करते हैं । २२६ । बड़ा वैर करने वाला द्यूत है यह पूर्व काल में देखा गया इस लिये वर्तमान परुष हंसी के अर्थ भी इस का संवन न करें । २२७ । चोरी से अथवा

प्रकाश से घृत के सेवन करने वाले मनुष्यों को जो दंड देने की इच्छा राजा करे सो दंड देवे । २२८ । जत्रिय वैश्य शूद्र ये सब दंड देने के समर्थ न होवें तो कर्म करके क्षण में छूटें और ब्राह्मण तो धीरे धीरे देवे कर्म न करे । २२९ । स्त्री बाल बूढ़ दरिद्र रोगी इन्हें को चटकना और बांस का फलटा इन्हें से मारना और रस्सी से बांधना यह दंड देवे । २३० । कार्य कराने के लिये आज्ञा के पाए ऊए मनुष्य कार्य वाले के कार्य को नाश करें उन्हीं का सब धन राजा लेवे । २३१ । राजा की आज्ञा से बिहृद्ध करने वाले और राज्यांग के दूषण करने वाले स्त्री बालक ब्राह्मण इन्हें के मारने वाले शत्रु का सेवन करने वाले इन सबों का नाश करें । २३२ । धर्म करके जो कार्य दंड पर्यंत हो गया सो फेर निवृत्त नहीं होता । २३३ । मंत्री और प्राज्ञिवाक ये सब जिस कार्य को अन्यथा (अर्थात् झूठ) करें उस कार्य को राजा आप देखे और राजा के देखने में उन्हीं का देखना असत्य जाना जाय तो उन्हीं से महस्र पण दण्ड राजा लेवे । २३४ । ब्राह्मण को मारने वाला मुरा पान करने वाला ब्राह्मण का मारह मामा सोना चोराने वाला माता के साथ रति करने वाला ये चारो भिन्न भिन्न महा पातकी कहाने

यो नरः । तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा । २२८ । क्षत्रविटशूद्रयोनिस्तु दण्डन्दातुमशक्नुवन् । आनृत्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैश्शनैः । २२९ । स्त्रीवालोलम्भतृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् । शिफाविदलरज्वाद्यैर्विदध्यामृपति-
दमम् । २३० । ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्यणि कार्यिणाम् । धनोप्पणा पच्यमानास्तान्निस्वान्कारयेन्मृपः । २३१ । कूटशासनकतृथ प्रकृतीनाञ्च दूषकान् । स्त्रीवालब्राह्मणघांश्च हन्याद्विदसेविनस्तथा । २३२ । तीरितश्चानुशिष्टं च यत्र कच-
नयद्भवेत् । कृतं तद्धर्मतो विद्यान् तद्भयो निवर्त्तयेत् । २३३ । अमात्याः प्राज्ञिवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा । तत्स्वयन्मृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रञ्च दण्डयेत् । २३४ । ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः । एते सर्वे पृथग्नो मद्वापातकिनो नराः । २३५ । चतुर्णामपि चैतेपाम्प्रायश्चित्तमकुर्वताम् । शरीरन्धनसंयुक्तन्दण्डन्यर्म्यम्प्रकल्पयेत् । २३६ । गुरुतल्ये भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः । स्तेये च श्वपदं कार्यम्ब्रह्महण्यशिराः पुमान् । २३७ । असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाव्याविवाहिनः । चरेयुः पृथिवीन्दीनाः सर्वधर्मवहिष्कृताः । २३८ । ज्ञातिसंवंधिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः । निर्हया निर्द्रमस्कारास्तन्म-
नोरनुशासनम् । २३९ । प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्वे वर्णा यथोदितम् । नांक्षा राज्ञा खलाटे स्युर्हाप्यास्तूतमसाहसम् । २४० ।

हैं । २३५ । ये चारो प्रायश्चित्त न करें तो धन सहित शरीर का दंड जो आगे कहेंगे सो इन्हें को देना । २३६ । मातृ गमन करने वाला मुरा पान करने वाला ब्राह्मण का मारह मामा सोना चोराने वाला ब्राह्मण को मारने वाला इन चारो के मस्तक में क्रम से भगाकार सुरा का ध्वजाकार (अर्थात् डेग भभका इस का आकार) कुत्ता के पांव का आकार शरीर रहित पुरुष का आकार चिन्ह करना । २३७ । चिन्ह सहित जो यह सब हैं इन्हें के भोजन यज्ञ पाठ विवाह आदि कर्म न कराना ये सब संपूर्ण धर्म से बाहर होकर दीनहीन होके पृथिवी में घूमें । २३८ । जाति और संबंधी लोग इन्हें का त्याग करें इन्हें के ऊपर दया न करें और इन्हें को नमस्कार न करें यही मनु जी की आज्ञा है । २३९ । शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त को करने वाले जो चारो वर्ण उन्हीं के मस्तक में चिन्ह राजा न करे किंतु महस्र पण दंड देवे । २४० । अपराध करने वाला ब्राह्मण को मध्यम माहम दंड देवे अथवा गृह को सामग्री और द्रव्य इन दोनों सहित

अपराध करने वाले ब्राह्मण को राज्य से निकाल देंगे । २४१ । अत्रिय आदि तीनों वर्ण इच्छा रहित इन पापों को करें तो उन्हें का संपूर्ण द्रव्य हरण करें और इच्छा से किए हों तो बध दंड देना । २४२ । साधु राजा महा पातकियों का धन न लेवे कदाचित् लाभ से लेवे तो उस को दोष से संयुक्त होता है । २४३ । दंड के धन को जल में डाल कर वरुण देवता के आशोधन करें अथवा वेद और शास्त्र इन दोनों से युक्त जो ब्राह्मण है उस को देंगे । २४४ । क्योंकि महा पातकी के दंड से जो धन मिला है उस का स्वामी वरुण है वेद के पार जाने वाला ब्राह्मण संपूर्ण जगत का स्वामी है । २४५ । जहां पापियों से धन के आगम को राजा वर्जन करता है तहां मनुष्य ब्रज्जत दिन तक जीते हैं । २४६ । और बैश्य लोग जिस प्रकार से अन्न को बांते हैं सो अन्न उसी प्रकार से भिन्न भिन्न उत्पन्न होता है और लड़के भी नहीं मरते हैं अंग में होन कोई नहीं उत्पन्न होता है । २४८ । इच्छा से ब्राह्मणों का बध करने वाले को दोष वर्ण

आंगस्त्र ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः । विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः । २४१ । इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येता-
न्यकामतः । सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् । २४२ । नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् । आददानस्तु
तस्मिन्भातेन दोषेण लिप्यते । २४३ । अप्सु प्रवेश्य तं दण्डम्बरुणायापपादयेत् । श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ।
२४४ । ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञा दंडधरो हि सः । ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः । २४५ । यत्र वर्जयते राजा
पापकृद्भ्यो धनागमम् । तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः । २४६ । निष्यद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक् ।
वालाश्व न प्रमीयन्ते विकृतन्न च जायते । २४७ । ब्राह्मणान्वाधमानं तु कामादवरवर्णजम् । हन्याच्चिचैर्वधोपायैरुद्देजनकरै-
र्नृपः । २४८ । यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे । अधर्मा नृपतेर्हृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः । २४९ । उदितोयम्विस्तरशो
मिथो विवदमानयोः । अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः । २५० । एवं धर्माणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः । देशान-
लब्धांस्त्रिंशेत लब्धांश्च परिपालयेत् । २५१ । सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः । कण्टकोद्धरणे यत्नमातिष्ठेद्वत्सुकमम् ।
२५२ । रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् । नरेन्द्रास्त्रिदिवं यांति प्रजापालनतत्पराः । २५३ । अशासंस्तत्करा-

को उद्देग करने वाला नाना प्रकार का जो बध की उपाय है उसमें बध करें । २४८ । बध के योग्य जो नहीं है उस के बध से जितना पाप होता है उतना ही पाप बध के योग्य को छोड़ने में होता है । २४९ । अठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग में परस्पर विवाद करने वालों का विस्तार पूर्वक व्यवहार निर्णय को मैं न कहूँ । २५० । इस रीति से धर्म युक्त कार्यों को अच्छी रीति से करत मर्ते राजा नहीं मिले जो देश है उन्हें के लेने की इच्छा करें और मिले हुए देशों के पालने की इच्छा करें । २५१ । शास्त्रोक्त देश में शास्त्रोक्त किला बनाके उस में रहके कांटा निकालने में उनमें यत्न को करें । २५२ । प्रजा के पालन में तत्पर होके राजा भले लोगों के रक्षण से और कांटा के निकालने से स्वर्ग में जाता है । २५३ । चोरों का दण्ड नहीं करता और प्रजा से अपना भाग लेता

है ऐसे राजा को राज्य में प्रजा कोप करते हैं और उभी पाप से पुण्य नष्ट हुआ तिससे स्वर्ग प्राप्ति भी नहीं होती । २५४ । जिस राजा के बाहु बल पाके प्रजा लोग निर्भय रहते हैं उस का राज्य नित्य बढ़ता है जिस रीति से खींचा हुआ वृक्ष । २५५ । दृता की आंख से देख कर राजा पर द्रव्य को हरण करने वाले चोर को प्रकाश अप्रकाश भेद करके दो प्रकार का जाने । २५६ । नाना प्रकार की वस्तुओं को बँचने वाले प्रकाश चोर हैं निर्जन देश में और सोए हुए मनुष्य मंते जो पर द्रव्य को चोरावे सो अप्रकाश चोर है । २५७ । उत्कोचक (अर्थात् कार्य वाले मनुष्य से धन लेके अयुक्त कार्य करने वाला) औपधिक (अर्थात् भय देखाके धन लेने वाला) बंचक (अर्थात् मुषण आदि वस्तु में निकाम वस्तु डालके ठगहारी करके पर धन लेने वाला) कितव (अर्थात् द्यूत और समाह्वय का करने वाला) मंगलादेश वृत्त (अर्थात् धन पुत्र लाभ आदि मंगल समाचार कहके जीने वाला) भद्र (अर्थात् पाप को ठाँपकर सुंदर आचार को प्रकाश कर पर धन को लेने वाला) ईक्षणिक (अर्थात् हस्त रेखा आदि देख कर शुभ अशुभ फल को कहकर पर धन को ग्रहण करने वाला) । २५८ ।

न्यस्तु वलिं गृह्णाति पार्थिवः । तस्य प्रशुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते । २५४ । निर्भयन्तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् । तस्य तद्वर्द्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः । २५५ । द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् । प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्मही-
पतिः । २५६ । प्रकाशवंचकास्तेषां नानापण्योपजीविनः । प्रच्छन्नवच्चकास्वेते ये स्तेनाटविकादयः । २५७ । उत्कोचकाश्चो-
पधिका वंचकाः कितवास्तथा । मङ्गला देशवृत्ताश्च भद्राद्येष्टाणि कैस्तह । २५८ । असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ।
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोपितः । २५९ । एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशांस्लोककण्टकान् । निगूढचारिणश्चान्यान-
नार्यनार्यलिङ्गिनः । २६० । तान्विदित्वा सुचरितैर्गृह्णैस्तत्कर्मकारिभिः । चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत् । २६१ ।
तेषान्दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मेण तत्त्वतः । कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः । २६२ । न हि दण्डादृते शक्यः
कर्तुम्पापविनिग्रहः । स्तेनानाम्पापवृद्धोनां निमृत्तं चरतां क्षितौ । २६३ । सभा प्रपा पूषशाला वेशमद्यान्विक्रयाः । चतुष्य-

महा मात्र (अर्थात् हाथी के सिखाने में जीने वाले) चिकित्सक (अर्थात् बैदई में जीने वाले) ये दोनों जब अच्छा कर्म न करें और धन को ग्रहण करें तब शिल्पोपचार युक्त (अर्थात् चित्र लिखन आदि उपाय में जीने वाले) बिना कहे शिल्पोपाय का प्रोत्साहन करके पर धन ग्रहण करने वाले) पराई स्त्री (अर्थात् बेव्या ये सभ पर कें बजी करण में प्रवीण हैं । २५९ । इन्हें आदि को प्रकाश लोक का कण्टक जानना) ठपे हुए और हैं जो भले नहीं हैं और भले लोगों की नाई रहते हैं । २६० । पूर्व कथित बंचकों को ठप करके बचन कर्म कराने वाले जो मध्य और अनेक स्थान में स्थित जो चार (अर्थात् सातर्ष अध्याय में कहे हुए जो कापटिक आदि) इन्हें से जानकर उन को उत्साह करके (अर्थात् दुःख देकर) अपने वश में ल्यावें । २६१ । अपने अपने कर्म में तब पूर्वक उन्हीं के दोष को कह करके अच्छे प्रकार से अपराध के अनुसार उन्हीं को दंड देवें । २६२ । चोर और पापी जो मद्यवेष धारण करके पृथिवी में चलते हैं इन्हीं के पाप का निग्रह दंड बिना करने के शक्य नहीं है इस लिये दंड करना । २६३ । सभा (अर्थात् ग्राम नगर आदि में निश्चित जन समूह स्थान) पवसरा पक्वान बनाने का स्थान मद्य

बचने का स्थान अन्न विक्रय स्थान चौरहा वेष्टा का गृह प्रसिद्ध वृत्त मूल जन समूह स्थान । २६४ । पुरानी बाग बन कारीगरों का स्थान शूना गृह आद्य आदि बस स्थान नया बनाया बन । २६५ । ऐसे देशों के मेना आदि में तस्कर आदि का निवारण राजा करे क्योंकि बहधा ऐसे देश में अन्न पान स्त्री संभोग आदि का खोजने के लिये तस्कर आदि रहते हैं । २६६ । इन्हीं के महाय करने वाले मंधिच्छद आदि कर्म क जानने वाले चोरों की माथा में निपुण पूर्व तस्कर जो चार का रूप धारण किए हैं इन्हीं से चोरों का जानना और चोरों का नाश भी करना । २६७ । पूर्व चार जो चार का रूप धारण किए हैं सो उन मभ को ऐसा कहे कि आइए हमारे गृह चलिए लड्डू आदि भोजन करिए हमारे देश में एक ब्राह्मण ऐसा है कि मनोरथ बस्तु की सिद्धि को जानता है उस को देखिए कोई एक ही है और बह्त में लड़ाई करेगा उस को देखिए एवं प्रकार का बहाना से राजा का दंड धारण करने वाले पुरुष उन चोरों का समागम करें और उन चोरों को पकड़ें । २६८ । जो चोर भोजन पान स्थान में निग्रह की शंका करके न जावें और जो चार का रूप धारण किए हुए पूर्व चोरों से समागम न करें

याश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च । २६४ । जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च । शून्यानि चाप्यगाराणि वनाप्य-
पवनानि च । २६५ । एवं विधानृपो देशान् गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः । तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् । २६६ । तत्पहा-
यैरनुगतैस्त्रीनाकर्मप्रवेदिभिः । विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः । २६७ । भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानाञ्च दर्शनैः ।
शीर्ष्यकर्मोपदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् । २६८ । ये तत्र नापसर्पयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये । तान्प्रमत्त नृपो हन्यात्समिचज्ञा-
तिवांधवान् । २६९ । न होदैन विना चौरं घातयेद्भार्मिको नृपः । सहेतुं सोपकरणं घातयेद्विचारयन् । २७० । ग्रामेष्टपि
च ये केचिच्चौराणाम्भक्तदायकाः । भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वास्तानपि घातयेत् । २७१ । राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्ताश्चैव चो-
दितान् । अभ्याघातेषु मध्यस्थाच्छिष्याच्चौरानिव द्रुतम् । २७२ । यथापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः । दण्डेनैव तमप्योपे-
त्स्वकाङ्क्षमाहि विच्युतम् । २७३ । ग्रामघाते हिताभङ्गे यथिमोपाभिदर्शने । शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ।

उन्हीं को उभी में जानकर हठ से बुलाकर जाति स्वजन सहित उन्हीं का नाश राजा करे । २६८ । धार्मिक राजा चोरों का चिन्ह बिना उन्हीं का घात न करे चोरी का चिन्ह सहित चोर हो तो सामग्री सहित चोर का नाश करे विचार न करे कि दम को दुःख होगा । २७० । ग्राम में जो कोई चोरों का अन्न पात्र स्थान को देवे उस का भी नाश राजा करे । २७१ । राज्य में जो रक्षाधिकारी मनुष्य हैं और ग्राम के चोरों और रहने वाले मनुष्य से मभ चोरों के उपदेश में मध्यस्थ हों तो उस को भी चोर की भाँति राजा दंड करे । २७२ । पर को घातन प्रतिग्रहादि करके यागदानादि धर्म का उत्पादन करके जीवन करें ऐसा जो ब्राह्मण हैं और अपने धर्म से च्युत हैं उस को भी दंड करके दुःख राजा देवे । २७३ । तस्कर आदि में ग्राम के लूटने में पुलके भंग में मार्ग में चोर के दर्शन में शक्ति रहत संत जो दौड़ता नहीं सो सामग्री सहित निकालने के योग्य हैं । २७४ । राजा का काय (अर्थात् खजाजा) को चोराने वाला और राजा के विरुद्ध कर्म में रहने वाला और राजा के शत्रुओं से बैर कराने वाला इन को नामा प्रकार के दंड से (अर्थात् अपराधानुसार कर चरण जिहाष्केदनादि में) घात

करना । २७५ । रात्रि में संधिच्छेदन करके जो चोरी करता है उसका दोनों हाथ काटके तीखे शूल पर बैठावे । २७६ । गांठि काटने वाले का अंगूठा और उस के समोप की अंगुली इन दोनों का छेदन करना पहिली बेर में और दूसरी बेर में हाथ पाँव काटना तीसरी बेर में बध करना । २७७ । चोर को अग्नि भात शस्त्र अवकाश इन्हीं का देने वाला और चोरी की वस्तु रखने वाला इन्हीं को चोर की नाईं राजा नाश करे । २७८ । जो क्लान दान आदि से परीपकार करने वाला तड़ाग है उसको मृत्यु भेद आदि से विनाश करता है उसको जल में डुबाके अथवा दूसरे प्रकार से हनन करे जब उस तड़ाग को फेर संस्कृत करे (अर्थात् पहिले की नाईं बना देवे) तो उसका बध न करना किंतु उत्तम माहम दंड देना । २७९ । राजा का धान्य आदि धन का गृह हथियार का गृह देवता का गृह इन्हीं का भेद करने वाला और हाथी घोड़ा रथ को चोराने वाला इनको हनन करना इसमें कुछ विचार न करना । २८० । किसी ने प्रजा के अर्थ तड़ाग किया और दूसरा उसका जल ग्रहण करे और जल के आने की मार्ग को मृत्युबंध करके नाश करे सो प्रथम माहम दण्ड के योग्य होता है । २८१ ।

२७४ । राज्ञः कोषापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् । २७५ । संधिं कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः । तेषां कृत्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत् । २७६ । अङ्गुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे । द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति । २७७ । अग्निदानभक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् । सन्निधातृश्च मोपस्य हन्याच्चौर-मिवेश्वरः । २७८ । तड़ागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा । तद्वापि प्रतिसंक्षुर्याद्वाप्यस्तूतमसाहसम् । २७९ । कोष्ठागारा-युधागारदेवतागारभेदकान् । हस्त्यश्वरथहर्तृश्च हन्यादेवाविचारयन् । २८० । यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तड़ागस्योदकं हरेत् । आ-गमं वाप्यपांभिद्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् । २८१ । समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि । स द्वौ कार्पापणौ दद्यादमेध्यञ्चाशु-शोधयेत् । २८२ । आपन्नतोथवा वृद्धो गर्भिणी वाल एव वा । परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोधयमिति स्थितिः । २८३ । चिकि-त्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतान्दमः । अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः । २८४ । संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानाच्च भे-दकः । प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च । २८५ । अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा । मणीनामपवेधे च दण्डः

बिना आपत्काल के राज मार्ग (अर्थात् सड़क) में अपवित्र वस्तु को डालें सो दो कार्पापण दंड देवे और अपवित्र वस्तु जो डाला है उसको भीषण राज मार्ग से बाहर ले जावे । २८२ । आपत्काल में प्राप्त कोई और वृद्ध गर्भिणी बालक ये सब पुरुष कथित कर्म का करें तो परिभाषण (अर्थात् क्या किया) के योग्य होते हैं दंड के योग्य नहीं होते परंतु मार्ग को तो शुद्ध करें (अर्थात् उस अपवित्र वस्तु को मार्ग से बाहर ले जावें) । २८३ । शास्त्र को बिना जाने पशु आदि में झूठी बैदई करने वाले को पूर्व माहम दंड देना और मनुष्य में झूठी बैदई करने वाले को मध्यम माहम दंड देना । २८४ । संक्रम (अर्थात् जल के ऊपर गमन करने के लिये स्थापित जो काष्ठ और शिला आदि) और राज दार में जो ध्वज (अर्थात् चिन्ह) पुष्करिणी आदि में जो यष्टि (अर्थात् झाड़ी) प्रतिमा (अर्थात् माटी) आदि से बनी हुई देवता की कांटी मूर्ति) इन में से कोई एक का भेद करने वाला पांच मो पण दंड देवे और जो बिनाश किया है उसको गया बना देवे । २८५ ॥

अदृष्टित द्रव्य के दृष्टन में और भेदन में मणियों के निकाम बेध करने में प्रथम माहम दंड देवे । २८६ । सम मूल्य के देने वालों को अच्छी वस्तु देता है और एक को निकाम वस्तु देता है इस रीति में बिषम व्यवहार करने वाला अथवा किसी को बहुत मोल वाली वस्तु देता है किसी को थोड़े मोल वाली वस्तु देता है इस प्रकार में बिषम व्यवहार करने वाला पूर्व माहम अथवा मध्यम माहम दंड को पाता है अपराधानुसार से दंड बिकल्प जानना । २८७ । बंधन गृह (अर्थात् जिस में अपराधी रहते हैं) को सड़क में बनावे जिस को देखने में पाप करने वाले को दुःख होवे (अर्थात् बेड़ी में पांव कुधा लषा से पीड़ित बड़ा मख केश दाढ़ी दुर्बल शरीर ऐसे मनुष्यों को देखने में नहीं करने योग्य वस्तु में डरेंगे कि ऐसी दशा को पविगे जब निकाम कर्म करेंगे) । २८८ । प्राकार (अर्थात् किला) का भेदन करने वाला और उस के खंधक को पाटने वाला और उस के द्वार को भेदन करने वाला इन को शीघ्र देश में निकाल देवे । २८९ । अभिचार (अर्थात् शास्त्र कथित मारण प्रयोग) मूल कर्म (अर्थात् पांव की घूली लेकर मारण प्रयोग) इन कर्मों के करने वाले को दो मा पण दंड देना और मरण हो जाय

प्रथमसाहसः । २९० । समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्द्वै मूल्यतोपि वा । स प्राप्नुयाद्दमम्पूर्वञ्चरो मध्यममेव वा । २९१ । वंधनानि च सर्वाणि राजमार्गे निवेशयेत् । दुःखिता यत्र दृश्येरन विकृताः पापकारिणः । २९२ । प्राकारस्य च भेत्तारम्परिखाणाञ्च पूरकम् । द्वाराणाञ्चैव भंक्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् । २९३ । अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्या द्विशतो दमः । मूलकर्माणि चानाप्तेः कृत्यासु विविधासु च । २९४ । अवीजविक्रयो चैव बीजात्कृष्टन्तयैव च । मर्यादा भेदकञ्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्धमम् । २९५ । सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारन्तु पार्थिवः । प्रवर्तमानमन्याये छेदयेत्तवशः क्षुरैः । २९६ । सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च । कालमासाद्य कार्यञ्च राजा दण्डम्प्रकल्पयेत् । २९७ । स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोपदण्डौ सुहृत्तथा । सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते । २९८ । सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथा क्रमम् । पूर्वं पूर्वं गुरुतरञ्जानीयाद्यसनं महत् । २९९ ।

तो मनुष्य मारने का दंड देना इसी रीति से माता पिता भार्या आदि को काटकर मंत्री आदि को मोह करके धन लेने के निमित्त बन्धीकरण प्रयोग और उखाटन आदि नाना प्रकार का प्रयोग इस के करने में भी दो मा पण दंड देना । २९० । प्ररोह (अर्थात् अंकुर) के समर्थ बीज नहीं हैं उस को प्ररोह समर्थ है ऐसा कह के उस बीज का बेचने वाला अथवा निकसो बीज में थोड़ा अच्छा बीज डालके बेचने वाला मर्यादा का भेद करने वाला ये सब नाना प्रकार का बिकार रूप (अर्थात् नाक हाथ पांव इन को काटकर) बंध दंड को पावे । २९१ । सब दुष्टों में अति दुष्ट माना है सो जब अन्याय में प्रवृत्त हो तो उस को अपराधानुसार करके छुरा से थोड़ा थोड़ा अंग का कंदन करें । २९२ । खेती करने की ओर वस्तु है हर नुदरि आदि और शस्त्र औषध दवाओं के हरण में काल और कार्य दण्डों को देख के राजा दंड की कल्पना करें । २९३ । स्वामी (अर्थात् राजा) अमात्य (अर्थात् मंत्री) पुर राज्य कोष दंड सुहृत् इन सातों की प्रकृति कहते हैं और ये सात राज्य के अङ्ग हैं इस लिये राज्य सप्ताङ्ग कहाता है । २९४ । इन सातों में क्रम से पहिला पहिला बड़ा व्यसन (अर्थात् दुःख) जानना । २९५ । लोक में विदण्ड की नाई परस्पर मिला ऊँचा सप्ताङ्ग राज्य में परस्पर बिलक्षण उपकार से कोई अङ्ग अधिक नहीं है यद्यपि पूर्व पूर्व अङ्गों को

आधिक्य कहा है तथापि इन सातों अङ्गों के मध्य में अन्य अङ्ग के उपकार को अन्य अङ्ग नहीं करने सकता इससे उत्तर उत्तर अङ्ग की भी अपेक्षा करना पड़ता है इसी में आधिक्य का निषेध कहा है इस में दृष्टान्त यती का चिदण्ड है जैसे तीनों दण्ड मिलाके ऊपर चार अङ्गुल गौ के बाल से बेटन करने से परस्पर संबंध होता है और चिदण्ड धारण शास्त्रार्थ में कोई दण्ड अधिक नहीं है तैसे पूर्व कथित सम्राज्य राज्य को जानना । २८६ । जिस अङ्ग में जो काम होवै उस में वही अङ्ग भेद है । २८७ । चार उल्हास कर्मा इन्हों करके अपनी शक्ति और पर की शक्ति का गित्य ही राजा जानै । २८८ । सभ पीड़ा और दुःख इन्हों की चिंता करके कोट बड़े कार्य को आरंभ करे । २८९ । कर्मों के करते करते थक जावे तो फेर फेर कर्मों का आरंभ करत ही रहे क्योंकि कर्म करने वालों की सेवा लक्ष्मी करती है । २९० । कृत चेता द्वापर कलि ये चारो युग हैं सो नहीं किंतु जैसा आचरण राजा करे तैसा युग होता है (अर्थात् राजा ही युग है) । २९१ । अज्ञान आलस्य आदि में जब राजा उद्यम न करे तब कलि होता है और जानके कर्म नहीं करता तब द्वापर होता है कर्म करता है तब चंता होता है यथा शास्त्र

सप्ताङ्गस्यैह राज्यस्य विष्टब्धस्य चिदण्डवत् । अन्योन्यगुणवैशेष्यान्त्र किञ्चिदतिरिच्यते । २८६ । तेपु तेपु तु कृत्येपु तत्तदङ्गम्विशिष्यते । येन यत्साध्यते कार्यन्तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते । २८७ । चारेणात्साहयोगेन क्रिययैव च कम्मणाम् । स्वशक्तिम्परशक्तिश्च नित्यं विद्यान्महीपतिः । २८८ । पीडनानि च सर्वाणि व्यसनामि तथैव च । आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् । २८९ । आरभेतैव कर्माणि आन्तः आन्तः पुनः पुनः । कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते । २९० । कृतं चेतायुगञ्चैव द्वापरकलिरिव च । राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते । २९१ । कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्वापरं युगम् । कर्मस्वभुद्यतस्चेता विचरन्तु कृतं युगम् । २९२ । इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च । चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तनृपश्चरेत् । २९३ । वार्षिकं चतुरोमासान् यजेन्द्रोभिप्रवर्षति । तथाभिवर्षेत्सं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् । २९४ । अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः । तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हितम् । २९५ । प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः । तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् । २९६ । यथा यमः प्रियदेयौ प्राप्ते काले नियच्छति । तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् । २९७ ।

कर्म करत विचरता है तब कृत युग होता है इस लिये राजा सर्व काल में कर्म करता रहे इस पर तात्पर्य है और चारो युग नहीं है इस पर तात्पर्य नहीं है । २९२ । इन्द्र मूर्ध वायु यम वरुण चंद्र अग्नि पृथिवी इन्हों के पराक्रम को राजा करे और दुष्टों का नाश करके प्रताप और प्रेम से युक्त होवे । २९३ । जिस प्रकार से वरमात के चार मास में इन्द्र वर्षा करते हैं तिसी प्रकार में इन्द्र का कर्म करत संते राजा संपूर्ण राज्य में अङ्गों के ऊपर काम (अर्थात् दृष्टित) की दृष्टि करे प्रजा लोग जिस काम की इच्छा करें उस को राजा पूरे । २९४ । जिस प्रकार से आठ मास अपने किरण से जल को पृथिवी में सूर्य हरण करत हैं तिसी प्रकार में सूर्य का कर्म करत संते राजा राज्य में कर ग्रहण करे । २९५ । जिस प्रकार से सभ जीवों में पेंठकर वायु घूमता है तिसी प्रकार से वायु का कर्म करत संते चारों में संपूर्ण राज्य में प्रवेश करके घूमे । २९६ । जिस प्रकार से यम प्रिय और शत्रु इन दोनों के काल प्राप्त भवे संते मारता है तिसी रीति से

सभ प्रजा को अपराध के अनुसार यम का कर्म करत मंते राजा दंड देवै । ३०७ । जिस प्रकार से वरुण अपने पात्र से दुष्टों को बांधते है तिसी प्रकार से पापियों की वरुण का कर्म करत मंते बांधै । ३०८ । जिस प्रकार से परिपूर्ण चंद्र को देखकर मनुष्यों का आनंद होता है तिसी रीति से सभ जीव राजा को देखकर आनंदित रहें ऐसा चंद्र का व्रत धारण करत मंते राजा रहें । ३०९ । पाप कर्म में नित्य ही प्रतापयुक्त और तेज सहित रहें अग्नि का व्रत करत मंते दुष्ट मंत्रियों का नाश करने वाला होवै । ३१० । जिस प्रकार से पृथिवी सभ जीवों का सम धारण करती है तिसी रीति से सभ जीवों को पृथिवी का व्रत धारण करत मंते राजा धारण करें । ३११ । इन उपायों से और दूसरी उपायों में युक्त होकर आलस्य रहित नित्य हो अपने राज्य में और पर के राज्य में चोरों का नाश करें । ३१२ । बड़े आपत्काल को प्राप्त भये मंते भी राजा ब्राह्मणों को कोपित न करें ब्राह्मणों के कोप भये मंते बल बाह्यन सहित राजा नाश का शीघ्र पाता है । ३१३ । जिन ब्राह्मणों ने अग्नि समुद्र चंद्र इन्हों को क्रम से सभ वस्तु का भोजन करने वाला अपेय चय रंगी किया तिन ब्राह्मणों को कुपित कराके कौन नाश को न पावेगा । ३१४ । जो

वरुणेन यथा पाशैर्वेद्ध एवाभिदृश्यते । तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतज्जि यारुणम् । ३०८ । परिपूर्णं यथा चंद्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः । तथा प्रकृतयो ह्यस्मिन्स चांद्रव्रतिको नृपः । ३०९ । प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु । दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् । ३१० । यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम । तथा सर्वाणि भूतानि विभ्रतः पाथिवस्मृतम् । ३११ । एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः । स्तेनान् राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रं पर एव च । ३१२ । परामर्षापदं तामो ब्राह्मणात् प्रकोपयेत् । ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सवलवाहनम् । ३१३ । यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः । क्षय्यी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् । ३१४ । लोकानन्यान्स्त्रजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपितः । देवान्कुर्व्युर्देवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्स मृभूयात् । ३१५ । यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा । ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषुः । ३१६ । अविदांश्चैव विदांश्च ब्राह्मणो दैवतम्महत् । प्रणीतयाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतम्महत् । ३१७ । अग्निशानेऽपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति । ह्यमानश्च यज्ञेषु मूय एवाभिवर्द्धते । ३१८ । एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु । सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं देवतं हि तत् । ३१९ । शत्रुस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः । ब्रह्मैव सन्नियंतृस्यात् शत्रुं हि ब्रह्मसम्भवम् । ३२० । अद्भ्योऽग्नि-

ब्राह्मण कुपित भये मंते दूसरे लोक और लोकपाल को बनावै देव को अदेव करें उस ब्राह्मण को पीड़ित मंते कौन समृद्धि को पावेगा (अर्थात् कोई न पावेगा) । ३१५ । जिन ब्राह्मणों का वेद ही धन है उन्हीं के आश्रित होकर लोक और देव रहते हैं उन ब्राह्मणों को जीने की इच्छा करत मंते कौन मारेगा । ३१६ । जिस प्रकार से संस्कार के प्राप्त हो अथवा न प्राप्त हो अग्नि परंतु बड़ा देवता है तिसी प्रकार से ब्राह्मण पंडित हो अथवा मूर्ख हो परंतु बड़ा देवता है । ३१७ । अग्निशान में भी तेज वाली अग्नि दोष को नहीं पाती फेर भी यज्ञ में ह्यमान भई (अर्थात् होम को पाई) तो बढ़त ही है । ३१८ । इसी रीति से यद्यपि संपूर्ण अनिष्ट कर्म करते रहें ब्राह्मण तथापि पूजा के योग्य हैं और बड़े देवता हैं । ३१९ । शत्रिय संपूर्ण वस्तु करके बड़ा हो परंतु ब्राह्मण को अपने अधीन करने नहीं सकता क्योंकि ब्राह्मण से भया है इसलिये शत्रियों को अपने अधीन ब्राह्मण करने सकता है । ३२० । जल ब्राह्मण पत्थर इन्हों में क्रम

ब करना ब्राह्मणों की नित्य आश्रय करना ये सब कर्म शूद्रों की उत्तम जाति देनेहार हैं। ३२५ । आपत्काल की अभाव में चारों वर्ण का शुभ कर्म विधि यह कहा आपत्काल में उन्हीं के कर्म विधि की क्रम से जानो। ३२६ ॥ • ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कृष्णक भट्ट व्याख्यानुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी मल्लत पाठशालीय गुलजार शर्मा पण्डित वृत्तायां नवमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ • ॥ अपने कर्म में स्थित होकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण पढ़ने से जाना गया जो अपना कर्म उस को करत मते वेद को पढ़ें और ब्राह्मण तो पढ़ावें भी क्षत्रिय वैश्य न पढ़ावें कदाचित् पढ़ावें तो वे प्रायश्चित्त करें। १ ॥ यथाविधि सब को जीविका के उपाय को ब्राह्मण जानै दूररे को कहें और आप भी तैसा करें। २ ॥ बड़ी जाति बड़ा कारण (अर्थात् उत्पत्ति स्थान) नियम का धारण बड़ा संस्कार इन सभों में वर्णों का प्रभु ब्राह्मण है। ३ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति कहाते हैं और चौथा वर्ण शूद्र एक जाति कहाता है पांचवां वर्ण है नहीं। ४ । सब वर्णों में पुरुष संभोग से जो दूषण उससे रहित समान वर्ण की यथा शास्त्र विवाह की प्राप्त जो स्त्री उस में क्रम करके (अर्थात् ब्राह्मण में

ब्राह्मणायाश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते । ३३५ । एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः । आपद्यपि हि दस्तेषां क्रम-
शस्तन्निवोधत । ३३६ ॥ • ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे मृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ • ॥ अधीयीरंस्त्रयोवर्णा
स्वक्रमेण द्विजातयः । प्रव्रयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः । १ । सर्वेषाम्ब्राह्मणो विद्यावृत्त्युपायान यथाविधि । प्रव्रया-
दितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् । २ । वैश्यात्प्रकृतिश्रैयात् नियमस्य च धारणात् । संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानाम्ब्राह्मणः
प्रभः । ३ । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यश्चैव वर्णा द्विजातयः । चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः । ४ । समदर्शेषु तुल्यासु
पत्नीष्वक्षतयानिषु । आनुलोम्येन संभृता जात्याज्ञेयः स्त एव ते । ५ । स्त्रोषनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितास्तुतान । सदृशानेव
तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् । ६ । अनंतरासु जातानां विधिरेव सनातनः । द्वेकांतरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिर्मन्विधम् ।
७ । ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते । निषादः शूद्रकन्यायां यः पारश्व उच्यते । ८ । क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूरा-
चारविहारवान् । क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रोनाम प्रजायते । ९ । विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः । वैश्यस्य वर्णं चैकस्मिन् पठेते

ब्राह्मणों में क्षत्रिय से क्षत्रिया में) जो उत्पन्न है सो माता पिता की जाति वाले कहाते हैं। ५ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य में अनंतर जाति में (अर्थात् ब्राह्मण में विवाहिता क्षत्रिय में क्षत्रिय में विवाहिता वैश्य में वैश्य में विवाहिता शूद्रा में) उत्पन्न जो है सो रुद्ध है माता के दोष से निर्दित है। ६ । अनंतर जाति में उत्पत्तियों की यह नित्य विधि कहा अब दो एक जाति अंतर देके उत्पत्तियों की विधि आगे कहेंगे उस को जानो। ७ । ब्राह्मण में विवाहिता वैश्या में अम्बष्ठ जाति वाला होता है और ब्राह्मण में विवाहिता शूद्र की कन्या में निषाद जाति वाला होता है उस को पारश्व भी कहते हैं। ८ । क्षत्रिय में विवाहिता शूद्रा कन्या में क्रूर आचार विहार वाला क्षत्रिय शूद्र की शरीर वाला उद्यनाम की जाति वाला होता है। ९ । ब्राह्मण से क्षत्रिया आदि तीन वर्ण की स्त्री में क्षत्रिय से वैश्य आदि दो वर्ण की स्त्री में वैश्य से शूद्र वर्ण की स्त्री में जो उत्पन्न होते हैं ये क अपसद (अर्थात् निकट) कहाते हैं। १० । अनुलोम कहके अब प्रतिकोम कहते हैं

क्षत्रिय से ब्राह्मणी कन्या में सुत जाति वाला होता है वैश्य से क्षत्रिया कन्या में मागध और ब्राह्मणी कन्या में वैदेह जाति वाला होता है । ११ । शूद्र से वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण की कन्या में क्रम से आयोगव क्षत्रा मनुष्यों में अधम चाण्डाल जाति वाले होते हैं । १२ । जैसा एक जाति अंतर वाले अनुलोम में अम्बष्ठ और उग्र है तैसा प्रतिलोम में क्षत्रा और वैदेहक है । १३ । द्विजाति में अनंतर वर्ण की स्त्री में क्रम से उत्पन्न जो लड़के कहे हैं वे सभ माता के दोष से अनंतर नाम वाले कहते हैं । १४ । ब्राह्मण से उग्र अम्बष्ठ आयोगव इन तीनों की कन्या में क्रम से आहत आभोर धिग्वण जाति वाले होते हैं । १५ । आयोगव क्षत्रा चाण्डाल ये तीनों पुत्र कार्य में समर्थ नहीं हैं । १६ । मागध वैदेह रुत ये भी तीनों पुत्र कार्य में समर्थ नहीं हैं । १७ । निषाद से शूद्रा में पुङ्गव जाति वाले होते हैं निषादी में शूद्र से कुक्कुट जाति वाले होते हैं । १८ । क्षत्रा से उग्र की कन्या में श्वाक जाति वाले होते हैं वैदेहक से अम्बष्ठ जाति की कन्या में बण जाति वाले

ऽपसदाः स्मृताः । १० । क्षत्रियादिप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः । वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गना सुतौ । ११ । शूद्रा-
दायोगवः क्षत्रा चाण्डालश्चाधमो नृणाम् । वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः । १२ । एकांतरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्री
यथा स्मृतौ । क्षत्रवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येपि जन्मनि । १३ । पुत्रा येनंतरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ताद्विजन्मनाम् । ताननंतरनान्मस्तु
मातृदापात्रचक्षते । १४ । ब्राह्मणादुग्रकन्यायामाहतो नाम जायते । आभोरोम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः । १५ ।
आयोगवश्च क्षत्रा च चाण्डालश्चाधमो नृणाम् । प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदाश्चयः । १६ । वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रिया-
त्सूत एव तु । प्रतीपमेतै जायन्ते शूद्रादपसदाश्चयः । १७ । जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुङ्गवः । शूद्राज्जातो नि-
षाद्यांतु स वै कुक्कुटकः स्मृतः । १८ । क्षत्रुर्जातस्तथोग्रायां श्वाक इति कीर्त्यते । वैदेहकेन त्वम्बष्ठामुत्पन्नो वेण उच्यते ।
१९ । द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् । तान्सावित्री परिश्रष्टान्प्रात्यानिनिति विनिर्दिशेत् । २० । ब्रात्यान् जायते
विप्रात्यापात्मा भूर्जकण्टकः । आर्वात्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च । २१ । भस्मोमक्षश्च राजन्याद्वात्यान्निष्क्रिविरेव च । नटश्च
करणश्चैव खसो द्रविड एव च । २२ । वैश्यान् जायते ब्रात्यात्सुधन्वाचार्य्य एव च । कारुषश्च विजम्भा च मैत्रः सात्वत एव च ।
२३ । व्यभिचारेण वर्णानामवेद्या वेदनेन च । स्वकर्मणाञ्च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः । २४ । संकीर्णयोनयो ये तु प्रति-

होते हैं । १९ । द्विजाति से समान वर्ण वाली स्त्री में उत्पन्न जो भय और वह यज्ञोपवीत संस्कार से हीन ऊँह तो ब्रात्य कहते हैं । २० । ब्रात्य ब्राह्मण से ब्राह्मणी में जो उत्पन्न भया मो पापामा भूते काडरु जाति वाला कहाता है उसी का दण्ड भेद करके आर्वाच बाटधान पुष्पध शैख कहाते हैं । २१ । ब्रात्य क्षत्रिय से क्षत्रिय वर्ण की स्त्री में क्षत्रजाति वाल होते हैं उसका नाम क्षत्रमक्ष निष्क्रिविरेव करण खस द्रविड हैं । २२ । ब्रात्य वैश्य से वैश्य वर्ण की स्त्री में सुधन्वा चार्य जाति वाले होते हैं उन के कारुष बिजम्भा मैत्र सात्वत जाति कहते हैं । २३ । दूसरे वर्ण के पुरुष से दूसरे वर्ण की स्त्री में अभाग विवाह करने के योग्य जो नहीं उस के साथ विवाह अपने कर्मों का त्याग इन सभी करके वर्ण संकर उत्पन्न होते हैं । २४ ॥ अनुलोम प्रतिलोम करके परस्पर संबंध से जो संकीर्ण योनि (अर्थात्

वर्ष संकर योनि उस को मैं कहूँगा । २५ । मृत वैदेहक चाण्डाल मागध क्षत्र आयोगव । २६ । ये सभ अपने जाति की स्त्री में अपने वर्ण को उत्पन्न करते हैं यहाँ चाण्डाल मागध जाति की अपेक्षा करके जानना किंकि चारों वर्ण की स्त्री में पिता से अधिक निदित पुत्र होते हैं यह बात आगे कहेंगे पिता अधिक निदित अपने जाति की स्त्री में भी उत्पन्न करते हैं इतना अप्राप्त रहा उसी का विधान इस श्लोक से किया गया जैसे शूद्र से वैश्य की स्त्री में उत्पन्न आयोगव कहाता है उसमें शूद्र आयोगवी वैश्या ब्राह्मणी क्षत्रिया शूद्रा इन्हीं में जो उत्पन्न होगा सो आयोगव कहाता है परंतु शूद्र आयोगव से ये सभ आयोगव दृष्ट हैं इस में दृष्टांत देते हैं कि जैसे स्त्री पुरुष में एक ने ब्रह्म हत्या किया उससे पुत्र उत्पन्न भया उस की अपेक्षा करके ब्रह्म हत्यारे स्त्री पुरुष दोनों हैं उन से जो उत्पन्न होगा सो अधिक दृष्ट होगा । २७ । जिस प्रकार से ब्राह्मण से क्षत्रिया वैश्या में द्विज उत्पन्न होता है और ब्राह्मणी में भी द्विज उत्पन्न होता है परंतु यह द्विज उन द्विजों से अच्छा कहाता है तिसी प्रकार से शूद्र से ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या में उत्पन्न पुत्र की अपेक्षा करके वैश्य से क्षत्रिय में क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र अच्छे कहाते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य से उत्पन्न प्रतिलोम प्रशस्त हैं यह जानने के लिये यह श्लोक है । २८ । आयोगव अदिक परस्पर जाति वाली स्त्री में अनुलोम करके भी अधिक दृष्ट पुत्र को उत्पन्न करते हैं जैसे आयोगव क्षत्रा को स्त्री में अपने से हीन पुत्र को उत्पन्न करता है और क्षत्रा भी आयोगव की स्त्री में अपने से हीन

लोमाऽनुलोमजाः । अन्योन्यव्यतिपक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः । २५ । स्मृतो वैदेहकश्चैव चाण्डालश्च नराधमः । मागधः क्षत्र-
जातिश्च तथाऽयोगव एव च । २६ । एते षट् सदृशान्वर्णान् जनयन्ति स्वयोनिषु । मातृजात्याम्युत्पद्यन्ते प्रवरासु च योनिषु ।
२७ । यथा चयाणां वर्णानां द्वयोरात्माऽस्य जायते । आनंतर्ग्यात्स्वयोण्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात् । २८ । ते चापि
बाह्यान्स्वहस्ततोऽप्यधिकद्रुपितान् । परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् । २९ । यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जंतुं
प्रसूयते । तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्यं प्रसूयते । ३० । प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्यावाह्यतरान् पुनः । हीनाहीना-
न्प्रसूयन्ते वर्णाऽन्यं च दशैव तु । ३१ । प्रसाधनोपचारश्चमदासन्दासजीवनम् । सैरिध्रम्वा गुरावृत्तिं स्मृते दस्युरयोगवे

पुत्र को उत्पन्न करता है इसी रीति से और भी प्रतिलोमों में जानना । २८ । जिस प्रकार से शूद्र ब्राह्मणी में चाण्डाल को उत्पन्न करता है तिसी प्रकार से चाण्डाल चारों वर्ण की स्त्री में अपने से भी हीन को उत्पन्न करता है । २९ । शूद्र से उत्पन्न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की भार्या में तीन प्रतिलोमज (अर्थात् आयोगव क्षत्रा चाण्डाल) ये चारों वर्ण की स्त्री में और अपनी जाति की स्त्री में अपने से हीन तीन पचे पंद्रह पुत्र को उत्पन्न करते हैं और अनुलोमज से हीन वैश्य क्षत्रिय से उत्पन्न मागध वैदेहक मृत ये तीनों चारों वर्ण की स्त्री में और अपनी जाति की स्त्री में अपने से निदित तीन पचे पंद्रह पुत्र को उत्पन्न करते हैं इस रीति से तीस पुत्र भयंकर चाण्डाल क्षत्रा आयोगव वैदेहक मागध मृत ये छः पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर अच्छे हैं यही कर्वा प्रतिलोम करके पुत्र को उत्पन्न करें तो पंद्रह पुत्र होते हैं जैसे चाण्डाल से पाँचों की स्त्री में पाँच उत्पन्न भए क्षत्रा से चारों वर्ण की स्त्री में चार उत्पन्न भए आयोगव से तीनों की स्त्री में तीन उत्पन्न भए वैदेहक से दो को सो म दो उत्पन्न भए मागध में एक की स्त्री में एक उत्पन्न भया मृत से आगे कोई है नहीं इस लिये मृत से प्रतिलोमज कोई उत्पन्न होता नहीं इस रीति से पंद्रह पुत्र रूप श्लोक में पुनः यह पद का उच्चारण भृगु जी ने किया उस का तात्पर्य यह है की मृत मागध वैदेहक आयोगव क्षत्रा चाण्डाल ये छः उत्तर उत्तर से पूर्व पूर्व अच्छे हैं य

द्वेयं प्रतिलोम की नई पुत्र उत्पन्न करे तो पंद्रह पुत्र होते हैं जैसे मृत से पांचों की स्त्री में पांच भण्णमागध से चारों की स्त्री में चार ऊए वैदेहक से तीनों की स्त्री में तीन ऊए आयोगव से दो की स्त्री में दो भण्णमागध से एक की स्त्री में एक ऊआ चाण्डाल से हीन नहीं हैं इस लिये उसी अनुलोम होता हीन इस रीति से पंद्रह ऊए दोनों मिलके तीस भण्ण । ३१ । केश रचना आदि प्रमाधन कर्म के उपचार को जानने वाला दास कर्म जो उच्छिष्टादि भक्षण है उससे रहित अङ्ग समाह्वन आदि दास कर्म से जीने वाला और पाश बंधन करके मृग आदि के बध से जीने वाला मैग्नि नाम पुत्र को आयोगव की स्त्री में दस्यु जिसका लक्षण आगे पैतालीसईं श्लोक में कहेंगे सो उत्पन्न करता है । ३२ । आयोगव की स्त्री में वैदेहक से मधुर भाषण करने वाला मैत्रेय नाम पुत्र होता है जो प्रातः काल में घण्ट बजाके जीविका के लिये राजा आदि की स्तुति करता है । ३३ । आयोगव की स्त्री में निषाद से नौका कर्म से जीने वाला दाश नाम पुत्र और मार्गव नाम पुत्र होता है जिस को आर्यावर्त के रहने वाले कैवर्त कहते हैं । ३४ । मैग्नि मैत्रेय मार्गव ये तीनों मुरदा के बख को पहिरने वाली कूरस्य भाव वाली उच्छिष्ट भोजन करने वाली जो आयोगव की स्त्री है उस में पिता के भेद से भिन्न भिन्न होते हैं । ३५ । वैदेहक की स्त्री में निषाद से चर्मच्छेद करने वाला कारावर नाम पुत्र उत्पन्न होता

। ३२ । मैत्रेयकं तु वैदेहे मागधं संप्रसूयते । नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घृणाताडोरुणोदये । ३३ । निषादो मार्गवं स्तुते दाशमौ-
कर्मजीविनम् । कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्तनिवासिनः । ३४ । मृतवस्त्रभृत्सुनारीपुं गर्हितान्नाशनासु च । भवंत्यायोगवी-
धेते जातिहीनाः पृथक् चयः । ३५ । कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते । वैदेहकादंघ्रमेदौ वहिर्यामप्रतिश्रयौ । ३६ ।
चाण्डालात्पाण्डसोपाकस्त्वक्षारव्यवहारवान् । आहिण्डको निषादेन वैदेह्यामेव जायते । ३७ । चाण्डालेन तु सोपाको
मूलव्यसनवृत्तिमान् । पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः । ३८ । निषादस्त्री तु चाण्डालात्पुत्रमंत्यावसायिनम् । श्म-
शानगोचरं स्तुते बाह्यानामपि गर्हितम् । ३९ । संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः । प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः
स्वकर्मभिः । ४० । सजातिजानन्तरजाः पट् सुता द्विजधर्मिणः । शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेपध्वंसजाः स्मृताः । ४१ । तपो-

है वैदेहक से कारावर की स्त्री में अंध जाति वाला पुत्र और निषाद की स्त्री में मंद जाति वाला पुत्र होता है ये दोनों घाम के बाहर रहने वाले होते हैं । ३६ । वैदेहक की स्त्री में चाण्डाल से बांस के व्यवहार से जीने वाला पांडुसोपाक जाति वाला पुत्र होता है और उसी स्त्री में निषाद से आहिण्डक जाति वाला पुत्र होता है । ३७ । पुक्क की स्त्री में चाण्डाल से राजा की आज्ञा से बध योग्य मनुष्यों को बध करने वाला और उसी कर्म से जीने वाला पापी सर्व काल में साधु लोगों से निंदा के प्राप्त सोपाक जाति वाला पुत्र होता है । ३८ । निषाद की स्त्री में चाण्डाल से श्मशान में रहने वाला सभ से अति निर्दित अंत्यावसायी जाति वाला पुत्र उत्पन्न होता है । ३९ । वर्णमंकर में माता पिता से इतनी जाति देखाया प्रकट हो अथवा अप्रकट हो परंतु अपने कर्मों से जानने योग्य होते हैं । ४० । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य में अपनी अपनी जाति की स्त्री में उत्पन्न पुत्र और अनुलोम करके उत्पन्न पुत्र ये तीनों द्विज कहाते हैं (अर्थात् ब्राह्मण से क्षत्रिया वैश्या शूद्रा में वैश्य से शूद्रा में ये पुत्र द्विज के धर्म वाले कहाते हैं) (अर्थात् उपनयन के योग्य होते हैं) और जो अपध्वंसज हैं (अर्थात् द्विजाति से प्रतिलोम करके उत्पन्न हैं) सो सभ शूद्र के धर्म वाले कहाते हैं । ४१ । तप और वीर्य इन्हों के प्रभाव करके सजाति से उत्पन्न और अनन्तर जाति से

उत्पन्न मनुष्य संसार संबंधी युग युग में जन्म से जुंच मोच होते हैं तप के प्रभाव से विश्वामित्र की नई बीज के प्रभाव से ऋष्यश्रुंग की नई । ४२ । आगे जो कहेंगे क्षत्रिय जाति में सब यज्ञोपवीत आदि क्रिया के लोप से यज्ञ कराना पहना प्रायश्चित्त आदि जो अर्थ उस के बिना देखे से धीरे धीरे लोक में शूद्र भाव के प्राप्त हुए । ४३ । पौंड्रक औड्रद्रविड काम्बोज यवन शक पारद पाल्लव चीन किरात दरद खण इन देशों में उत्पन्न क्षत्रिय क्रिया आदि के लोप में शूद्र भाव के प्राप्त हुए । ४४ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन को क्रिया लोप आदि से जितनी जाति भई स्नेह भाषा करके युक्त अथवा श्रेष्ठ भाषा करके युक्त ये सब जाति दस्यु कहाते हैं । ४५ । द्विजों से अनुलोम करके उत्पन्न छ अपसद दर्शों लोक में जो कह आए हैं और जो अपध्वंसज (अर्थात् प्रतिलोम से उत्पन्न) ये सब द्विजों के निन्दित कर्म से जीवें । ४६ । मृत अम्बष्ठ वेदेहक मागध दन्तों का क्रम से घाड़ा का मारथी पना वेदेई स्त्रियों का कार्य (अर्थात् अंतः पुर रक्षण)

बीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे । उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः । ४२ । शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः । वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च । ४३ । पौंड्रकाऔड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः । पारदाः पल्लवा शीनाः किराता दरदाः खणाः । ४४ । मुखवाहूरुपज्जानां या लोके जातयो वहिः । स्नेहवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः । ४५ । ये द्विजानामपसदाः ये चापध्वंसजाः स्मृताः । ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः । ४६ । सूतानामश्वमारथ्यामश्वघ्नानां चिकित्सनम् । वेदेहकानां स्त्रीकार्यभ्रागधानां वणिक्पथः । ४७ । मत्स्यघातो निपादानान्तष्टिस्त्वाधोगवस्य च । मेदांध्रचुश्रुमङ्गूनामारण्यपशुहिंसनम् । ४८ । शत्रुपपुक्कसानान्तु विसौको वधवन्धनम् । धिग्वणानां चर्मकार्यं वैणानां भाण्डवादनम् । ४९ । चैत्यद्रुमशमशानेषु शैलेषूपवनेषु च । वसेयुरेते विज्ञाता वर्तयन्तः स्वकर्मभिः । ५० । चाण्डालश्चपचानान्तु वहिर्गामात्यतिश्रयः । अपपाचाश्च कर्तव्या धनमेपां श्वगर्हभम् । ५१ । वामांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् । कार्पायसमलङ्कारः परिव्रज्या च नित्यशः । ५२ । न तैः समयमन्विच्छेत्युरूपे धर्ममाचरम् । व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह । ५३ ।

बनियों का कर्म जीविका है । ४७ । निषाद का मङ्गूली मारना आयोगव का काठ काटना मेद अंध चुश्रु मङ्गू इन्हीं का वन के पशु का मारना जीविका है वेदेहक की स्त्री में ब्राह्मण से उत्पन्न चुश्रु कहाता है और उसी में वंदी की स्त्री में उत्पन्न मङ्गू कहाता है । ४८ । जन्ता उग पुङ्गव इन्हीं का बिल में रहने वालो गोह आदि का वध और बंधन धिग्वण का चर्म कार्य वैण का कांस्य मृदंग आदि बाद्य भाण्ड वादन जीविका है । ४९ । काम आदि के समीप में चैत्यद्रुम (अर्थात् प्रसिद्ध वृक्ष) के मूल में और शमशान पर्वत वन इन्हीं के समीप में ये सब प्रकट अपने कर्मों से जीवन करते रहें । ५० । चाण्डाल अपच ये दोनों ग्राम के बाहर निवास करें पात्र में रहित रहें इन्हीं का धन कुत्ता गदहा है । ५१ । मृगदा के वन के पहिरण फूटे पात्र में भोजन करें लोटे का गहना पहिरण नित्य ही डोलते रहें । ५२ । धर्म का आचरण करत संत इन्हीं के साथ दर्शन आदि व्यवहार को न करें इन्हीं का विवाह आपुस में होता है और व्यवहार भी आपुस में

करे। ५३। इन्हीं का अन्न पराधीन है फूटे पात्र में अन्न देना रात्रि का घाम नगर आदि में फिरने न पावें। ५४। राजा की आज्ञा से चिन्ह युक्त कार्य के लिये दिन में डोले बांधव रहित मरदा को ले जावे ऐसी शास्त्र की मार्यादा है। ५५। राजा की आज्ञा से यथा शास्त्र बध के योग्य पुरुषों का बध करे बध के योग्य पुरुषों का बध शय्या आभरण लेवे। ५६। निकाम योनि से उत्पन्न वर्ण से रहित बेजान भले पुरुष का भेष बनाये हो और भला पुरुष न हो तो उस के कर्म से उस की जाति को जाने। ५७। अश्रद्धता निष्ठुरता क्रूरता क्रिया रहित्य इन्हीं से लोक में निकाम योनि से उत्पन्न पुरुष जाना जाता है। ५८। माता के स्वभाव अथवा पिता के स्वभाव किन्ना दोनों के स्वभाव को पुरुष ग्रहण करता है निकाम योनि वाला किसी प्रकार से अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। ५९। अच्छे कुल में उत्पन्न है और योनि मङ्गुर है परंतु छोड़ा अथवा बड़त पिता के स्वभाव को ग्रहण करता है। ६०। जिस राज्य में वर्णों के दूषण करने वाले वर्ण संकर उत्पन्न हैं वह राज्य जन सहित जलदी नाश को पाता है। ६१। ब्राह्मण गौ स्त्री बालक इन्हीं के लिये देखने में जो प्रयोजन आवै उसी रहित देह त्याग

अन्नमेपां पराधीनं देयं स्याद्विन्नभाजने। रात्रौ न विश्वरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च। ५४। दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशामनैः। अवान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः। ५५। वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया। वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याभरणानि च। ५६। वर्णापेतमविज्ञातन्नरङ्गलुपयोनिजम्। आर्यरूपमिवानार्यङ्कर्मभिः स्वैर्धिभावयेत्। ५७। अनाय्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता। पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुपयोनिजम्। ५८। पित्र्यं वा भजते शीलमातुर्वीभयमेव वा। न कथञ्चन दुर्य्यानिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति। ५९। कुले मुखेऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसङ्करः। संश्रयत्येव तच्छीलस्मरेऽल्पमपि वा बहु। ६०। यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः। राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति। ६१। ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः। स्त्रीवालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम्। ६२। अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकमर्थं चातुर्वर्ण्यं ब्रवीन्मनुः। ६३। शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते अश्रेयान् श्रेयसीं जातिङ्गच्छत्यासप्तमाद्युगात्। ६४। शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्या-

करे तो बाह्य (अर्थात् वर्ण से रहित) जो ये सभ हैं उन्हीं को सिद्धि (अर्थात् स्वर्ग) प्राप्ति होती है। ६१। अहिंसा सत्य अचोरो शौच इन्द्रियों का रोकना ये सभ धर्म मंत्तेप करके चारो वर्ण को मनु जी ने कहा। ६२। शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न कन्या हो सो पारशदी कहाती है उस का विवाह ब्राह्मण करे और कन्या उत्पन्न हो उस का विवाह ब्राह्मण करे और कन्या उत्पन्न हो इस रीति से कन्या उत्पन्न होती आवै और उस कन्या का विवाह ब्राह्मण करता आवै तो कठई कन्या बीज के प्रधानता से ब्राह्मण जाति को उत्पन्न करती है। ६३। शूद्र ब्राह्मण भाव को प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्र भाव को प्राप्त होता है इसी रीति से क्षत्रिय से और वैश्य से उत्पन्न को जानना जैसे शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न पारशव होता है वह शूद्रा का विवाह करे उस से पुत्र उत्पन्न हो वह भी शूद्रा का विवाह करे उस से भी पुत्र उत्पन्न हो इसी रीति से पुत्र उत्पन्न होता आवै और शूद्रा का विवाह करता आवै तो कठवां पुत्र योनि के निचाई से शूद्र जाति को उत्पन्न करता है इस रीति से शूद्रा में क्षत्रिय से उत्पन्न कन्या चौथे पुरुष में बीज के प्रधानता से क्षत्रिय को उत्पन्न करती है और पुत्र चौथे पुरुष में योनि की

निचारी से शूद्र को उत्पन्न करता है बैश्या से शूद्रा में उत्पन्न कन्या दूसरे पुरुष में बीज के प्रधानता में बैश्या को उत्पन्न करती है और पुत्र दूसरे पुरुष में योनि की निचारी से शूद्र को उत्पन्न करता है इसी रीति से ब्राह्मण से बैश्या में उत्पन्न पंचयें पुरुष में बड़ाई कोटाई को पाता है और ब्राह्मण में क्षत्रिय में उत्पन्न तीसरे पुरुष में बड़ाई कोटाई को पाता है क्षत्रिय से बैश्या में उत्पन्न तीसरे पुरुष में बड़ाई कोटाई को पाता है । ६५ । नीच जाति में (अर्थात् शूद्रा में) ब्राह्मण से उत्पन्न भया और ब्राह्मणी में नीच जाति में (अर्थात् शूद्रा में) उत्पन्न भया इन दोनों में बड़ा कौन है इस का उत्तर आगे के श्लोक में देंगे । ६६ । ऊंच बीज से नीच योनि में (अर्थात् ब्राह्मण से शूद्रा में) उत्पन्न पाक यज्ञ आदि गुण से युक्त होवे वह बड़ा है और नीच बीज से ऊंच योनि में (अर्थात् शूद्र से ब्राह्मण में) उत्पन्न बड़ा नहीं है यह निश्चय है । ६७ । दोनों संस्कार के योग्य नहीं हैं यह मिदुंत है क्योंकि पहिला नीच जाति में उत्पन्न है और दूसरा प्रतिलोम है । ६८ । जिस रीति में अच्छा बीज अच्छे खेत में पड़े तो अच्छा मंस्य उत्पन्न होता है इसी रीति में श्रेष्ठ में श्रेष्ठ की में उत्पन्न सर्व संस्कार के योग्य होता है । ६९ । कोई पंडित बीज का अच्छा कहते हैं कोई पंडित चंच को अच्छा कहते हैं कोई पंडित दोनों की प्रशंसा करते हैं तर्हा आगे जो व्यवस्था

दृश्यात्तथैव च । ६५ । अनार्यायां समुत्पन्ना ब्राह्मणान्तु यदृच्छया । ब्राह्मण्यामप्यनार्यान्तु श्रेयस्त्वं केति चेद्ववेत् । ६६ । जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्या भवेद्गुणैः । जातोप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः । ६७ । तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो-
व्यवस्थितः । वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः । ६८ । सुवीजं चैव सुश्रेष्ठे जातं संपद्यते यथा । तथार्याजात आर्यायां सर्व संस्कारमर्हति । ६९ । बीजमेके प्रशंसन्ति श्रेष्ठमन्ये मनीषिणः । बीजश्रेष्ठे तथैवान्ये तच्चेयन्तु व्यवस्थितिः । ७० । अश्रेष्ठे बीजमुत्सृष्टमंतरैव विनश्यति । अवीजकमपि श्रेष्ठं केवलं स्थण्डिलं भवेत् । ७१ । यस्माद्वीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयो भवन् । पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्वीजं प्रशस्यते । ७२ । अनार्यमार्यकर्माणमार्यश्चानार्यकर्मिणम । संप्रधार्याव्रवीडाता न समौ ना-
समाविति । ७३ । ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः । ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्मणि यथा क्रमम् । ७४ । अध्या-

कहेगे सो जानना । ७० । ऊपर में बीज पड़ा सो नष्ट हो जाता है प्ररोह के प्राप्त नहीं होता और अच्छा खेत है बीज में रहित है तो केवल स्थंडिल है उस में अन्न उत्पन्न नहीं होता इस लिये दोनों की मिदुता में अच्छा बीज अच्छे खेत में पड़े तो अच्छा अन्न उत्पन्न होवे यह पूर्व कहि आए हैं सोई संमत है कि दोनों को प्रधानता है । ७१ । जिस कारण से बीज के प्रभाव करके तिर्यग् योनि में (अर्थात् हरिणी) में उत्पन्न ऋष्यशृंग आदि ऋषि होते भये पूजित और प्रशस्त हुए इस लिये बीज प्रशस्त है (अर्थात् बीज और योनि के मध्य में बीज करके उत्कृष्ट जाति प्रधान है इस बात पर जानना) । ७२ । नीच है ऊंच का कर्म करता है और ऊंच है नीच कर्म करता है इन दोनों की विचार करके ब्रह्मा ने कहा कि न सम हैं और न असम हैं क्योंकि द्विजाति का कर्म करने वाला शूद्र द्विजाति सम नहीं होता (अर्थात् द्विजाति कर्म का अनधिकारी द्विजाति कर्म करने वाला भी हो तो द्विजाति सम नहीं होता इसी रीति से शूद्र का कर्म करने वाला द्विजाति शूद्र सम नहीं है निषिद्ध कर्म करने से जाति की बड़ाई नहीं गई है और असम भी नहीं है निषिद्ध कर्म करने से दोनों को समता है) इस लिये जिस को जो कर्म निहित है सो उस कर्म का न करे यह वर्णसंकर पर्यन्त को धर्मापदेश है । ७३ । जो ब्राह्मण ब्रह्म

धाम में युक्त हो अपने कर्म में रत हो सो क्रम से हः कर्म करके जीवन करे। ७४। पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना प्रतिग्रह करना ये हः कर्म ब्राह्मण को हैं। ७५। इन हः कर्मों में तीन कर्म (अर्थात् पढ़ाना यज्ञ कराना विशुद्ध पुरुष से प्रतिग्रह करना) जीविका के लिये है ब्राह्मण की जीविका के लिये जो तीन कर्म हैं सो क्षत्रिय को नहीं है। ७६। वैश्य को भी क्षत्रिय की भाँई जानना यह प्रजापति मनु ने कहा। ७८। शत्रु और अश्व (अर्थात् मंच पढ़के जो चलाया जाय) इन दोनों को धारण करना यह कर्म है सो क्षत्रिय को है और बनियाँ पना खेतो करना पशु पालना यह कर्म वैश्य को है और पढ़ना दान देना यज्ञ करना यह धर्म दोनों का है। ७९। अपने कर्मों में एक एक श्रेष्ठ कर्म तीनों को है ब्राह्मण को पढ़ना क्षत्रिय को रक्षा करना वैश्य बार्ता (अर्थात् बनियाँ पना पशु पालन)। ८०। अपने कर्म से ब्राह्मण जीने न सके तो क्षत्रिय के कर्म से जीवे कोंकि क्षत्रिय अनन्तर है (अर्थात् समीप है)। ८१। दोनों के कर्म से जीने न सके तो वैश्य के कर्म से जीवे। ८२। वैश्य के कर्म से जीने वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय पराधीन (अर्थात् बैल आदि से पराधीन)

पनमध्ययनं यजनं याजनन्तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव पट्कर्माण्यग्रजन्मनः। ७५। पणान्तु कर्मणामस्य चीणि कर्माणि जीविका। याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः। ७६। त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियम्पूति। अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः। ७७। वैश्यम्पूति तथैवैतानि निवर्तन्ति स्थितिः। न तौ प्रतिहितान्धर्मान्ननृराह प्रजापतिः। ७८। शस्त्रास्त्रमृत्वं क्षत्रस्य वणिक्शुक्रपिविशः। अजीवनार्थान्धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः। ७९। वेदाभ्यासे ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम्। वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु। ८०। अजीवंस्तु यथाक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा। जीवेत्क्षत्रियधर्मेण सक्षस्य प्रत्यनन्तरः। ८१। उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत्। कृपिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम्। ८२। वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोपि वा। हिंसा प्रायां पराधीनां कृपिं यत्नेन वर्जयेत्। ८३। कृपिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता। भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयो मुखम्। ८४। इदं तु वृत्तिवैकल्यात्तज्जतो धर्म्मनैपुणम्। विटपण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्द्धनम्। ८५। सर्वान रसानपोहेत कृतान्नञ्च तिलैस्सह। अश्मनो लवणञ्चैव पशवो ये च मानुषाः। ८६। सर्वञ्च तान्मघं रक्तं शाण्डौमाविकानि च। अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौपधीः। ८७। अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धाश्च सर्वशः।

और भूमि में स्थित बड़त जीवों का नाश जिस में हो ऐसी जो खेतो है उस को यज्ञ पूर्वक बर्जन करे। ८२। खेतो को कोई अच्छी मानते हैं सो ठीक नहीं कोंकि भूमि को और भूमि में स्थित जीव को लोहमुख वाला काष्ठ (अर्थात् हल) नाश करता है इस लिये उस जीविका की साधु लोगों ने निंदा की है। ८४। ब्राह्मण क्षत्रिय अपने जीविका से जीने न सके और वैश्य की जीविका से जीवें तो आगे जो बँचने को मना करेंगे उस को छोड़कर द्रव्य के बढ़ाने वाली वस्तु बँचै। ८५। सभ रस सिद्धार्थ (अर्थात् सरसव) तिल पत्थर लवण पशु मनुष्य इन सभ को न बँचै रस के निषेध से लवण का निषेध सिद्धै रहा फेर लवण का निषेध जो किया सो दोष की बड़ाई जानने के लिये सो भी प्रायश्चित्त बड़ाई के लिये है इसी रीति से अन्य का भी पृथक् निषेध को जानना। ८६। रक्त बस्त्र खन तोमो भँड़ि इन्हीं से जो बस्त्र है सोत अथवा रक्त फल मूल औषधी। ८७। जल लोह विष मांस मोमलता गंध दूध मधु दही घी तेल मधु

च्छिष्ट (अर्थात् मोम) गुड़ कुशा । ८८ । वन के पशु दाह वाले जीव (अर्थात् सिंह आदि) पक्षी मद्य नील लाख एक खुर वाला जीव इन सब को न बेचे । ८९ । खेतो करने वाला खेतो में तिल उत्पन्न करे और वह तिल शुद्ध हो ब्रह्म काल तक गृह में न रहा हो तो उस को धर्म के अर्थ बेचे । ९० । भोजन अथवा दान ये तीन कर्म होड़ के दमरा कर्म जो तिल से करे मो कीड़ा होके कुत्ता के बिछा में पितरों के साथ डूबे । ९१ । मांस लाख लवण इस के बेचने से तुरंत पतित होता है और दूध बेचने से तीन दिन में शूद्रभाव को प्राप्त होता है । ९२ । इच्छा पूर्वक दूसरे वस्तुओं के बेचने से ब्राह्मण सात रात में वैश्य भाव को प्राप्त होता है । ९३ । रस (अर्थात् गुड़ आदि) को रस (अर्थात् घी आदि) से बदला करना लवण को दूसरे रस से बदला न करना सिद्धान्त को आमान्न करके तिल को धान्य करके सम बदला करना । ९४ । आपत्काल में प्राप्त सन्निध पूर्व कथित जीविका से जीवै परन्तु बरों की जीविका से जीने का अभि-

क्षीरं शौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् । ८८ । आरण्यांश्च पशून्मर्वान्द्रंघ्रिणश्च वयांसि च । मद्यं नीलिञ्च लाक्षां च स-
र्याथैकशफास्तथा । ८९ । काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः । विक्रीणोत तिलान् शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् । ९० ।
भोजनाभ्यञ्जनादानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः । कृमिभूतः श्वविष्टायां पितृभिः सह मज्जति । ९१ । सद्यः पतति मांसेन लाक्षया
लवणेन च । अहेण शूद्री भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् । ९२ । इतरेषां तु पर्यानां कृत्यादिश्च कामतः । ब्राह्मणस्सप्त
रात्रेण वैश्यभावन्यिच्छति । ९३ । रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः । दूताश्चाकृतात्नेन तिला धान्येन तत्समाः ।
९४ । जीवेदेतेन राजन्यस्सर्वेणाप्यनयङ्गतः । न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् । ९५ । यां लोभादधमो जात्या
जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः । तं राजा निर्जनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् । ९६ । वरं स्वधर्मे विगुणे न पारक्यः स्वनृष्टतः । परधर्मेण
जीवन्ति सद्यः पतति जातितः । ९७ । वैश्यो जीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्याऽपि वर्तयेत् । अनाचरन् कार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान् ।
९८ । अशकुर्वन्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् । पुत्रदारात्ययं प्राप्नो जीवेत्कारुककर्मभिः । ९९ । यैः कर्मभिः प्रचरितैः
सुश्रूष्यन्ते द्विजातयः । तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च । १०० । वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथिस्थितः ।
अवृत्तिकर्पितः सोदन्निमं धर्मे समाचरेत् । १०१ । सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयङ्गतः । पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नापपद्यते

मान कभी न करे । ९५ । अधम जाति वाला लोभ से बड़ों के कर्म से जीवै तो राजा उस को निर्दुष्य करके जलदी अपने देश से निकाल देवे । ९६ । गुण से हीन भी अपना धर्म हो तो उस को करना पर का धर्म ब्रह्म हो तो उस को न करना पर का धर्म करके जाति से शीघ्र पतित होता है । ९७ । वैश्य अपने कर्म से जीने न सके तो शूद्र के कर्म से जीवै और जो दस्तु करने के योग्य नहीं है उस को न करे । ९८ । द्विजाति की सेवा को शूद्र न कर सके और उस को स्वो पुत्र सुधा से दुःखित होवै तो रस ई कर ने वालों के कर्म से जीवै । ९९ । जिन कर्मों से द्विजाति को सेवा दीये वह जो कारुक (अर्थात् वढ़ई) का कर्म और शिल्प (अर्थात् चित्र लिखन आदि) कर्म माना प्रकार के हैं उन को करे । १०० । वैश्य कर्म को न करे और जीविका से कष्ट को पावै अपने मार्ग में स्थित होवै ऐसा जो ब्राह्मण मो आगे जो धर्म करेगे उस को करे । १०१ । आपत्काल में प्राप्त ब्राह्मण चारों ओर से प्रतिगृह्य करे जिस कारण से पवित्र अर्थात्

गंगा आदि नदी) दोषी होती है यह बात धर्म से उत्पन्न नहीं होता । १०२ । पढ़ाना यज्ञ कराना निन्दित से धन लेना इन्हीं से ब्राह्मण को दीय नहीं होता क्योंकि अग्नि और जल इन्हीं के समान ब्राह्मण है । १०३ । आपत्काल में इधर उधर से जो ब्राह्मण भोजन करता है सो पाप से लिप्त नहीं होता जैसे आकाश कांदव में भी है परंतु उस से लिप्त नहीं होता । १०४ । अजीगर्त ऋषि जुधा से पीड़ित होकर अपना बेटा शुनःशेफ को बेचा यज्ञ में गौ गोलिया दत्त खंभ में बांधिके मारने में प्रवृत्त हुए जुधा व्रांति के लिये परंतु पाप करके लिप्त न हुए यह बात चम्बेद के ब्राह्मण में शुनःशेफ के कथा में स्पष्ट है । १०५ । धर्म और अधर्म का जानने वाला जुधा से पीड़ित बामदेव ऋषि प्राण रक्षा के लिये कुत्ते की मांस को भोजन करने की इच्छा करत संते पाप से लिप्त न हुए । १०६ । जुधा से पीड़ित महातपस्वी पुत्र सहित भरद्वाज ऋषि जन रहित वन में वृधु नाम बटई से बद्ध गौ का दान लिया । १०७ । धर्म और अधर्म का जानने वाला जुधा से पीड़ित विश्वामित्र ऋषि चाण्डाल के हाथ से कुत्ते की जंघा की मांस को लेकर भोजन करने के लिये निश्चय किया । १०८ । आपत्काल

। १०२ । नाध्यापनायाजनादा गर्हितादा प्रतिग्रहात् । दोषो भवति विप्राणां ज्वलनां वुसमाहिते । १०३ । जीदितात्ययमापन्नो योऽन्नमन्ति यतस्ततः । आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते । १०४ । अजीगर्तः सुतं हंतुमुपासर्पद्बुभुक्षितः । न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् । १०५ । श्वमांसमिच्छन्वर्तेऽतुन्यमर्धमविचक्षणः । प्राणानां परिरक्षार्थम्वामदेवो न लिप्तवान् । १०६ । भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु स पुत्रो विजने वने । बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह दृधोस्तृष्णो महातपाः । १०७ । क्षुधार्तयाऽत्तुमभ्यागादिश्वामित्रः श्वजाघनीम् । चाण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः । १०८ । प्रतिग्रहायाजनादा तथैवाध्यापनादपि । प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्यविप्रस्य गर्हितः । १०९ । याजनाध्यापने नित्यं क्रियते संस्कृतात्मनाम् । प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्यजन्मनः । ११० । अपहेमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च । १११ । शिलोच्छ्रमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः । प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युच्छ्रः प्रशस्यते । ११२ । सीदद्भिः दुष्यमिच्छद्भिर्जनैः पृथिवीपतिः । याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्थागमर्हति । ११३ । अकृतञ्च कृतात्स्नेचाङ्गैरजादिवमेव च । हिरण्यन्यन्यमन्नञ्च

के अभाव में ब्राह्मण को यज्ञ कराना पढ़ाना इन दोनों से प्रतिग्रह करना परलोक में निन्दित है । १०८ । पूर्व कथित बात में कारण कहते हैं आपत्काल में अथवा अनापत्काल में संस्कार सहित जो ब्राह्मण उचित वैश्य उन्हीं को पढ़ाना यज्ञ कराना होता है और प्रतिग्रह करना तो निन्दित जाति शूद्र से भी होता है इस लिये उन दोनों से यह निन्दित है । ११० । यज्ञ कराने से और पढ़ाने के जो पाप होता है सो अप और होम से जाता है प्रतिग्रह करने से जो पाप होता है सो तप से और प्रतिग्रह की वस्तु के त्याग से जाता है । १११ । अपनी जीविका से जीने न सकी ब्राह्मण तो उपपात थी आदि से शिल और उच्छ्र को लें वै प्रतिग्रह से शिल बड़ा उस से भी उच्छ्र बड़ा । ११२ । धर्म और कुटुम्ब इन्हीं के अर्थ कष्ट को पाये हुए निर्दुन ब्राह्मण सोना रूपा छोड़कर धान्य और वस्त्र को और यज्ञ के अर्थ सोना रूपा को भी शास्त्रोक्त कर्म से रहित उचित से भी मांगें और जो कृपणता से धन देने की इच्छा न करें उस को त्याग दें । ११३ ।

सख्य रहित खेत से बिना सख्य वाला खेत का प्रतिग्रह करना दोष रहित है और गौ बकरा भेड़ा सोना अन्न सिद्धास्त्र इन्हीं में पूर्ष पूर्ष उत्तर उत्तर से दोष रहित है इस लिये पूर्ष पूर्ष के अभाव में पर पर को ग्रहण करना । ११४ । विभाग से प्राप्त भूमि में गड़ा ऊआ मिला और मोल लिया जोत से मिला व्यवहार करने से मिला काम करके मिला भले लोगों से प्रतिग्रह करके मिला इन सात प्रकार से द्रव्य का आगम धर्म से युक्त है । ११५ । विद्या (अर्थात् वेद विद्या छोड़कर वैदिक न्याय विषय का प्रारम्भ) शिल्प (अर्थात् लिखना आदि) भृति (अर्थात् मजूरी) सेवा गौ का रक्षा बनियाँ का कर्म खेती करना मत्तौष भैक्ष्य (अर्थात् भिक्षा समूह) ब्याज लेना ये दश जीने का कारण है (अर्थात् अनापत्काल में जो जीविका जिस को निषिद्ध है उस जीविका को आपत्काल में वह पुरुष करे) । ११६ । ब्राह्मण और क्षत्रिय ब्याज न लें अथवा निरुद्ध कर्म करने वाले को धर्म को अर्थ छोड़ा ब्याज लेकर धन ग्रहण देवे । ११७ । शक्ति पूर्वक प्रजा की रक्षा करत मते आपत्काल में प्रजा से चौथा भाग लेत मते क्षत्रिय पाप से कूटता है । ११८ । शस्त्र से जय प्राप्ति और संघाम में न भागना ये दोनों राजा का धर्म है शस्त्रों से वैश्यों की रक्षा करके धर्म से युक्त बलि (अर्थात् अपने भाग) को लेंवे । ११९ । धान्य में वैश्यों से घोर रुपैया बढ़ने में अष्टम भाग

पूर्वपूर्वमदोपवत । ११४ । सप्त वित्तागमाधर्म्यादायो लाभः क्रयो जयः । प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च । ११५ । विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः क्षपिः । धृतिर्भैक्ष्यं कुमीदृश्व दशजीवनहेतवः । ११६ । ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिर्नैव प्रयोजयेत् । कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् । ११७ । चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि । प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते । ११८ । स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः । शस्त्रेण वैश्यान् रक्षित्वा धर्ममाहारयेद्दलितम् । ११९ । धान्येष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्पापणावरम् । कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा । १२० । शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन् क्षत्रमाराधयेद्यदि । धनिनं वाप्यपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् । १२१ । स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तसः । जात ब्राह्मणशब्दस्य साहस्य कृतकृत्यता । १२२ । विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते । यदतोऽन्यद्भि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् । १२३ । प्रकल्प्या तस्य तैर्दृतिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः । शक्तिश्चावेक्ष्य दाश्यश्च भृत्यानाञ्च परिग्रहम् । १२४ ।

लेंवे आपत्काल में और अत्यंत आपत्काल में तो चौथा भाग कह आये है आपत्काल न होवे तो बारहवां भाग लेंवे हिरण्य (अर्थात् माहर आदि) का और पशु इन्हीं का पचासवां भाग लेंवे और आपत्काल होवे तो बीसवां भाग लेंवे शूद्र और कारु (अर्थात् रमोई बनाने वाले) शिल्पी (अर्थात् बढ़ई आदि) इन्हीं से आपत्काल में भी कर न लेंवे किंतु कर्म ही करावे (अर्थात् ये सब कर्म ही करके राजा का उपकार करें) । १२० । ब्राह्मण को सेवा में शूद्र जीने न सके और जीविका की दृष्टि करे तो क्षत्रिय का आराधन करके जीवे अथवा धनी वैश्य का आराधन करके जीवे । १२१ । स्वर्ग के लिये अथवा जीविका और स्वर्ग दोनों के लिये ब्राह्मणों की आराधन शूद्र करे ब्राह्मण को सेवा करने वाला यह शूद्र है ऐसा संसार में विदित होना उस की कृतकृत्यता (अर्थात् करने योग्य सब वस्तु का करि चुकना) है । १२२ । ब्राह्मण को सेवा ही शूद्र का बड़ा कर्म है इस को छोड़कर और जो करना है सो निष्फल है । १२३ । शूद्र को सेवा में सामर्थ्य कर्म में उत्साह पुत्र स्त्री आदि का पोषण परिमाण इन सब को देखकर अपने गृह में उस के योग्य जीविका का ब्राह्मण करे । १२४ ।

जूठा अन्न पुराना कपड़ा सार रक्षित धान्य पुरानी ब्रह्मा पुरानी गृह की सामग्री इन सब को जो आश्रित ब्रूह है उस को देना । १९५ । लक्ष्मण आदि के भक्षण से पातक ब्रूह को नहीं होता यज्ञोपवीत आदि संस्कार भी ब्रूह को नहीं है अग्निहोत्र आदि धर्म में भी ब्रूह को अधिकार नहीं है पाक वस्त्र आदि धर्म का निषेध भी नहीं है ये सब बात तो कह आए हैं यह लोक आगे के लिये अनुवाद (अर्थात् सिद्ध वस्तु का कथन) है । १९६ । अपने धर्म को जानने वाला धर्म की इच्छा करने वाला दिनों का निषिद्ध आचार को आश्रय करने वाला जो ब्रूह से नमस्कार मंच करके पंच यज्ञ को करे होवे न इस से लोक में प्रसिद्धता को पाता है । १९७ । पर के गुण की निंदा को न करने वाला ब्रूह जैसे जैसे भले लोगों के आचरण को करता है तैसे तैसे इस लोक में बड़ा कहा जाता है और परलोक में स्वर्ग को पाता है । १९८ । समर्थ भी ब्रूह है परंतु धन का संघय न करे क्योंकि ब्रूह धन को पाके ब्राह्मण ही को बाधा करता है । १९९ । चारो वर्णों के आपत्काल के धर्म को कहा जिस धर्म को करत मते परमगति को पाते हैं । २०० । चारो वर्णों का संपूर्ण धर्म विधि यह कहा इस के अनंतर शुभ प्रायश्चित्त विधि को कहेंगे । २०१ । इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लुक भट्ट व्याख्यानुसारिणां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत

उच्छिष्टमन्त्रान्दातव्यं जीर्णानि वसनानि च । पुलाकांश्चैव धान्यानां जीर्णांश्चैव परिच्छेदाः । १२५ । न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति । नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् । १२६ । धर्मेऽप्यस्तु धर्मज्ञाः सतां हृतमनुष्ठिताः । मंचवर्जं च दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च । १२७ । यथा यथा हि सहस्रमातिष्ठत्यनसूयकः । तथा तथेमश्चामुच्च लोकं प्राप्नोत्यभिंदितः । १२८ । शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंघयः । शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते । १२९ । एते चतुर्णाम्वर्णानामापहर्माः प्रकीर्तिताः । यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् । १३० । एष धर्मविधिः कृतस्त्रयास्तुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः । अतः परम्प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् । १३१ ॥ * ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः ॥ * ॥ १० ॥ सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम । गुर्वर्थं पितृमाचर्य स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः । १ । न बैतान्स्नातकान्विद्या ब्राह्मणान्धर्मभिष्कुक्कान् । निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्या विशेषतः । २ । एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ।

पाठशालीय गुलजार शर्म पण्डित कृतायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ विवाह की इच्छा करने वाला ज्योतिष्ठोम आदि याग की इच्छा करने वाला पैड़हक सर्व धन दक्षिणा वालो विश्वजित् याग करने वाला विद्या गुरु माता पिता इन तीनों के भोजनाच्छादन देने वाला वेद पठन समय में भोजनाच्छादन की इच्छा करने वाला रोगी । १ । ये नव ब्राह्मण स्नातक कहाते हैं (अर्थात् ब्रह्मचारी कहाते हैं) और धर्म भिन्ना स्वभाव वाले हैं ये सब धन रक्षित हों तो इन्हीं की विद्या के योग्य हिरण्य आदि देना (अब इस स्थान में ऐसी आशंका होती है कि दशम अध्याय के अंत में यह कहा कि इस के अनंतर प्रायश्चित्त विधि को कहेंगे ऐसी प्रतिज्ञा किया और स्नातक ब्रह्मचारी का वर्णन प्रारंभ किया सो प्रतिज्ञा से विरुद्ध है तिस का समाधान करते हैं कि करने योग्य जो कार्य नहीं है उस से करने वाले दान करके शुद्ध होते हैं यह कह आए और सर्प आदि के बध को शुद्धि दान से न कर सकें तो दूसरा प्रायश्चित्त करें ऐसा आगे कहेंगे इस लिये दान पात्र का वर्णन बड़ा प्रायश्चित्त है तो उस का प्रारंभ युक्त है और इस अध्याय का प्रयोजन भी यही है कि वर्ण और आश्रम इन दोनों का धर्म

आदि के भिन्न प्रायश्चित्त आदि धर्म का कथन करना और भी नैमित्तिक धर्म का कथन करना इस अध्याय में युक्त है) । १। ये नव ब्राह्मण गृह हैं इन को वेदी के भीतर दक्षिण सहित अन्न देना और इन से जो भिन्न हैं उन को वेदी के बाहर मिद्धान्न देना कहते हैं । २। वेद पढ़ने वाले ब्राह्मण को विद्या योग्य सर्व राजा देव और यज्ञ के लिये दक्षिणा देवें । ३। प्रथमा स्त्री के रहत संत भिन्ना से धन बटोर के उस धन से दूसरा विवाह करे तो रति माच फल उस को है जिस ने धन दिया उसी की संतति है । ४। स्त्री पुत्र के सेवन में लगा हो और वेद को पढ़े हो ऐसे ब्राह्मण को राजा यथा शक्ति धन देवें । ५। मृत्यु स्त्री पुत्र आदि आश्रित जन सहित जिस पुरुष को तीन वर्ष तक भोजन के लिये अन्न है सो सोम याग करने के योग्य है । ६। इस से थोड़ा धन वाला सोम याग करे तो उस का फल नहीं पाता । ७। परजन के अन्न आदि देने को समर्थ है और अपने जन को नहीं देता अपने जन दुःख से जीते हैं सो पुरुष धर्म का प्रति रूपक है (अर्थात् धर्म करने वाला नहीं है किंतु प्रथम यज्ञ मिलता है पीछे से नरक होता है) । ८। मृत्यु पुत्र स्त्री माता पिता आदि को पीड़ा

इतरेभ्यो वहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते । ३। सर्वरत्नानि राजा तु यथाहंस्पृतिपादयेत् । ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थञ्चैव दक्षिणाम् । ४। कृतदारो परान्दारान् भिक्षित्वा योधिगच्छति । रतिमाचं फलन्तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः । ५। धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् । वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते । ६। यस्य चैवार्पिकं भक्तमपर्याप्तमृत्युवृत्तये । अधिकं वापि विद्येत स सोमस्यातुमर्हति । ७। अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः । स पीतसोमपूर्वार्पि न तस्याप्नोति तत्फलम् । ८। शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि । मध्वापातो विपास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः । ९। मृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् । तद्भवत्यसुखोदकञ्जीवितस्य मृतस्य च । १०। यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः । ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि । ११। यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनकृतुरसोमपः । कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये । १२। आहरेत्स्त्रीणि वा हे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः । न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः । १३। यो नाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः । तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेद्विचारयन् । १४। आदाननित्यान्नादातुराहरेदप्रयच्छतः । तथा यशोस्य प्रयते

देकर परलोक के लिये दान आदि जो करता है सो दान उस पुरुष के जीते तक है और मरे पीछे दुःख देने वाला है । १०। धार्मिक राजा के रहत संत जिस ब्राह्मण को अथवा क्षत्रिय की यज्ञ द्रव्य बिना एक अंग से होन हो । ११। तो पाक यज्ञ आदि से रहित और सोम से रहित बद्धत पशु वाला वैश्य के गृह से उस अंग के योग्य द्रव्य को बल से अथवा चोरी से यज्ञ करने वाला लवे । १२। यज्ञ का दो अथवा तीन अंग द्रव्य बिना मिद्ध नहीं होता और वैश्य से भी धन नहीं मिलता तो शूद्र के गृह से बल करके अथवा चोरी से धन ग्रहण करे क्योंकि शूद्र को यज्ञ संबंध कोई है नहीं और जो आगे लिखे कि यज्ञ के अर्थ शूद्र से भिन्ना न लेना तिस पर कहते हैं कि बल से अथवा चोरी से धन ग्रहण करना मना नहीं है । १३। जो अग्नि होओ नहीं है और सो गौ वाला है अथवा यज्ञ से रहित है सहस्र गौ वाला है इन दोनों के गृह से यज्ञ के अंग को मिद्ध होने के लिये धन ग्रहण करे इस में कुछ विचार न करे । १४। जो

ब्राह्मण नित्य ही प्रतिग्रह करता है और बाउली कुंआं तड़ाग इन को नहीं खनाता है और यज्ञ नहीं करता दान से रहित है उससे यज्ञांग सिद्धि के लिये धन मांगा और वह नहीं देता तो बल से अथवा चोरी से उस के गृह से धन को लेवे इस्ते लेने वाले की प्रसिद्धि होती है और धर्म बढ़ता है । १५ । एक दिन में दो बार भोजन करना ऐसी शास्त्र की आज्ञा है इस में छः बेर जिस ने भोजन न किया तो तीन दिन उपवास भया चौथे दिन पहिली बेर एक दिन के भोजन भर अन्न तीन कर्म वाले से चोरी करके लेना । १६ । खरिदान से खेत से गृह से अथवा जहाँ से मिले तहाँ से अन्न को चोरावे और जब अन्न स्वामी पृच्छे कि कहीं से अन्न चोराया तुम ने तो कहि देवै । १७ । ब्राह्मण के धन को चषिय कभी न ग्रहण करै और अत्यंत आपत्काल प्राप्त हो तो निषिद्ध कर्म करने वाला और विहित कर्म का त्याग करने वाला जो ब्राह्मण और चषिय है उस के गृह से चोरी करै । १८ । जो मनुष्य असामर्थ लोगों से द्रव्य लेके साधु लोगों को देता है सो अपने को नोका बनाके उन दोनों को तारता है । १९ । यज्ञ करने वालों का जो धन है सो देवता का धन कहाता है ऐसा पंडितों ने कहा और जो यज्ञ करने वाले नहीं

धर्मश्चैव प्रवर्द्धते । १५ । तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्रता । अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः । १६ । खलात्क्षेचाद-
गाराहा यतो वाप्युपलभ्यते । आस्थातव्यन्तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति । १७ । ब्राह्मणस्वन्नहर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन ।
दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवनं हर्तुमर्हति । १८ । योसाधुभ्योर्धमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति । स कृत्वा श्रवमात्मानं संतारयति
तावुभौ । १९ । यज्ञं यज्ञशीलानां देवस्व तद्विदुर्वुधाः । अयज्वनान्तु यद्विदमासुरस्वन्तदुच्यते । २० । न तस्मिन्धारयेदण्डं
धार्मिकः पृथिवीपतिः । क्षत्रियस्य हि वालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा । २१ । तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्हीपतिः । शु-
तशीले च विज्ञाय धर्म्यां वृत्तिम्प्रकल्पयेत् । २२ । कल्पयित्वास्य वृत्तिश्च रक्षेदेनं समन्ततः । राजा हि धर्मषट्पादं तस्मात्प्राप्नोति
रक्षितात् । २३ । न यज्ञार्थं धनं शूद्रादिप्रोभिक्षेत कर्हिचित् । यजमानो हि भिक्षित्वा चाण्डालः प्रेत्य जायते । २४ । यज्ञा-
र्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वम्प्रयच्छति । स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः । २५ । देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेना-
पहिनस्ति यः । स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति । २६ । इष्टिं वैश्वानरीन्नित्यन्निर्वपेदब्दपर्यये । कृत्तानाम्पशुसोमानां

है उनका जो धन है सो राजसों का धन कहाता है । २० । ऐसे कर्म में धार्मिक राजा दंड न देवै क्योंकि राजा के लड़क पन से ब्राह्मण दुधा से पीड़ित होता है । २१ । ब्राह्मण का भृत्य जन कुटुंब (अर्थात् पोष्यवर्ग) पठनशील (अर्थात् स्वभाव) इन सब को जानि के धर्म करके युक्त जीविका को राजा करै । २२ । ब्राह्मण की जीविका कर के और उस की रक्षा चाहे और से करै उस रक्षा से ब्राह्मण जो धर्म करेगा उस का कृपा भाग राजा पाता है । २३ । ब्राह्मण यज्ञ के लिये शूद्र से धन को कभी न मांगे कदाचित् मांग के उस धन से यज्ञ करै तो दूसरे जन्म में चाण्डाल होता है । २४ । यज्ञ के लिये भिक्षा मांग के धन बटोर के और संपूर्ण धन को यज्ञ में न लगावे सो सो जन्म तक भास पक्षी और कौआ होता है । २५ । जो मनुष्य लोभ से देवता के द्रव्य को और ब्राह्मण की द्रव्य को नाश करता है सो पापी परलोक में गिद्ध पक्षी के जूठे में जीता है । २६ । पशु यज्ञ और सोम यज्ञ वर्ष भर में एक बेर करना कदाचित् यह न हो सके तो

इस के प्रायश्चित्त के लिये वर्ष की समाप्ति में अग्नि देवता की यज्ञ करै । २० । आपत्काल नहीं है और आपत्काल के धर्म को जो ब्राह्मण करता है सो परलोक में उस के फल को नहीं पाता । २८ । मरण से डरे हुए विषे देवा साध्यगण ब्राह्मण बड़े ऋषि लोग इन सभी ने आपत्काल में मुख्य विधि का गौण विधि किया । २९ । मुख्य विधि करने में समर्थ होके और गौण विधि को करता है उस को परलोक में उस गौण विधि का फल नहीं होता । ३० । धर्म को जानने वाला ब्राह्मण राजा से कुछ न कहै किंतु अपने पराक्रम से अपकारो लोगों का शासन करै । ३१ । राजा को पराक्रम से अपना पराक्रम बड़ा है इस लिये ब्राह्मण अपने पराक्रम से शत्रुओं का नियंत्रण करै । ३२ । अथर्व ऋषिरा ऋषि ने कहा जो मारण प्रयोग उस को करै इस में विचार कुछ न करै ब्राह्मण को बाणी ही शस्त्र है उसी शत्रुओं को मारै । ३३ । क्षत्रिय अपने बाहु बोर्य से बैश्व और शूद्र ये दोनों धन से जप होम से ब्राह्मण आपत्काल को बितावै । ३४ । विहित कर्म को

निष्कृत्यर्थमसंभवे । २७ । आपत्कालेन यो धर्मं कुरुते नापदि द्विजः । स नाप्नोति फलन्तस्य परचेति विचारितम् । २८ । विश्वे देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः । आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः । २९ । प्रभुः प्रथमकल्पस्य यो नुकल्पेन वर्तते । न साम्प्रतयिकन्तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् । ३० । न ब्राह्मणो वेदयेत् किञ्चिद्राजनि धर्मवित् । स्ववीर्य्यैव तान् शिष्यान्मानवानपकारिणः । ३१ । स्ववीर्य्याद्राजवीर्य्याच्च स्ववीर्य्यम्बलवत्तरम् । तस्मात्वेनैव वीर्य्येण निगृह्णीयादरीन् द्विजः । ३२ । श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः प्रकुर्यादविचारयन् । वाक् शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः । ३३ । क्षत्रियो वाहुवीर्य्येण तरेदापदमात्मनः । धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः । ३४ । विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते । तस्मै नाकुशलं ब्रूयान् शुष्काङ्गिरमीरयेत् । ३५ । न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न वालिशः । होता स्यादग्निहोत्रस्य नातो नासंस्कृतस्तथा । ३६ । नरके हि पतंत्येते जुह्वतः स च यस्य तत् । तस्मादैतानकुशलो होता स्यादेदपारगः । ३७ । प्राजापत्यमदत्त्वाश्चमग्न्याधेयसदक्षिणाम । अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति । ३८ । पुण्यान्यन्त्रानि कुर्वीत अदधानो जितेन्द्रियः । न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कथञ्चन । ३९ । इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिमृजाः पशून् । हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्ना-

करने वाला पुत्र शिष्य आदि को सिखाने वाला प्रायश्चित्त आदि को कहने वाला मभ जीवां से मित्रता रखने वाला ऐसे ब्राह्मण को अनिष्ट (अर्थात् नियंत्रण करो) ऐसा न बोलना और कठोर वाणी न बोलना । ३५ । कन्या युवती थोड़ा विद्यावान् मूर्ख व्याधि से पीड़ित यज्ञोपवीत में रहित ये मभ मायं प्रातः काल अग्नि होत्र को न करै । ३६ । कदाचित् इन मभ को करै तो नरक में जाते हैं और जिस को अग्नि है (अर्थात् अग्नि है व का स्वामी) सो भी नरक जाता है इस लिये जो वेद को पार गया हो और अग्निहोत्र कर्म को जानने वाला हो सोई यज्ञमान का होम करै । ३७ । विभवे रहत मते अग्निहोत्र का जो दक्षिण ब्रह्मा के निमित्त घोड़ा है उस को न देवै तो अग्निहोत्र का फल उस ब्राह्मण को नहीं होता । ३८ । इन्द्रियों को जीतकर शूद्रा सहित गुरुव दमरी पुण्य को करै परंतु थोड़ी दक्षिणा से यज्ञ को न करै । ३९ । इन्द्रिय यश स्वर्ग आयुः कीर्ति प्रजा पशु इन मभ को थोड़ी दक्षिणा वाली यज्ञ नाश करती हैं इस

लिये छोड़ा धन वाला ब्रह्म को न करे । ४० । अग्नि होनी ब्राह्मण दृष्ट्या से सायं प्रातः होम न करे तो पुत्र मारने का दोष होता है उस पाप की छोड़ाने के लिये एक मास चन्द्रायण व्रत करे । ४१ । जो ब्राह्मण शूद्र से धन लेके अग्निहोत्र करता है वह शूद्र ही का शत्रु होता है उस की कुछ फल नहीं होता और वेद पढ़ने वाले ब्राह्मणों में निन्दित कहाता है । ४२ । ऐसे ऋत्विजों के माथे पर पाँच धर के वह शूद्र द्रव्य देने से मरक को तरता है और ऋत्विजों को कुछ फल नहीं होता । ४३ । विहित कर्म को न करने से और निन्दित कर्म को करने से इन्द्रियों के अर्थ में प्रसक्त होने से मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है । ४४ । बिना दृष्ट्या से पाप करने में प्रायश्चित्त पंडितों ने कहा और दृष्ट्या से पाप करने में भी वेद की आज्ञा से प्रायश्चित्त है । ४५ । बिना दृष्ट्या से किया हुआ पाप वेदाभ्यास से छूटता है और मोह करके किये जो पाप सो नाना प्रकार के प्रायश्चित्त करने से छूटता है । ४६ । भाग्य से पूर्व जन्म में किये हुए कर्म से प्रायश्चित्त

ल्पधनो यजेत् । ४० । अग्निहोत्रपविध्याग्नीन् ब्राह्मणः कामकारतः । चांद्रायणं चरेन्मासं वीरहत्या समं हि तत् । ४१ । ये शूद्रादिभिर्गम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते । ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः । ४२ । तेषां सततमन्नानां वृषणाग्न्युप-
सेविनाम् । पदामस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि सन्तरेत् । ४३ । अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितश्च स माचरन् । प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु
प्रायश्चित्तीयते नरः । ४४ । अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्विधाः । कामकारकतेष्वप्यहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् । ४५ । अ-
कामतः कृतम्पापम्वेदाभ्यासेन शुध्यति । कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः । ४६ । प्रायश्चित्तीयताम्प्राप्य दैवात्पूर्व-
कृतेन वा । न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्ते कृते द्विजः । ४७ । इह दुश्चरितैः केचित्कोचित्पूर्वकृतैस्तथा । प्राप्नुवंति दुरात्मानो
मरा रूपविपर्ययम् । ४८ । सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् । ब्रह्महा स्रयरोगित्वन्दौर्ध्र्यं गुरुतल्पगः । ४९ ।
पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवत्क्रताम् । धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरैक्यं तु मिश्रकः । ५० । अन्नहर्ता मयादित्वं मौक्यं
वागपहारकः । वस्त्रापहारकः श्वैच्यम्पङ्गुतामश्वहारकः । ५१ । एवङ्कर्म विशेषेण जायन्ते सद्भिर्गर्हिताः । जडमूकान्यवधिरा
विकृताकृतयस्तथा । ५२ । चरितव्यमतो नित्यम्प्रायश्चित्तम्विशुद्धये । निन्द्यैर्हि लक्ष्यैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैर्नरैः । ५३ । व-

के योग्य होके और बिना प्रायश्चित्त किए सज्जनों के साथ भोजन वाम स्पर्श आदि से संसर्ग को न करे । ४७ । कोई मनुष्य इस लोक में दुष्ट कर्म से और कोई मनुष्य पूर्व जन्म के दुष्ट कर्म से निकाम रूप को पाता है । ४८ । मोना चोराने वाला सुरा पीने वाला ब्राह्मण को मारने वाला गुरुखो गमन करने वाला क्रम से निकाम नख जन्म में काला दांत चयो रोग निकाम चाम को पाता है । ४९ । चुगुल इशारा से कर्म को जानने वाला धान्य चोराने वाला मिलावट करने वाला क्रम से दुर्गंधि नाक दुर्गंधि मुख अंग हीनता अंग वाङ्मन्य (अर्थात् कः अंगुरी आदि) को पाता है । ५० । अन्न चोराने वाला जानके चुप रहने वाला बख चोराने वाला घोड़ा चोराने वाला क्रम से आमरोग गूंगपता श्वेत कुष्ठ पंगुलता को पाता है । ५१ । इस रीति से निकाम कर्म करके भले लोगों से निन्दित मनुष्य होते हैं और जड़ मूक अंध बधिर आदि निकाम रूप को पाते हैं । ५२ । इस लिये शुद्धि के अर्थ प्रायश्चित्त नित्य करें जो प्रायश्चित्त नहीं किए हैं सो निंदा युक्त लक्षण सहित होते हैं ।

५३ । ब्रह्म हत्या सुरापान ब्राह्मण का दण्ड मामा सोना अथवा इस्में अधिक चोराना माता से संभोग ये चार महा पातक हैं इन्हीं के साथ संसर्ग करना से पांचवी महा पातक है । ५४ । नीच जाति हाके हम बड़ी जाति हैं ऐसा झूठ बोलना राजा के समोप जिसमें उस का मरण हो ऐसा किसी का दोष कहना गुरु से झूठ बोलना ये सब ब्रह्म हत्या के समान हैं । ५५ । पठे हुए वेद को भूलना वेद निंदा साखी हाके झूठ बोलना मित्र का बध लहसुन आदि का भक्षण बिठा आदि का भक्षण ये सब सुरापान के समान हैं । ५६ । याती मनुष्य घोड़ा रूपा भूमि हीरा मणि इन्हीं का चोराना सोना चोराने के समान है । ५७ । सहोदरा भगिनी लुमारो चाण्डाली मित्र की स्त्री पुत्र की स्त्री इन्हीं के साथ रति करना ये सब माता के गमन के समान हैं । ५८ । गौ का बध यज्ञ कराने के योग्य जो नहीं है उस को यज्ञ कराना पराए की स्त्री से रति करना अपनी आत्मा को बेचना गुरु माता पिता वेद का पढ़ना अग्नि की सेवा पुत्र इन्हीं का त्याग करना । ५९ । विवाह रहित जेठे भाई के रहत संतें छोटे भाई का विवाह होना और उन दोनों भाईयों का कन्या देना और उन को यज्ञ कराना । ६० । कन्या के योगि में अङ्गुली डाल-

ह्यहत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महांति पातकान्याहुस्संसर्गश्चापि तैस्सह । ५४ । अन्ततश्च समुत्कर्षे राजगामि च पै-
शुनम् । गुरोश्चास्त्रोऽकनिर्वन्धः समानि ब्रह्महत्याया । ५५ । ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः । गर्हितान्नाद्योर्जग्धिः
सुरापानसमानि षट् । ५६ । निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च । भूमिवज्रमणीनाञ्च स्वस्तेयसमं स्मृतम् । ५७ । रेतस्सेकः
स्वयानीपुं कुमारीष्वंत्यजाम् च । सख्यः पुत्रस्य च स्त्रीपुं गुरुतल्पसमं विदुः । ५८ । गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्याः सुतस्य च । ५९ । परिवर्तितानुजे नाहे परिवेदनमेव च । तयोर्दानञ्च कन्यायास्तयोरेव
च याजनम् । ६० । कन्याया दूषणञ्चैव वार्द्ध्यं व्रतलोपनम् । तडागागमदाराणामपत्यस्य च विक्रयः । ६१ । ब्राह्मता वां-
धवत्यागो मृत्योर्ध्यापनमेव च । मृताच्चाध्ययनादानमपण्यानाञ्च विक्रयः । ६२ । सर्वाकरेऽपधीकारो महायंत्रप्रवर्तनम् । हिंसै-
षधीनां स्त्र्याजीवोभिचारो मूलकर्म च । ६३ । इन्धनार्थमशुष्कानां द्रमाणामवपातनम् । आत्मार्थञ्च क्रियारम्भो निन्दता-
न्नादनन्तथा । ६४ । अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया । असच्छास्त्राधिगमनं कौशिल्यस्य च क्रिया । ६५ । धान्यकु-

के दूषित करना व्याज लेके जीवन करना ब्रह्मचारी हाके मैथुन करना तडाग बगीचा भार्या पुत्र इन्हीं का बेचना । ६१ । काल में यज्ञोपवीत न होना चाचा आदि की सेवा न करना द्रव्य लेके पड़ाना द्रव्य देके पढ़ना बेचने योग्य नहीं जो तिल आदि उस का बेचना । ६२ । सोना आदि का जो उत्पत्ति स्थान उस में राजा की आज्ञा से अधिकार होना पुल्ल आदि का बांधना औषधी का मारना अपनी स्त्री आदि का वंश्या बनावे पर पुरुष संयोग से जो धन मिले उसमें जीना शास्त्र कथित मारण प्रयोग करना मंत्र औषधी आदि के देने में बशीकरण करना । ६३ । इन्धन के अर्थ गोलें लृच का गिराना देवता पितृगं के बिना केवल अपने ही के अर्थ रमोई बनाना इच्छा बिना एक बेर लहसुन आदि जो भक्षण योग्य नहीं है उस का भक्षण करना । ६४ । अधिकार रहत संतें अग्निहोत्र का त्याग करना सोना छोड़ के रूपा आदि का चोराना तीनों ऋण को न कोड़ाना वेद और धर्म शास्त्र इन्हीं में विरुद्ध शास्त्र का सीखना गाचना गाना बजाना । ६५ ।

धाम्यतामालोहा आदि और पण्डु इन्हों का चोराना मदिगपान करने वाली ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की जो स्त्री हैं उस के साथ रति करना की शूद्र वैश्य क्षत्रिय इन्हों का मारना परलोक नहीं है ऐसी बुद्धि होना ये सभ एक एक उपपातक कहाते हैं । ६६ । ब्राह्मण को दंड हस्त पाद आदि से पीड़ा करना लहसुन पुरीष मद्य इन्हों का संधन कुटिलपना मुख आदि में मैथुन करना ये सभ जाति भ्रंश करने वाले हैं । ६७ । गदहा घोड़ा जंट हाथी बकरा भेड़ा मकली सर्प भैंसा इन्हों का बध संकरीकरण कहाता है । ६८ । निन्दित पुरुष से धन लेना बनिधा का कर्म करना शूद्र का सेवन करना असत्य बोलना ये सभ अपात्रीकरण कहाता है । ६९ । कमी (अर्थात् छोटे कीड़े) कीट (अर्थात् बड़े कीड़े) पत्नी इन्हों का मारना भोजन के योग्य वस्तु पेटारो में रखी ऊई मद्य के साथ आदि उस वस्तु का भोजन फल लकड़ी फूल इन्हों का चोराना अधीर होना ये सभ मलावह कहाता है । ७० । ये सभ पाप भिन्न भिन्न करके कहा ये सभ जिम जिम व्रत करके दूर होते हैं उन व्रतों को जानो । ७१ । ब्राह्मण को मारने वाला अपने शूद्र के लिये बन् में

प्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् । स्त्रीशूद्रविटक्षचवधो नास्तिक्यश्चोपपातकम् । ६६ । ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या घ्रातिरग्रेयम-
द्ययोः । जैहम्यश्च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् । ६७ । खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा । संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहि-
महिषस्य च । ६८ । निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् । अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् । ६९ । कृमिकीट-
वयो हत्यामद्यानुगतभोजनम् । फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यश्च मलावहम् । ७० । एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक् पृथक् ।
यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ्बोधत । ७१ । ब्रह्महा द्वादशसमाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् । भैक्ष्याश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शव-
शिरोध्वजम् । ७२ । लक्ष्यं शस्त्रमृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः । प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे चिरवाक् शिराः । ७३ ।
यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जितागोसवेन वा । अभितिद्विश्वजिह्वां वा चिहृताग्निष्टुतापि वा । ७४ । जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां
शतं व्रजेत् । ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्गियतेन्द्रियः । ७५ । सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् । धनं वा जीवनायालं

कुटी बनाके बारह वर्ष तक उस कुटी में बस करे जिम ब्राह्मण को मारे हं। उस का शिर ध्वजा में रखके भिन्ना मांगें यह प्रायश्चित्त निर्गुण ब्राह्मण को गुणवान ब्राह्मण बिना इच्छा से मारे तहाँ जानना । ७२ । अथवा अपनी इच्छा से शस्त्र बिद्या जानने वाले पुरुषों के शस्त्र का लक्ष्य (अर्थात् निशाना) होवे अथवा नीचे शिर करके तीन बेर अपनी आत्मा को अग्नि में डाले यह प्रायश्चित्त और आगे के श्लोक में जो कहेंगे अश्व मेध याग करना सो भी निर्गुण ब्राह्मण को गुणवान क्षत्रिय इच्छा से मारे तहाँ जानना । ७३ । अथवा अश्वमेध स्वर्जित गोसव अभिजित् निश्चित चिहृत् अग्निष्टुत इन्हों में से कोई एक याग करे यह प्रायश्चित्त अज्ञान से ब्राह्मण मारे तहाँ ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण को जानना । ७४ । ब्रह्म हत्या कोड़ाने के लिये छोड़ा भोजन करत मते इन्द्रियों के जीते ऊए कोई एक वेद को पढ़त सो याजन गमन करे यह भी अज्ञान से जाति माच ब्राह्मण बध में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को जानना । ७५ । अथवा वेद पढ़े ऊए ब्राह्मण को संपूर्ण धन देवे अथवा जीवन पर्यंत भोजन के निमित्त ब्राह्मण को धन देवे अथवा सामग्री सहित गृह ब्राह्मण को देवे यह भी अज्ञान से जाति माच ब्राह्मण बध में

ब्राह्मण को जानना । ७६ । अथवा हविष्य भोजन करत संते पश्चिम बाहिनी सरस्वती में स्नान करै अथवा घोड़ा भोजन करत संते तीन बेर वेद की संहिता को पढ़ै यह ज्ञान से जाति मात्र ब्राह्मण बध में ब्राह्मण को जानना । ७७ । गौ ब्राह्मण का दित करत संते दाही मोह सहित मूड़ मुड़ाये नह कटाये घाम के बजीप में अथवा गौ के स्थान में अथवा हल के मूल में बास करै बन में कुटी बनाकर रहै इस के विषय के लिये यह कहा है । ७८ । अथवा बारह वर्ष के व्रत का प्रारंभ किए है और मंथ में ब्राह्मण गौ इन्हीं की विपत्ति छोड़ने के लिये प्राण त्याग करै तो उसी समय में ब्रह्म हत्या से छूटता है । ७९ । ब्राह्मण का सर्व धन चोराके लिये जाता है उस के खाने के निमित्त यथा शक्ति बहाना रहित यज्ञ करै और तीन बेर युद्ध करै और ब्राह्मण का चोरी गया सर्व धन का न भी लावे तो ब्रह्म हत्या से छूटता है अथवा धन जाने से शोक सहित ब्राह्मण चोर के साथ युद्ध करने से प्राण त्याग में प्रवृत्त हो तो चोरी गया जो धन उस के समान धन देकर उस के प्राण की रक्षा करै तो भी ब्रह्म हत्या से छूटता है इस स्थान पर ऐसी शंका होती है कि यह बात तो उनासी के श्लोक में लिख आए हैं तो पुनरुक्ति दोष पड़ा तिस का समाधान यह है कि इस प्रकार का मरण छोड़कर दूसरे प्रकार से मरै गौ ब्राह्मण की रक्षा के

यहं वा सपरिच्छदम् । ७६ । हविष्यभुग्वानुसरेत्प्रतिशोतः सरस्वतीम् । अपेक्षा नियताहारस्त्रिर्वे वेदस्य संहिताम् ।

७७ । कृतवापनो वा निवसेद्दामांते गोव्रजेपि वा । आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः । ७८ । ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्रा-

णान्परित्यजेत् । मुच्यते ब्रह्महत्यायां गोप्ता गोव्राह्मणस्य च । ७९ । अथर्वं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा । विप्रस्य तन्नि-

मित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते । ८० । एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः । समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्याम्यपोहति । ८१ ।

शिष्टा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे । स्वमेनोऽवमृशस्त्रातो हयमेधे विमुच्यते । ८२ । धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य

उच्यते । तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति । ८३ । ब्राह्मणः सम्भवेनैव देवानामपि दैवतम् । प्रमाणञ्चैव लोकस्य

ब्रह्मा चैव हि कारणम् । ८४ । तेषां वेदविदो ब्रूयुश्चयोप्येनस्स निष्कृतिम् । सा तेषाम्पावनाय स्यात्पवित्रं विदुषां हि वाक् ।

८५ । अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः । ब्रह्महत्या कृतं पापं व्यपोहत्यात्मवक्तया । ८६ । हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव

लिये तहां उनासी के श्लोक का विषय जानना इस लिये पुनरुक्ति दोष न हुआ । ८० । इस रीति से नित्य हो व्रत का धारण करने वाला निश्चित होकर ब्रह्म

चर्य करने वाला बारह वर्ष समाप्त भये संते ब्रह्म हत्या से छूटता है । ८१ । अथवा अश्रमेध यज्ञ के अवश्य स्नान में (अर्थात् अंतस्नान में) राजा के समा-

गम में ब्रह्म हत्या करने वाला ब्राह्मण अपनी ब्रह्म हत्या को निवेदन करके उहां के साथ स्नान करै तो ब्रह्म हत्या से छूटता है यह प्रायश्चित्त स्तुतं च है

किसी का अंग नहीं है । ८२ । क्योंकि ब्राह्मण धर्म का मूल है और सन्निय धर्म का अग्र भाग है इस लिये दोनों तो अपने पाप का जनाके शुद्ध होता है ।

८३ । ब्राह्मण उत्पत्ति हो करके देवता का देवता है और उस का उपदेश सभ को मानने योग्य है इस में वेद ही कारण है और उपदेश का मूल वेद ही है ।

८४ । वेद पढ़े हुए तीन ब्राह्मण जो प्रायश्चित्त कहै सोई पवित्र है क्योंकि वेद पाठी ब्राह्मण की वाणी ही पवित्र है । ८५ । कहे हुए प्रायश्चित्तों में एक भी करै और

ब्रह्म को जाने तो ब्रह्म हत्या से छूटता है । ८६ । ब्राह्मणी में ब्राह्मण से उत्पन्न गर्भ के नाश में भी वही व्रत है यज्ञ करत सन्निय और वैश्व ब्राह्मण की रक्षण

जो इन्हीं में कोई एक को बध में भी पूर्व कथित व्रतों में कोई एक व्रत को करे । ८० । साड़ी होके छूट बोलने में गुरु को मिथ्या दोष लगाने में ब्राह्मण का मुर्ख होखेके रूप आदि जाती हरष में और चित्रिय आदि का मुर्ख आदि जाती हरष में अग्निहोत्री ब्राह्मण की खी बध में मिथ के बध में ब्रह्म इत्या आ व्रत करना । ८१ । यह जो बारह वर्ष का प्रायश्चित्त कहा है सो बिना इच्छा से ब्राह्मण के बध में जानना और इच्छा से ब्राह्मण के बध में यह प्रायश्चित्त नहीं है किंतु इस का दूना है । ८२ । मोह से ब्राह्मण चक्षि वैश्य ये तीनों वर्ण पैठी मुरापो के अग्नि वर्ण (अर्थात् अग्नि में तपाके लाल वर्ण) मुरा को पीवै उस करके शरीर नष्ट होने से उस पाप से छूटते हैं । ८३ । गो मूष अथवा बल गौ का दूध गौ का घी गौ के गोबर का रस इन्हीं में से कोई एक को अग्नि वर्ण करके पीवै और उस से भर आवै तो जुद्ध होवै । ८४ । गौ आदि के रोम से बस्त्र बनाके पहिरे ऊए जटा धारण किए ऊए मुरा पान बिन्द से युक्त पाउर का कषा तिल की खरी इन दोनों में से एक को रात्रि में एक बार एक वर्ष तक भोजन करै तो मुरा पान के दोष से छूटे यह प्रायश्चित्त बिना जानके गौण

व्रतश्चरेत् । राजन्यवैश्यौ चेजाना वाचेयीमेव च स्त्रियम् । ८५ । उक्ता चैवन्तं साक्ष्ये प्रतिरुध्यगुरुन्तथा । अपहृत्य च निःक्षपं कृत्वा च रुची सुहृद्वधम् । ८६ । इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् । कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते । ८७ । मुराम्पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां मुराम्पिवेत् । तथा स्वकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः । ८८ । गोमूत्रमग्निवर्णं पिवेदुदकमेव वा । पयोद्युतम्वा मरणाद्गोश्लुद्रसमेव वा । ८९ । कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि । मुरापानापनुत्यर्थं बालवासा जटी ध्वजी । ९० । मुरा वै मलमन्त्रानां पाप्मा च मलमुच्यते । तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न मुराम्पिवेत् । ९१ । गौडी पैठी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधामुरा । यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः । ९२ । यक्षरक्षः पिशाचान् मयं मांसं मुरा सवम । तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्रुता हविः । ९३ । अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकम्वाप्युदाहरेत् । अकार्यमन्य-त्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः । ९४ । यस्य कायगतं व्रज्ज मद्येनास्त्रायते सकृत् । तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वञ्च स गच्छति

मुरा पान में जानना । ९५ । अन्न के मल को मुरा कहते हैं इस लिये ब्राह्मण चित्रिय वैश्य मुरा को न पीवें । ९६ । गौडी माध्वी पैठी तीन प्रकार की मुरा हैं क्रम से गुड़ से भई मधु से भई पिसान से भई जैसी एक तैसी ही तीनों इस लिये ब्राह्मण तीनों को न पीवें । ९७ । मद्य (अर्थात् गौडी माध्वी पैठी तीनों को छोड़कर ग्यारह प्रकार के जो पुलक्य पेषि ने कहा है सो सब ग्यारहों को गिनाते हैं कटहर दाख मज्जा खजूर ताड़ जख मधु टंक मदी (अर्थात् दाख का भेद) मिरा (अर्थात् द्रव्य विशेष) नरियर इन्हीं से बनाया मुरा मांस मुरा आमाव (अर्थात् मद्य का अवस्था विशेष) इन सब को यक्ष राक्षस पिशाच का अन्न कहते हैं इस लिये देवता की इविष्य को भोजन करने वाला ब्राह्मण इन सब को न पीवै । ९८ । मद्य पान से मोहित होके ब्राह्मण अपवित्र में गिरेगा वेद के मंत्रों को कहैगा नहीं करने योग्य वस्तु को करेगा इस लिये मद्य को न पीवै । ९९ । जिस ब्राह्मण के हृदय में स्थित वेद एक बेर भी मद्य पान करने से डूबेगा उस ब्राह्मण का ब्रह्म तेज नष्ट होगा और वह ब्राह्मण शूद्र भाव को प्राप्त होगा । १०० । यह मुरा पान का बिशिष प्रायश्चित्त कहा इस के अनन्तर

घोना चोराने के प्रायश्चित्त को कहेंगे । ८८ । ब्राह्मण घोना चोराने राजा के पास जाकर कहे कि मैं घोना चोराने वाला हूँ मेरा दंड थाप करे । ८९ । राजा मूषर को लेकर थाप एक बेर उस को भारी बध से डण्ड होता है और ब्राह्मण तप से डण्ड होता है । १०० । तप से घोना चोराने के पाप को दूर करने की दण्डा करत संते बख का खंड पहिर के वन में ब्रह्म हत्या के व्रत को करे । १०१ । दस व्रतों करके चोरो के पाप को ब्राह्मण दूर करे माहगमन के पाप को चागे जो व्रत कहेंगे उससे दूर करे । १०२ । माहगमन करने वाला अपने पाप को कहके तप्त लोह के शयन में सोवै अथवा खोह की स्त्री बनाके अग्नि में तपाके उस का अस्त्रिगन करे (अर्थात् जिस प्रकार से माता के शरीर को अपनी शरीर से मिलान कीया रहा उसी प्रकार से मिले) । १०३ । अथवा लिङ्ग और दृषण (अर्थात् पेण्डु) दन दोनों को काटके अपनी अंजली में रखके निर्वर्ति दिशा (अर्थात् दक्षिण पश्चिम का कोन) में सीधा चला जावै जब तक न मरे । १०४ । अथवा खट्वाङ्ग (अर्थात् खटिया का एक अंग) धारण किए हुए बख का खंड पहिरे हुए नख लोम के ब दाढ़ी मोह को रक्खे हुए जन रहित वन में निश्चित होकर

। ८७ । एषा विचित्राऽभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् । ८८ । सुवर्णस्तेयकदिप्रो राजानमभिगम्यतु । स्वकर्मस्थापयन् ब्रूयान्माभवाननुशास्त्विति । ८९ । गृहीत्वा मुसलं राजा स्रुह्न्यात्तु तं स्वयम् । वधेन शुध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैवतु । १०० । तपसापनुनुत्सु सुवर्णस्तेयजं मलम् । चीरवासा द्विजोरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् । १०१ । एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः । गुरुस्त्रीगमनीयन्तु व्रतैरेभिरपानुदेत् । १०२ । गुरुतृष्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये । हर्मिश्च वलन्तीम्वा श्लिष्येन्मृत्युना स विशुध्यति । १०३ । स्वयम्वा शिश्रदृषणावुकृत्याधाय चाज्जलौ । नैर्कृतीन्दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः । १०४ । खडाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने । प्राजापत्यश्चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः । १०५ । चान्द्रायणम्वा चीन्मासानभ्यस्येन्द्रियतेन्द्रियः । हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतस्यापनुत्तये । १०६ । एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिना मलम् । उपपातकिनस्त्वमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः । १०७ । उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवाग्निवेत् । कृतवापो वसेज्जोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः । १०८ । चतुर्थकालमश्रीयादक्षारलवणं मितम् । गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वा मासौ नियतेन्द्रियः । १०९ । दिवानुगच्छेद्वास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् । शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् । ११० । तिष्ठन्तीघनुतिष्ठेत्तु

एक वर्ष तक प्राजापत्य व्रत को करे यह प्रायश्चित्त अज्ञान से अपनी भार्या जानीके माहगमन में जानना । १०५ । अथवा इन्द्रियों को जीतकर हविष्य अथवा धव की लपसी भोजन करत संते माहगमन के पाप को दूर करने के लिये तीन मास तक चान्द्रायण व्रत को करे यह प्रायश्चित्त असाधी अथवा दूसरे वर्ण की गुरु भार्या के गमन करने में जानना । १०६ । दन व्रतों में महा पातकी लोग अपने पाप को दूर करें और उपपातकी लोग आगे जो व्रत कहेंगे उससे अपने पाप को दूर करें । १०७ । उपपातकी गौ का मारने वाला एक मास तक यव का सतुआ पीवै नख लोम के स आदि को नहरनी और छूरा में कटाय के गौ के चर्म से दंडित होके गौ के स्नान में बाध करे । १०८ । एक दिन उपवास करके दूसरे दिन पहिली बेर घोड़ा भोजन करे इन्द्रियों को जीते हुए दो मास तक गौ मूष से स्नान करे । १०९ । दिन में गौ के पीके चले खड़े होकर गौ के रुर से उड़ती धुली को पीवै सेवा करत संते नमस्कार करके रात्रि में वीरासन से रहे । ११० ।

गौ खड़ी हो तो आप भी मत्सर (अर्थात् दूसरे के शुभ में द्वेष) से रहित होके इन्द्रियों को जीते ऊपर खड़ा रहें गौ वहीं तो आप भी उस के पीछे चले गौ बैठे तो आप भी बैठे । १११ । रोग और चौर बाघ आदि भय के कारण इन्हीं से युक्त गौ हो अथवा गिरी हो या काँदव में फंसी हो उस को सब उपाय से यथा शक्ति छोड़ावे । ११२ । गर्मी वर्षा शीत में और अति वायु चलने में यथा शक्ति गौ की रक्षा बिना किए ऊपर अपनी रक्षा न करे । ११३ । अपने अथवा दूसरे के गृह में अथवा खरिहान में या खेत में भक्षण करती गौ को न कहै और बहवा को पिलातो हो तो भी न कहै । ११४ । गौ का मारने वाला मनुष्य इस विधि से गौ के पीछे चले तो तीन मास में गौ हत्या से दूटे । ११५ । सुंदर प्रकार से व्रत करके एक बघल और इस गौ को दैवै कदाचित् इतना न हो सके तो वेद पढ़े हुए ब्राह्मण को सब धन देवै । ११६ । आगे जो अवकीर्ण कहेंगे उस को छोड़कर ब्राह्मण ज्ञेय वैश्य ये उपपातक से युक्त हों तो शुद्धि के लिये यही व्रत करें

व्रजन्तीष्यनुव्रजेत् । आसीतासु तथासीनो नियते वीतमत्सरः । १११ । आतुरामभिशस्ताम्बा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः । पति-
ताम्यङ्कलमात्वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् । ११२ । उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा मृशम् । न कुर्वीतात्मनस्त्राणं मोरकृत्वा
तु शक्तितः । ११३ । आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे स्तेच्यथा खले । भक्षयन्तीन् कथयेत्पिबन्तश्चैव बत्सकम् । ११४ । अनेन
विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति । स गोहत्या कृतम्पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति । ११५ । वृषभैका दशागाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविज्ञो निवेदयेत् । ११६ । एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः । अवकीर्णवर्जं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायण-
मश्नापि वा । ११७ । सवकीर्णी तु काणेन गर्हभेन चतुष्यथे । पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्घृतिस्त्रिंशि । ११८ । हुत्वाऽग्नौ वि-
धिवद्भोमानंततश्च समेत्युवा । बातेन्द्रगुरुवन्दीनां जुहुयात्सर्पिषा हुतीः । ११९ । कामतोरेतसस्तेकं व्रतस्यस्य द्विजन्मनः । अ-
तिक्रमन्व्रतस्याहुर्द्धर्माश्चा ब्राह्मवादिनः । १२० । मारुतम्युरुहृतश्च गुरुम्यावकमेव च । चतुरो व्रतिनोभ्येति ब्राह्मन्तेजोवकीर्णिनः ।
१२१ । एतस्मिन्नेनसिप्राप्ते वसित्वा गर्हभाजिनम् । सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्मपरिकीर्तयन् । १२२ । तेभ्योलब्धेन भैक्षेण वर्तय-
न्नेककालिकम् । उपस्पृशंस्त्रिपवणं त्वन्देन स विशुध्यति । १२३ । जातिभंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया । चरेत्सान्तपनङ्ग-

अथवा चान्द्रायण व्रत को करें । ११७ । अव कीर्ण चतुष्यथ (अर्थात् चौरहा) में पाक यज्ञ विधान करके रात्रि में निर्घृति देवता के निमित्त काणा गदहा से याग करें । ११८ । अग्नि में विधि पूर्वक स मां भिंचतु मारुतः इस मंत्र से वायु इंद्र गुरु अग्नि इन्हीं को घी से आहुति देंवै । ११९ । ब्राह्मण ज्ञेय वैश्य ये तीनों वर्ण व्रत में स्थित हैं और इच्छा से वीर्य पात करें तो व्रत का लंघन भया इस बात को धर्म जानने वाले ब्रह्मवादियों ने कहा । १२० । अव कीर्ण (अर्थात् ब्रह्म चर्यावस्था में वीर्य गिराने वाला) का ब्रह्म तेज वायु इंद्र गुरु अग्नि इन चारों के पास जाता है । १२१ । इस पाप को छोड़ने के लिये गदहा का याग पढ़िके अपने कर्म को कहत संते सात घर से भिक्षा मांगें । १२२ । उस भिक्षा को एक बेर भोजन करत संते सात प्रातः मध्याह्न काल में भोजन करत संते रोज़ तो एक वर्ष में शुद्ध होवै । १२३ । जाति भंश करने वाले कर्मों में कोई एक कर्म को इच्छा से करके सांतपनङ्ग करे और बिना इच्छा से किए दोष

तो प्राजापत्य व्रत करें व्रतों का लक्षण आगे कहेंगे । १२४ । संकरी करण कर्मों में और अपाची करण कर्मों में इच्छा से कोई एक कर्म करने में एक मास चांद्रायण व्रत करें और मलिनी करण कर्मों में इच्छा से कोई एक कर्म करने में तीन दिन यव की लपमी भोजन करें । १२५ । अपने कर्म में स्थित क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों के बध में ब्रह्म हत्या व्रत का चतुर्थांश अष्टमांश षोडशांश व्रत क्रम से जानना ये सब व्रत इच्छा से कर्म करने में जानना । १२६ । बिना इच्छा से क्षत्रिय का बध करके ब्राह्मण एक बैल सहित हजार गौ ब्राह्मण को दें । १२७ । अथवा जटा धारण किए हुए नियम से ग्राम के बाहर वृत्त के मूल में बाम करत मंते ब्रह्म हत्या का व्रत तीन वर्ष तक करें इच्छा रहित बध में यह जानना । १२८ । अपने कर्म में स्थित वैश्य का बध करके ब्राह्मण एक वर्ष तक ब्रह्म हत्या व्रत को करें अथवा एक सौ एक गौ दान करें इच्छा रहित बध में यह जानना । १२९ । शूद्र का बध करने वाला ब्राह्मण छः मास ब्रह्म हत्या व्रत को करें एक बैल अतर्ण दश गौ ब्राह्मण को दें यह भी बिना इच्छा से बध में जानना इन सब व्रत करने में कपाल ध्वजा को काड़ देना । १३० । बिलारि नेउर नीलकंठ मंजुका कुक्षर गोह उल्ल

स्मृत्प्राजापत्यमनिच्छया । १२४ । सङ्करापाचकृत्यासु मासं शोधनमैन्द्रवम् । मलिनी करणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैश्चहम् । १२५ । तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः । वैश्येष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे त्रयेस्तु षोडश । १२६ । अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य-
द्विजोत्तमः । वृषभैकमहसागा दद्यात्सुचरितव्रतः । १२७ । अथश्चरेद्वा नियतो जटीब्रह्महणो व्रतम् । वसन्दूरतरे ग्रामादृक्ष-
मूलनिकेतनः । १२८ । एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः । प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतङ्गदाम । १२९ । एतदेव
व्रतङ्कत्स्नं पणसासाम्ब्रह्महा चरेत् । वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सितः । १३० । मार्जारनकुलौ हत्वा चापं मण्डूकमेव
च । श्वगोर्धोऽसूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतश्चरेत् । १३१ । पयः पिवेत्त्रिराचम्वा योजनम्वाध्वनो व्रजेत् । उपस्पृशेत्सर्वान्वा वा
सूक्तम्वाग्दैवतं जपेत् । १३२ । अभिक्षाणायसौ दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः । पलालभारकं पंढे सैसकश्चैकमापकम् । १३३ ।
एतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणान्तु तित्तिरौ । शुके द्विहायनभृत्सं क्रौंचं हत्वा त्रिहायनम् । १३४ । हत्वा हंसं बलाकाञ्च वकम्ब-
र्हिणमेव च । वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्वाह्मणाय गाम् । १३५ । वासो दद्याद्द्वयं हत्वा पञ्च नीलाम्बुपान गजम् । अजमेपा-

कौआ इन्हों में कोई एक का बध करके शूद्र हत्या व्रतों को करें । १२१ । अथवा त्रिराच दूध पीत्रे इस में अशक्त हो तो तीन रात चार कोश गमन करें इस में भी अशक्त हो तो तीन रात नदी में स्नान करें इस में भी अशक्त हो तो आपोहिष्ठा इस स्रुत का जप करें यह बिना इच्छा से बध में जानना । १२२ । मर्ष बध करके चोखा आगे का भाग वाला लोह दंड ब्राह्मण को दें और नपुंसक को बध करके एक भार पुश्रा और एक नामा सीसा इन दोनों को दें । १२३ । सुअर तित्तिर सुगा क्रौंच (अर्थात् रक्त मूत्र वाला करंजुल) के शब्द करते पांती से गमन करने वाला इन्हों का बध करके क्रम से एक घड़ा भर घी एक द्रोण तिल दो वर्ष का बकवा तीन वर्ष का बकवा को ब्राह्मण को दें । १३४ । हंस बलाका (अर्थात् बिष कंटिका पत्ति विशेष) बकुला मार वानर बांज भाभ इन सभी में से कोई एक का बध करके ब्राह्मण को गौ दें । १३५ । घोड़ा हाथी इन्हों का बध करके क्रम से बख पांच बैल ब्राह्मण को दें बकरा भेड़ा

इन दोनों में से कोई एक का बध करके एक बैल देवे गदहा का बध करके एक वर्ष का बहवा देवे । १२६ । कभी मांस का भोजन करने वाले बाघ आदि का बध करके दूध देतो गौ को देवे और कभी मांस को न भोजन करने वाले मृग आदि को बध करके बहिया देवे ऊंट का बध करके एक रत्ती सोना देवे । १२७ । ब्राह्मण आदि चारों वर्ण को व्यभिचारिणी स्त्री का बध करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र क्रम से चर्मपुट धनुष बकरा भेड़ा को देवे । १२८ । दान करके संपूर्ण पाप को छोड़ने में असमर्थ हो तो एक एक के बध में एक एक छच्छ्र व्रत करे । १२९ । हाड़ सहित जीव (अर्थात् गिरगिटान आदि) सहस्र के बध में और बिना हाड़ के जीव (अर्थात् उडुम आदि) गाड़ी भर के बध में शूद्र इत्या व्रत को करे । १३० । हाड़ सहित जीव के बध में ब्राह्मण को कुच्छ देवे और हाड़ रहित जीव के बध में प्राणायाम करे । १३१ । फल के देने वाले वृक्ष (अर्थात् आम आदि) गुल्म (अर्थात् कुल्लुक आदि) बल्ली (अर्थात् गडुचि आदि) लता (अर्थात् वृक्ष पर चढ़ने वाली) फूलें जो बोरुध (अर्थात् कोहड़ा आदि) इन्हीं में से एक एक को केदन में गायत्री आदि स्तुति का

वनङ्गाहं खरं हत्वैकहायनम् । १३६ । क्रव्यादांस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् । अक्रव्यादान्बत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् । १३७ । जीनकार्मुकवस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये । चतुर्णामपि वर्णानाम्मारीर्हत्वानवस्थिताः । १३८ । दानेन वर्धनी-
र्णैकं सर्पादीनामशक्नुवन् । एकैकशस्त्ररेत्कच्छं द्विजः पापापनुत्तये । १३९ । अस्थिमतान्तु सत्वानां सहस्रस्य प्रमापणे । पूर्णं चानस्य नस्त्वान्तु शूद्रहत्या व्रतश्चरेत् । १४० । किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमताम्बधे । अनस्त्राश्चैव हिंसायाम्प्राणायामेन शुद्ध्यति । १४१ । फलदानान्तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक् शतम् । गुल्मवल्लीलतानाञ्च पुष्पितानाञ्च वीरुधाम । १४२ । अन्ना-
द्यजानां सत्वानां रसजानाञ्च सर्वशः । फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् । १४३ । लघुजानामोषधीनाञ्चातानाञ्च स्वयम्बने । वृथालभेनुगच्छेद्भान्दिनमेकमप्योव्रतः । १४४ । एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् । शानाज्ञानहतं लक्ष्यं शृणुतानाद्यभक्षणे । १४५ । अज्ञानादारुणीम्यीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति । मतिपूर्वमनिर्देश्य म्प्राणान्तिकमितिर्स्थातः । १४६ । अपः सुरा भाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा । पञ्च रात्रिभ्यवेत्पीत्वा शंखपुष्पी शृतमप्ययः । १४७ । सृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां वि-

मौ बार जप करना । १४२ । अन्न आदि में उत्पन्न जीव और गुड़ आदि रस में उत्पन्न जीव फल पुष्प में उत्पन्न जीव इन्हीं के बध में घृत भोजन करना । १४३ । जीतने से जो अन्न उत्पन्न होता है साठी आदि और आप से बन में जो उत्पन्न होता है तीनी आदि इन्हीं को प्रयोजन रहित केदन में एक दिन दूध पीके रहै और गौ के पीके गमन करे । १४४ । जानके अथवा बिना जानके किए जो जीव बध उस पाप को इन व्रतों करके दूर करना योग्य है और भोजन के योग्य जो वस्तु नहीं है उस के भक्षण में प्रायश्चित्त को सुनो । १४५ । बिना जानके गौड़ो माध्वी सुरा को पीवे तो पुनः संस्कार से शुद्ध होता है और जान के पीवे तो मरण से शुद्ध होता है यह शास्त्र की मर्यादा है । १४६ । पीछी सुरा पाच में और मद्य पाच में स्थित गंध रहित जल के पीने में शंखपुष्पी औषधी पीके दूध को पांच रात पीवे । १४७ । सुरा को छुके देके लंके और शूद्र का जूठा जल को पीके कुश से पके जल को तीन दिन पीवे । १४८ । सोम घाग

को करने वाला ब्राह्मण सुरा पीने वाले का गंध को सुंघने जल में तीन बेर प्राणायाम करके घी को भोजन करने से शुद्ध होता है । १४८ । अज्ञान से बिठा मूत्र सुरा से छूई गई वस्तु इन तीनों में से कोई एक को भोजन करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पुनः संस्कार के योग्य होते हैं । १४९ । पुनः संस्कार में मुंडन देखला दंड भिन्ना ये चारो नहीं होते । १५० । भोजन करने योग्य जिस का अन्न नहीं है उस का अन्न और खी शूद्र इन्हीं का जूठा अन्न भक्षण के योग्य नहीं जो मांस इन्हीं का भक्षण करके यव के सतुआ को सात दिन पीवे । १५१ । शुक्र (अर्थात् स्वभाव से मधुर रस काल से जल में बास आदि में आमिल होना) कषाय (अर्थात् बडेडा आदि) ये पवित्र भी हो तो इन को पीके तब तक अशुद्ध रहता है जब तक ये सब पचें न । १५२ । घाम का सुअर गदहा ऊंट सियार बानर कौआ इन्हीं का मूत्र और बिठा को भोजन करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य चांद्रायण व्रत को करें । १५३ । सूखी मांस भूमि में उत्पन्न कृत्राक (अर्थात् कुकुरमुत्ता)

धिवत्प्रतिगृह्य च । शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिवेत्तृहम । १४८ । ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः । प्राणा-
नप्सु चिरायस्य घृतम्प्राश्य विशुध्यति । १४९ । अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरा संस्पृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति च यो वर्णा-
द्विजातयः । १५० । वपनं मेखलादण्डो भैश्यचर्याव्रतानि च । निवर्तते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्म्मणि । १५१ । अभोज्यानां
च भुक्तान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च । जग्ध्वा मांसमभक्ष्य च सप्तरात्रं यदापि पदेत् । १५२ । शुक्तानि च कपायांश्च पीत्वा मेधान्यपि
द्विजः । तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्नं व्रजत्यधः । १५३ । विद्वराहखरोद्वाणां गोमायोः कपिकाकयोः । प्राश्य मूत्रपुरीषाणि
द्विजश्चांद्रायणश्चरेत् । १५४ । शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कषकानि च । अज्ञातश्चैव सूनास्थमेतदेव व्रतश्चरेत् । १५५ ।
कष्यादशूकरोद्वाणां कुक्कुटानाञ्च भक्षणे । नरकाकखराणाञ्च तप्तलृच्छं विशोधनम् । १५६ । मांसिकान्श्च यो श्रीयद्दसमावर्तको
द्विजः । सवीर्यहान्युपवसेदेकाहश्चोदके वसेत् । १५७ । ब्रह्मचारी तु यो श्रीयद्दसमावर्तको
समापयेत् । १५८ । विडालकाकाखुच्छिष्टञ्जग्ध्वाश्च न कुलस्य च । केशकीटावपन्नञ्च पिवेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् । १५९ । अभोज्यम-

और भक्षण के योग्य है अथवा नहीं है इस प्रकार से जो मांस जानी नहीं गई है वह मांस सूना (अर्थात् बध स्यान) में रखी हो इन्हीं में से कोई एक के भक्षण में पूर्ण कथित व्रत को करें । १५५ । कषी मांस के भोजन करने वाले बाघ आदि घाम का सुअर ऊंट घाम का मुरगा मनुष्य कौआ गदहा इन्हीं में से कोई एक के मांस के भक्षण में तप्त लृच्छ व्रत को करें । १५६ । ब्रह्मचारी मांसिक आह्न के अन्न को भोजन करके तीन दिन उपवास करें और एक दिन जल में बास करें । १५७ । ब्रह्मचारी अज्ञान से मधु और मांस इन दोनों में से एक को भक्षण करके प्राजापत्य लृच्छ को करके व्रत शेष को समाप्ति करें । १५८ । विलारि कौआ मूसा कुत्ता नेउर इन्हीं में से कोई एक का जूठा वस्तु को भोजन करके केश और बड़े कीड़े इन दोनों में से कोई एक से मिली हुई वस्तु को भोजन करके वह सुवर्चला औषधी से पक जल को पीवे । १५९ । अपने को शुद्धि का इच्छा करने वाला भोजन के योग्य जो वस्तु नहीं है उस को भोजन न

करे और अज्ञान में भोजन किए हो तो ब्रह्म (अर्थात् उलटी) करे यह म होमके तो प्रायश्चित्त करके अपनी आत्मा को शुद्ध जलदी करे । १६० । भोजन के योग्य जो वस्तु नहीं है उस के भोजन में यह प्रायश्चित्त कहा चोरी के पाप का प्रायश्चित्त को गुने । १६१ । ब्राह्मण के गृह में इच्छा करके धान्य को चोरी के छच्छ्र व्रत को एक वर्ष तक शुद्धि के लिये ब्राह्मण करे परंतु देश काल द्रव्य परिमाण स्नासि गुण आदि की अपेक्षा करके अधिक भी जानना इसी रीति में आगे जो कहेंगे उस में भी जानना । १६२ । मनुष्य स्त्री खेत गृह बाउली कुंआ का जल इन्हों के हरण में चांद्रायण व्रत करना । १६३ । थोड़े मोल वाली और थोड़े प्रयोजन वाली वस्तु के हरण में सान्त्वन छच्छ्र करे और चोराई वस्तु जिस की हो उस को देवे यह बात सभ चोरी के प्रायश्चित्त में जानना । १६४ । भैक्ष्य (अर्थात् चबेला आदि) भोज्य (अर्थात् भात आदि) यान (अर्थात् सवारी) शय्या आसन पुष्पमूल फल इन्हों में से कोई एक के हरण में पंचगव्य (अर्थात् गौ का दूध दही घी मृत गोबर) को पीवे । १६५ । ठण काष्ठ खखा टुच अन्न गुड़ वस्त्र चाम मांस इन्हों में से कोई एक के चोराने में तीन दिन

नन्नास्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता । अन्नानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशु शोधनैः । १६० । एषोनाद्यादनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः । स्तेयदोषापहर्तृणां व्रतानां श्रयतां विधिः । १६१ । धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्विजोत्तमः । स्वजातीयगृहादेव छच्छ्राब्देन विशुध्यति । १६२ । मनुष्यणां तु हरणे स्त्रीणां श्लेचगृहस्य च । कूपवापीजलानाञ्च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् । १६३ । द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वा न्यवेष्टतः । चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रन्त्रिर्यात्यात्मशुद्धये । १६४ । भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यस्विशोधनम् । १६५ । ठणकाष्ठद्रमाणाञ्च शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चेलचर्मामिषाणाञ्च चिरात्रं स्यादभोजनम् । १६६ । मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयः कांस्योपलानाञ्च दादशाहं कणान्नता । १६७ । कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगंधीपधीनाञ्च रज्जाश्चैव त्र्यहम्ययः । १६८ । एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः । अगम्यागमनीयन्तु व्रतैरेभिरपानुदेत् । १६९ । गुरुतल्पवृत्तं कुर्याद्रेतः सिक्ता स्वयोनिषु । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च । १७० । पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वसीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चांद्रायणं चरेत् ।

उपवास करना । १६६ । मणि मोती मृङ्गा तामा रूपा लाहा कांसा पत्थर इन्हों में से कोई एक के चोराने में बारह दिन तक चाउर का कणा का भोजन करना । १६७ । कपास कीड़ा ऊर्णा इन्हों में भए वस्त्र एक खुर वाले पशु पत्ती गंध औषधी रस्सी इन्हों में से कोई एक के चोराने में तीन दिन तक दूध पीना यहां सभ वस्तु के हरण में एक रूप प्रायश्चित्त कहा मो कौसे बनें ऐसी आशंका भई उस का समाधान यह है कि चोराई वस्तु को तो स्वामी को दिया और चोरी तो सभ की एक ही है इस लिये एक रूप प्रायश्चित्त कहा इसी रीति में चोरी में जहां एक रूप प्रायश्चित्त है तहां जानना । १६८ । इन व्रतों में चोरी के पाप को दूर करे और गमन के योग्य जो स्त्री नहीं है उस के गमन में जो पाप है उस को आगे जो व्रत कहेंगे उस में दूर करे । १६९ । सगी बर्तन मित्र पुत्र इन्हों की स्त्री कुमारी चाण्डाली इन्हों में से कोई एक के साथ अज्ञान से रमण करके माहगमन का प्रायश्चित्त करे । १७० । मौनी की

बेटी और मौसी पूज की बेटी सगे भाई की लड़की इन्हीं में से कोई एक के साथ रति करे तो चांद्रायण व्रत करे परंतु ये सब अज्ञान से एक बेर पर पुरुष के साथ रति किए ही तब जानना क्योंकि प्रायश्चित्त होता है इस लिये यह कहते हैं । १०१ । बुद्धिमान पुरुष पूर्ण कथित भाई की लड़की को छोड़कर तीनों के साथ विवाह न करे और करे तो नरक में जाता है । १०२ । मौ की छोड़कर छोड़ी आदि पशु और रजस्वला स्त्री और कोई एक संबंध से रहित स्त्री और जल इन्हीं में वीर्य पात करके सान्त्वन कच्छ करे । १०३ । गाड़ी जल दिन इन्हीं में पुरुष अथवा स्त्री के साथ रति करके बख सहित खान करे । १०४ । अज्ञान से चाण्डाली और खेच्छ आदि की स्त्री इन्हीं के अन्न को भोजन करके और इन्हीं से प्रतिग्रह करके ब्राह्मण पतित होता है और ज्ञान से तो इन्हीं के सम होता है । १०५ । पर पुरुष में रत स्त्री को भर्ता एक गृह में रोक के रखे और जो व्रत पुरुष को पर स्त्री गमन में है सो व्रत उस स्त्री को करावे । १०६ । अपने जातिके पुरुष के साथ एक बेर रति करने से स्त्री दोषी भई उस का प्रायश्चित्त करके फिर अपने जाति वाले पुरुष के साथ रति करे

१०१ । एतास्त्रिस्तु भार्याथे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् । चातित्वेनानुपेयास्ताः पतंति ह्युपयन्मधः । १०२ । अमानुषीषु पुरुष उद-
क्यायामयोनिषु । रेतः सिक्ता जले चैव कच्छं सान्त्वनश्चरेत् । १०३ । मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योपिति वा द्विजः । गोयानेषु
दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् । १०४ । चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्ता च प्रतिगृह्य च । पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्सा-
म्यन्तु गच्छति । १०५ । विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुंध्यादेकवेश्मनि । यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनाञ्चारयेद्व्रतम् । १०६ । सा
चेत्युनः प्रदुष्येत्तु सहशेनोपयन्त्रिता । कच्छञ्चान्द्रायणञ्चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् । १०७ । यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेदना-
द्विजः । तद्वैश्वभुजपन्नित्यन्त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति । १०८ । एषाम्यापकतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः । पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः
शृणुत निष्कृतिः । १०९ । सम्वत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् । याजनाद्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् । ११० । यो
येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः । स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये । १११ । पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्वान्धवैर्वह्निः ।
निन्दितेहनि सायान्हे ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ । ११२ । दासीघटमपाम्पूर्णमपर्यस्येत्प्रेतवत्यदा । अहोरात्रमुपासीरन्

तो वह स्त्री प्राजापत्य व्रत और चांद्रायण व्रत को करे । १०७ । शूद्र वर्ण की स्त्री के साथ एक रात रति करके ब्राह्मण क्षत्रिय जो पाप करते हैं उन को दूर करने के लिये तीन वर्ष तक भिला मांग के भोजन करत संते जप करत रहे । १०८ । चारो वर्ण के पाप का प्रायश्चित्त यह कहा अब पतितों के साथ संसर्ग करने वाले के प्रायश्चित्त को सुनो । १०९ । पतितों के साथ एक वर्ष तक एक सवारी अथवा एक आमन पर बैठे एक पंचति में भोजन करे तो उस के सम होता है और पतितों की श्राद्ध करावे अथवा अनेक कराके गायत्री सुनावे अथवा विवाह आदि संबंध करे तो तुरंत उस के सम होता है । ११० । जिस पतित के साथ जो संसर्ग करे सो संसर्ग विशुद्धि के लिये उसी का व्रत करे । १११ । सपिण्ड बांधव बाहर जाके जाति अलिक गुरु के समीप निन्दित दिन में सायंकाल में पतित को जल देवे । ११२ । दासी जल से पूर्ण घट को प्रेत की नार्द (अर्थात् दक्षिण मुख छोके) पांव से ठरकाय देवे और बांधवों के सहित

सपिण्ड स्नान एक दिन उपवास करें । १८३ । उस पतित के साथ बैठना बोलना उस की भाग देना उस के साथ लोक का व्यवहार आदि इन सब को त्याग करे । १८४ । जेठा भाई से गुण करके अधिक हो तो जेठांश को पावे और जेठा भाई को जेठाई और जेठशी इन दोनों की निवृत्ति होती है । १८५ । जब पतित ने प्रायश्चित्त का किया तब उस के साथ सपिण्ड लोग जल में पूर्ण नया घड़ा का पुण्य जलाशय में स्नान करके ठरकाय देंगे । १८६ । वह पतित जल में घड़ा का डालकर अपने गृह में प्रवेश करके जाति के संपूर्ण कार्य को पूर्ण की नाई करे । १८७ । पतिता स्त्री में भी यही विधि है और पतिता स्त्री के गृह के समीप में बास देना और भोजन पानी वस्त्र भी देना । १८८ । बिना प्रायश्चित्त किए पापियों के साथ कोई अर्थ को न करे और जब प्रायश्चित्त कर चुके तब भिंदा भी कभी न करे । १८९ । बालक उपकार शरणागत स्त्री इन्हीं में से कोई एक का नाश करने वाला शास्त्राक्त प्रायश्चित्त किए भी हो तो उस के साथ बास न करना । १९० । जिस ब्राह्मण

शौचस्वाधवैस्तह । १८३ । निवर्तेरंश्च तस्मात् सभाषणसहासने । दायाद्यस्य प्रदानञ्च याचा चैव हि लौकिकी । १८४ । ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठावाप्यञ्च यदनम । ज्येष्ठांशम्प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोधिकः । १८५ । प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपान्नवम । तेनैव सार्द्धम्प्रास्थेयः स्नात्वा पुण्ये जलाशये । १८६ । सत्वप्सुतं घटम्प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम् । सर्वाणि ज्ञातिकायाणि यथा पूर्वं समाचरेत् । १८७ । एतदेव व्रतं कुर्याद्योपितु पतितास्वपि । वस्त्रान्नपानन्देयन्तु वसेयुश्च गृहान्तिके । १८८ । एनस्त्रिभिरनिर्णिक्तैर्नाथं किञ्चित्समाचरेत् । कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् । १८९ । बालघ्रांश्च कृतघ्रांश्च विशुद्धानपि धर्म्मतः । शरणागतहंतृश्च स्त्रीहंतृश्च न संवसेत् । १९० । येषां द्विजानां सावित्री नानुच्येत यथाविधि । तांश्चारयित्वा चीन्कच्छान् यथाविध्युपनापयेत् । १९१ । प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः । ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् । १९२ । यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति जप्येन तपसैव च । १९३ । जपित्वा चीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः । मासंगोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् । १९४ । उपवासकृतान्तनु गोवृजात्पुनरागतम् । प्रणतम्प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् । १९५ । सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसज्जवाम् । गोभिः

चित्रिय वैश्य को गायत्री विधि में कही न गई हो उस को तीन छक्क व्रत कराके यथा विधि फेर जनेऊ करना । १९१ । बिरुद्ध कर्म करने वाला (अर्थात् निषिद्ध शूद्र सेवा करने वाला) और वंद को नहीं पढ़ने वाला ब्राह्मण चित्रिय वैश्य प्रायश्चित्त करने को इच्छा करे तो उस को भी तीन छक्क व्रत का उपदेश करना । १९२ । निर्दित कर्म करके जो धन ब्राह्मण अर्जन करते हैं उस धन के त्याग में और जपतप करके शुद्ध होते हैं । १९३ । निश्चित होके एक मास तक नित्य ही तीन हजार गायत्री का जप करत संत गौ के स्थान में बास करत दूध का आहार करत असत्प्रतिग्रह से ब्राह्मण छूटता है । १९४ । गौ के स्थान से फेर आया हुआ उपवास करके दुर्बल मन्त्र ब्राह्मण को भले लोग पूछें कि हे ब्राह्मण हमारे सभ के समान होने की इच्छा करते हो क्या । १९५ । तब वह ब्राह्मण कहे कि फेर असत्प्रतिग्रह न करेंगे मत्स्य कहते हैं ऐसा करके गौ के भोजन के लिये घास देंगे उस की दिई घास को गौ भोजन करे तब भले लोग उस का पक्षण

करे । १८६ । ब्राह्मणों को यज्ञ करके पिता गुरु आदि से भिन्न निषिद्ध दाह आदि मरण श्राद्ध करके और मरण प्रयोग करके अहीन नाम वाली याग करके तोन रुच्छ करे । १८७ । शरणागत को त्याग करके वेद पढ़ाने के योग्य जो नहीं उसको वेद पढ़ाकर एक वर्ष तक यज्ञ का आहार करके रहे । १८८ । कुत्ता सियार गदहा मनुष्य चौड़ा सुअर गाम बामी जो विलारि आदि इन्हों में से कोई एक करके काटा गया पुरुष प्राणायाम में गड़बड़ होता है । १८९ । कभी मांस भोजन करने वाला और अपांक्त (अर्थात् पूर्ण जो कह आए है पंचति में रहने के योग्य नहीं) मो एक मास तक दो दिन उपवास करके तीसरे दिन मायंकाल में भोजन करे और संहिता का जप करे देवहृतस्यैनसोऽवयजनमसि इम आदि आठ मंत्र करके आठ वंश होम करे नित्य ही तब गड़बड़ होता है । २०० । ऊंट से अथवा गदहा से युक्त जो गाड़ी आदि तिस पर इच्छा से चढ़के और गंगा होके स्नान करके प्राणायाम करे । २०१ । दुःखित मनुष्य बिना

प्रवर्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् । १८६ । ब्राह्मणों को याजनं कृत्वा परेपामन्यकर्म च । अभिचारमहीनश्च विभिः वृक्षैर्य-
पोहति । १८७ । शरणागतस्परित्यज्य वेदं विज्ञातश्च द्विजः । सम्बत्सरं यवाहारस्तत्प्रापमपसेधति । १८८ । श्वश्रुगालखरैर्दष्टो
ग्रास्यैः क्रव्याद्विरैव च । नराश्वोद्वराहैश्च प्राणायामेन शुध्यति । १८९ । पष्ठान्नकालता मांसं संहिताजप एव वा । होमाश्च
शाकला नित्यमपांक्त्यानाम्विशोधनम् । २०० । उप्रयानं समारुह्य खरयानन्तु कामतः । स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन
शुध्यति । २०१ । विनाद्विरप्सु वाप्यार्तः शारीरं सन्निवेश्य च । सचेलो वहिराश्रुत्य गामान्त्रभ्य विशुध्यति । २०२ । वेदादिदानां
नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् । २०३ । हंकारं ब्राह्मणस्योक्ता त्वंकारं च गरीयसः ।
स्नात्वा नश्नन्नहः श्रेयमभिवाद्य प्रसादयेत् । २०४ । ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वा बध्यवासमा । विवादे वा विनिर्जित्य प्रणि-
पत्य प्रसादयेत् । २०५ । अवगूर्यं त्वद्भक्षतं सहस्रमभिहत्य च । जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकम्पूतिपद्यते । २०६ । शोणितं
यावतः पांशुन्संगृह्णाति महीतले । तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् । २०७ । अवगूर्यं चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रमपि पातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् । २०८ । अनुक्तनिष्कृतीनान्तु पापानामपनुत्तये । शक्तिश्चावेक्ष्य पापञ्च प्राय-

जल के बिठा और मृत्र का त्याग करे अथवा जल ही में उस कर्म को करे तो गाम से बाहर जाके नदी आदि में बस सहित स्नान करके गंगा का कृके गड़बड़ होता है । २०९ । वेद में कथित नित्य कर्म को न करने में और ब्रह्मचर्य व्रत के लोप में एक दिन उपवास करना । २०३ । ब्राह्मण को हं गेमा कहके और बंद लोगों को तुम ऐसा कहके स्नान और उन्हों को प्रसन्न करके प्रणाम करके एक दिन उपवास करे । २०४ । ब्राह्मण को हण से भी ताड़न करके और विवाद में जोतके बन्ध से कंठ को बांधिके प्रणाम करके प्रसन्न करे । २०५ । ब्राह्मण को बध के लिये शस्त्र को उठावे और मारने न तो भी सौ वर्ष तक नरक में रहता है और बध करके हजार वर्ष तक नरक में रहता है । २०६ । मारने से ब्राह्मण के शरीर से रुधिर पृथिवी की जितनी धूलि के रज को पकड़ता है तितने हजार वर्ष तक मारने वाला नरक में बाध करता है । २०७ । ब्राह्मण को मारने के लिये शस्त्र उठाके कृच्छ्र व्रत करे मरने में अति कृच्छ्र व्रत करे और रुधिर निकारने में कृच्छ्र अति कृच्छ्र दोनों

करे । २०८ । जिस पाप का प्रायश्चित्त नहीं कहा है उस पाप को दूर करने के लिये उस की शक्ति और पाप दोनों को देखके प्रायश्चित्त का करण करना । २०९ । जिन उपायों से पाप को मनुष्य दूर करते हैं और उच्च उपायों को देव ऋषि पितरों ने कहा उन उपायों को हम कहेंगे । २१० । प्राजापत्य व्रत करत संते तीन दिन प्रातः काल में तीन दिन सायंकाल में भोजन करे तीन दिन बिना मांगे जो मिले उस को भोजन करे अंत में तीन दिन उपवास करे घास की संख्या और परिमाण को कहते हैं ऋषीस घास प्रातः काल बत्तीस घास सायंकाल बिना मांगे में चौबीस घास मुरगा को अंडा प्रमाण अथवा जितना मुख में जासके हविष्यान्न भोजन करना और बस्तु को भोजन न करना । २११ । गौ का मूत गोबर दूध दही घी क्षुद्र सहित जल इन सब को एकत्र करके एक दिन पीवे और दूसरे दिन उपवास करे यह सान्त्वन छच्छ कहता है और जब पूर्व कथित ऋषीस बस्तु को एक एक दिन में एक एक बस्तु को भोजन करे और सातवें दिन उपवास करे तब महा सांतवन छच्छ कहता है । २१२ । अति छच्छ व्रत करत संते एक दिन प्रातः काल में एक घास और एक दिन सायंकाल में एक घास और एक दिन बिना मांगे से मिलने में एक घास उस को भोजन करे और तीन दिन उपवास करे । २१३ । तत्र छच्छ व्रत करत संते निश्चित होके स्नान

श्चित्तम्प्रकल्पयेत् । २०८ । यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति । तान्बोभ्युपायान्ब्रूयामि देवर्षिपितृसेवितान् । २१० । अहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्याद्याचितम् । त्र्यहमपरञ्च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्दिजः । २११ । गोमूत्रज्जोमयं क्षीरन्दधिसर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च छच्छं सान्त्वनं स्मृतम् । २१२ । एकैकं घ्रासमश्नीयात् त्र्यहर्णि चोषि पूर्ववत् । त्र्यहसोपवसे-दन्त्यमतिछच्छं चरन्दिजः । २१३ । तप्तछच्छश्चरन्दिजो जलक्षीरघृतानिलान् । प्रतित्र्यहमप्येदुष्णान्सहस्राणी समाहितः । २१४ । यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् । पराको नाम छच्छोयं सर्वपापापनोदनः । २१५ । एकैकं ज्ञासयेत्पिण्डं क्षणे शुल्के च वर्धयेत् । उपस्पृशं स्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् । २१६ । एवमेव विधिं क्षस्त्रमाचरेद्यवमध्यमे । शुल्कपक्षादिनि-यतश्चरंश्चान्द्रायणव्रतम् । २१७ । अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते । नियतात्मा हविष्याशी यतिश्चान्द्रायणश्चरन् ।

करके गरम जल दूध घी वायु इन चारों में से एक एक को एक बेर तीन तीन दिन पीवे संख्या और परिमाण को कहते हैं ऋः गंडा भर जल तीन गंडा भर दूध एक गंडा भर घी । २१४ । चित्त मावधान करके इंद्रियों को अपने वश करके बारह दिन तक उपवास करे यह व्रत सभ पाप को दूर करने वाला है । २१५ । तीनों काल में (अर्थात् प्रातः सायं मध्याह्न में) स्नान करत संते एक एक घास को हृणपक्ष में घटावे और शुक्ल पक्ष में बड़ावे (अर्थात् शुक्ल पक्ष) को पूर्ण मासी को पंद्रह घास भोजन करे और हृणपक्ष के परिवा में चौदह घास इसी प्रकार से एक एक घास को घटाते ऊँच अमावास्या में उपवास होगा फेर शुक्ल पक्ष के परिवा से एक एक घास को बढ़ाते ऊँच पूर्णमासी को पंद्रह घास होगा यह पिपीलिका मध्य चान्द्रायण कहाता है पिपीलिका (अर्थात् चिंटी) जैसे आगे पीछे मोटी रहती है मध्य में पतली रहती है तैसे यह व्रत है । २१६ । इसी को शुक्ल पक्ष से प्रारंभ करे तो यह मध्य चान्द्रायण कहाता है जैसे यह मध्य में मोटा रहता है आदि अंत में पतला रहता है । २१७ । यति चान्द्रायण करत संते इंद्रियों को वश किए ऊँच हविष्य का आठ घास को मध्याह्न समय में एक मास तक भोजन करे जिस पक्ष से चाहे उस पक्ष से प्रारंभ करे । २१८ । शिशु चान्द्रायण करत संते निश्चित होकर प्रातःकाल में चार घास और रात्रि में चार घास

भोजन करे । २१८ । किसी प्रकार से निश्चित होकर एक मास में हविष्य का २४० घाम को भोजन करे तो चंद्र लोक में जावे । २१९ । संपूर्ण पाप को नाश के लिये रुद्र आदित्य वसु वायु षडेष्टि लोग इन सभों ने इस व्रत को किया । २२० । आप प्रति दिन महा व्याहृति में होम करे अहिंसा मत्स्य अक्रोध कोमलता इन सभ को ग्रहण करे । २२१ । रात्रि में और दिन में बख्ख सचित खान करे यह खान कथित चांद्रायण को छोड़कर (अर्थात् यव मध्य पिपीलिका मध्य को छोड़कर) दूसरे चांद्रायण में जानना क्योंकि उन दोनों में तो त्रिकाल खान लिखा है और स्त्री शूद्र पतित इन्हों से भाषण व्रत करने वाला न करे । २२२ । रात्रि में और दिन में खड़ा रहे अथवा बैठा रहे शयन न करे सामर्थ्य न हो तो भूमि में शयन करे ब्रह्मचारी रहे (अर्थात् स्त्री से संभोग न करे) मूत्र की मेखला और पलाश का दंडा इन दोनों से युक्त रहे गुरु देवता ब्राह्मण इन्हों का पूजन करे । २२३ । गायत्री और पवित्र मंत्र इन्हों का यथा शक्ति जप करे यह बात सभ व्रत में जानना । २२४ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये सभ इन व्रतों करके किए हुए पाप को दूर करे और जो पाप प्रकाशित नहीं

२१८ । चतुरः प्रातरश्रियात्पिण्डान्विप्रः समाहितः । चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचांद्रायणं स्मृतम् । २१९ । यथा कथाञ्चित्पिण्डानान्तिस्तीक्ष्णीतिः समाहितः । मासेनाश्रन्विष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् । २२० । एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम् । सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः । २२१ । महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम् । अहिंसा सत्यमक्रोधमार्जवञ्च समाचरेत् । २२२ । चिरहस्त्रिर्निशायाञ्च सवासा जलमाविशेत् । स्त्रीशूद्रपतिताश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् । २२३ । स्थानासनाभ्याम्बिहरेदशक्तोऽथः शयीत वा । ब्रह्मचारी व्रतो च स्याद्गुरुदेषद्विजार्चकः । २२४ । सावित्रीञ्च जपेन्नित्यमपि चाणि च शक्तितः । सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवम्प्रायश्चित्तार्थमाहृतः । २२५ । एतैर्द्विजातयश्शोध्या व्रतैराविष्कृतैर्नसः । अनाविष्कृतपापांस्तु मंचैर्हीमैश्च शोधयेत् । २२६ । ख्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनेन च । पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि । २२७ । यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते । तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते । २२८ । यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतकर्म गर्हति । तथा तथा शरीरन्तस्तेनाधर्मेण मुच्यते । २२९ । कृत्वा पापं हि सन्तप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते । नैवङ्कुर्याम्पुनरिति निवृत्त्या

हे (अर्थात् गुप्त है) उस को मंत्र और होम करके दूर करे इस म्यान में ऐसी आशंका होती है कि परिपत् (अर्थात् धर्म शास्त्रियों की रक्षा) को निर्वंदन करेगे तब वह मंत्र और होम का उपदेश करेंगे तब तो प्रकाशित पाप ऊँचा अप्रकाशित पाप कैसे होगा तो इस का समाधान यह है कि दृष्टि के बहाने में पढ़ें तब अपना पाप अप्रकाशित भया । २२६ । कहना पढ़ताना तपस्या करना बेद पढ़ना इन्हों करके पाप करने वाला पाप से छूटता है और आपत्काल में दान करके पाप से छूटता है परंतु जो पाप प्रकाशित ऊँचा है उस को कहना अप्रकाशित पाप को न कहना एक प्राजापत्य व्रत स्थान में एक धेनु देना एक मास में अष्टाई धेनु भई बारह वर्ष में ३६० धेनु होती हैं । २२७ । जैसे केचुरि से सर्प छूटता है तैसे प्रकाशित पाप को जैसे जैसे कहता है तैसे तैसे मनुष्य पाप से छूटता है । २२८ । पाप करने वाले मनुष्य का मन जैसे जैसे दुष्ट कर्म की निंदा करता है तैसे तैसे उस अधर्म से उस की शरीर छूटती है । २२९ । पाप करके मंताप करे तो उस पाप से छूटता है मैं फेर ऐसा न कहूंगा ऐसी निवृत्ति करके वह पापी पवित्र होता है । २३० । इस प्रकार करके मन से परलोक में कर्म फलादय को

मन बाणो शरीर में मिल्य हो शुभ कर्म को करे । २३१ । अज्ञान में अथवा ज्ञान में निर्दित कर्म को करके उस कर्म में छूटने की इच्छा करत संत दूसर निर्दित कर्म को न करे और दूसर निर्दित कर्म को करे तो दूना प्रायश्चित्त करे । २३२ । जिस प्रायश्चित्त करने में पापी के मन को संतोष न हो तो उस प्रायश्चित्त को फेर करे जब तक मन को संतोष न हो तब तक करता रहे । २३३ । देवता और मनुष्य इन्हीं के मुख का मूल मध्य अंत तपे है यह बात वेद के देखने वाले ने कहा । २३४ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हीं का क्रम में ज्ञान रक्षा वार्ता (अर्थात् खेती करना आदि) सेवा तपे है । २३५ । इंद्रियों को जीते ज्ञेय और फल मूल बायु इन्हीं में से कोई एक को भोजन करते ज्ञेय ऋषि लोग चर अचर तीनों लोक को तप ही में देखते हैं । २३६ । औषध अरोग विद्या (अर्थात् ब्रह्म कर्म रूप वेदार्थ ज्ञान और वेद पठन) नाना प्रकार की स्वर्ग में स्थिति ये सब तपे करके सिद्ध होते हैं । २३७ । जो बन्ध दुःख में तरने योग्य

पूयते तु सः । २३८ । एवं सच्चित्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम् । मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभकर्म समाचरेत् । २३९ । अज्ञाना-
द्यदि वाज्ञानात्कृत्वा कर्मविगर्हितम् । तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयन् समाचरेत् । २४० । यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः
स्यादन्नाघवम् । तस्मिन्तावतपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरम्भवेत् । २४१ । तपोमूलमिदं सर्वं देवमानुषकं सुखम् । तपोमध्यं बुधैः
प्रोक्तं तपोन्तं वेददर्शिभिः । २४२ । ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् । वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ।
२४३ । ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिस्त्राशनाः । तपसैव प्रपश्यन्ति चैलोक्यं सचराचरम् । २४४ । औपधान्यगदो विद्या-
दैवी च विविधा स्थितिः । तपसैव प्रसिद्ध्यति तपस्तेषां हि साधनम् । २४५ । यदुस्तरं यदुरापं यदुर्गा यच्च दुष्करम् । सर्वं तु
तपसा साध्यन्तपो हि दुरतिक्रमम् । २४६ । महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः । तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किंस्विपाततः ।
२४७ । कोटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च । स्थावराणि च भूतानि दिवं यांति तपोवलात् । २४८ । यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति
मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः । तत्सर्वं निर्दहत्याशु तपसैव तपोधनाः । २४९ । तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः । इज्याश्च
प्रतिगृह्णन्ति कामान्सम्वर्जयन्ति च । २५० । प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवास्तुजन्मभूः । तथैव वेदान्दपयस्तपसा प्रतिपेदिरे ।
२५१ । इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यम्पूजयन्ते । सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम् । २५२ । वेदाभ्यासेनैव शतशो महा-

मिलने योग्य कर्म योग्य जानने योग्य है सो तप में होने सकता है जो न होसके उस को होने में तप ही समर्थ है तप का उल्लंघन बड़ा कठिन है । २३८ । महा-
पातकी आदि लोके जितने पाप करने वाले हैं ये सब तप में गुड्ड होते हैं । २३९ । बड़े बड़े सप पतंग (अर्थात् मलभू) पशु पक्षी अचर (अर्थात्
जो चल न सकें) जो व ये सब तप के बल में स्वर्ग में जाते हैं । २४० । मन बाणी शरीर में जो कुछ पाप करते हैं सो सब तप ही में नष्ट होता है । २४१ ।
यज्ञ में तप में गुड्ड ब्राह्मण का दिया ज्ञेय इविय को देवता ग्रहण करते हैं और उन्हीं के ईच्छित बन्धु की वढ़ाते हैं । २४२ । प्रजा पति (अर्थात् हिरण्य गर्भ) ने
इस शास्त्र को तप ही में उपपन्न किया और ऋषियों ने तप ही से इस को पाया । २४३ । तप ही में संपूर्ण अंतु को दुर्लभ जन्म होता है इस बात को देखते ज्ञेय देवता
लोग सब का मूल तप की जानकर तप की माहात्म्य कहते हैं । २४४ । महा यज्ञ की और यथाशक्ति वेदाभ्यास को करने वाले महा पातक को भी जलदी

नाश करते हैं । २४५ । जिस प्रकार से तेज से बनी ऊई अग्नि काठ को झट पट दहन करती है तिसी प्रकार से बंद को जानने वाला ज्ञान रुधी अग्नि से संपूर्ण पाप को दहन करता है । २४६ । प्रकाशित पापों का यह प्रायश्चित्त कहा इस को अनंतर अप्रकाशित पाप के प्रायश्चित्त को जाना । २४७ । अकार और मात व्याप्ति इन्हीं में युक्त गायत्री उत्सो मालह प्राणायाम प्रतिदिन एक मास तक करे तो गर्भ मारने के पाप को दूर करता है यह प्रायश्चित्त ब्राह्मण त्रिविध वैश्य इन्हीं को है स्त्री और शूद्र इन्हीं को मंत्र में अधिकार नहीं है । २४८ । कौत्स ऋषि ने देखा जो रुक्त अयनः शोणुचदधं यह और वशिष्ठ ऋषि ने देखा जो मृक्त प्रतिस्तोमेभिरुषमं कशिष्ठाया यह माहित्ररुक्त महिचीणामधोस्तु यह शुद्धवत्य एता निद्रांसाहाम यह तीन ऋचा इन्हीं को प्रतिदिन एक मास तक मोलह बेर जप करे तो मरापान करने वाला शुद्ध होता है । २४९ । एक बेर प्रतिदिन एक मास तक अस्य वामोयमस्य वामस्य पतितस्य इस को और शिव संकल्प (अर्थात् यज्ञायता दूरं यह वाज मन्यो शाखामं पठित मंत्र) को जप करे तो ब्राह्मण का मोना चोराने वाला शुद्ध होता है । २५० । हविष्यंतमजरं स्वर्दिदां यह

यज्ञक्रियाक्षमा । नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजन्यपि । २४५ । यथैधस्तेजसा वन्तिः प्राप्तन्निर्दहति क्षणात् । तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वन्दहति वेदवित् । २४६ । इत्येतदेनना मुक्तम्प्रायश्चित्तं यथाविधि । अत ऊर्ध्वं रहस्यानाम्प्रायश्चित्तनिबोधत । २४७ । स व्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु पोदृश । अपि भ्रणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः । २४८ । कौत्सं जप्त्वाप इत्येतदाशिष्ठश्च प्रतीत्यृचम् । माहित्रं शुद्धवत्यथ सुरापोपि विगृह्यति । २४९ । मज्जन्नास्य वामीयं शिवसंकल्पमेव च । अपहृत्य सुवर्णन्तु क्षणाद्भवति निर्मलः । २५० । हविष्यन्तीयमभ्यस्य न तं मह इतीति च । जपित्वा पौरुषं सृक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः । २५१ । एनसां स्थू नस्तृष्णाणां चिकीर्षन्नपनोदनम । अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किञ्चिदमितीति वा । २५२ । प्रतिगृह्या प्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नम्विगर्हितम् । जपस्तरत्समन्दीयम्पृयते मानवस्त्वह्नात् । २५३ । सोमार्गौद्रन्तु वहेनामासमभ्यस्य शुध्यति । खवन्त्यामाचरन्स्नानमर्थ्यम्णमिति च न्यृचम् । २५४ । अब्दार्द्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकञ्जपेत् । अप्रणस्तन्तु वृत्वाप्सु मासमासीत् भैष्टभुक । २५५ । मंत्रैश्शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः । सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् । २५६ । महापातकसंयुक्तोऽनु-

उन्नीम ऋचा और नतमंहो दुरितं यह आठ ऋचा महस्वगीर्षा यह मोलह ऋचा इन्हीं को मोलह बेर प्रतिदिन एक मास तक जप करे तो मादगमन के पाप में कूटता है । २५१ । अवति हन्तावरुणयोः यह ऋचा यत्किञ्चिदं वरुण देवोजल यह ऋचा इन्हीं को एक बेर एक वर्ष तक जप करे तो कौटं बहं पाप को (अर्थात् महा पातक उपपातक आदि को) नाश करता है । २५२ । नहीं ग्रहण करने योग्य वस्तु को ग्रहण करके और निर्दिष्ट अन्न को भोजन करके तत्कमं दिवं यह चार ऋचा को तीन दिन जप करे । २५३ । सोम रुद्रा धारयं ग्राम स्वयम् यह चार ऋचा अर्थ्यम्णं वरुण मित्रश्च यह तीन ऋचा इन्हीं में से एक एक को एक बेर एक मास तक नदी में स्नान करके जप करे तो बहृत पापों में कूटता है । २५४ । इन्द्रमिन्द्र वरुणमग्नित्रयः यह मात ऋचा को छ मास तक जप करे तो रुभ पाप में कूटता है जल में मूत्र बिष्टा आदि को करने वाला एक मास तक भित्ता मांग के भोजन करे । २५५ । देव हतस्य इन आदि शाकल होममंत्र में एक वर्ष तक धी का होम करे अथवा नमः इन्द्राय इस ऋचा करके एक वर्ष तक जप करे तो महापातक को ब्राह्मण त्रिविध वैश्य नाश करते हैं । २५६ ।

ब्रह्म इत्यादि महा पातक में से कोई एक पाप से युक्त हो तो निश्चित होकर गौ के पीछे गमन करे और भिक्षा मांग के भोजन करे इन्द्रियों को जीते हुए एक वर्ष तक प्रति दिन पावमानो ऋचा को अप करे तो शुद्ध होता है । २५७ । वन में निश्चित होकर वेद संहिता को तीन बेर अभ्यास करे और तीन बेर पराक व्रत करे तो सब पाप से छूटता है । २५८ । इन्द्रियों को जीते हुए प्रति दिन प्रातः मायं मध्याह्न काल में स्नान करत सते जल में तीन बेर ऋतंश्रु सत्यं यज्ञं अघमर्षणं सृक्त को अप करके सब पाप से छूटता है । २५९ । जिस प्रकार से सब यज्ञों का राजा अश्वमेध यज्ञ सब पाप को दूर करता है तिसी प्रकार से अघमर्षण सृक्त सब पाप को दूर करता है । २६० । तीनों लोक को दहन करके और जहाँ तहाँ भोजन करके ऋग्वेद को धारण करे तो कोई पाप को नहीं पाता है । २६१ । निश्चित होकर ऋग्वेद यजुर्वेद साम वेद की संहिता में से कोई एक संहिता को तीन बेर अभ्यास करके सब पाप से छूटता है । २६२ । जिस प्रकार से अग्नाध

गच्छेत्ताः समाहितः । अभ्यस्याब्दम्यावमानीर्भेक्षाहारो विशुद्धाति । २५७ । अरण्ये वा चिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् । मुच्यते पातकैस्सर्वैः पराकैश्शोधितस्त्रिभिः । २५८ । अहन्तृपवसेद्युक्तस्त्रिरन्तोभ्युपयन्त्रपः । मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाघमर्षणम् । २५९ । यथाश्वमेधः क्रतुराट सर्वपापापनोदनः । तथाघमर्षणं ब्रह्मं सर्वपापापनोदनम् । २६० । इत्या लोकां पीमांस्त्रिभिरभ्यस्य यतस्ततः । ऋग्वेदधारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किञ्चन । २६१ । ऋक्संहितां चिरभ्यस्य यजुषाम्वा समाहितः । साम्नाम्वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते । २६२ । यथा महाह्रदम्याय शिप्रं लोपस्मिन्शयति । तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे चिह्ति मज्जति । २६३ । ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च । एष ज्ञेयस्त्रिवेदे यो वेदैर्न स वेदवित् । २६४ । आद्यं यत्तन्मन्त्रस्त्रिधा त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता । स गुह्यान्वस्त्रिवेदे यस्तस्मै स वेदवित् । २६५ ॥ * ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे मृगुप्रोक्तायां संहितायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ । कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तत्त्वतः पराम् । १ । सतानुवाच धर्मात्मा महर्षिर्मानवो मृगुः । अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् । २ । शुभाशुभफलकर्म मनोवाग्देहसम्भवम् । कर्मजागतयोर्भूणामुत्तमाधममध्यमाः । ३ । तस्येह त्रिविधस्यापि अधिष्ठानस्य देहिनः ।

जल में माटी का टेलो डालो तो जलटो नष्ट होता है तिसी प्रकार से सब पाप तीनों वेद के पाठ में दूबता है । २६३ । इस बात को जो जानें सो वेद जानने वाला कहाता है । २६४ ॥ * ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कृष्णक भट्ट व्याख्या अनुमार्गिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कल्पनी संस्कृत पाठशालीय गुलजार शर्मा पण्डित कृतायामेकादशोऽध्यायः * ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ सब ऋषि में लोग मृगु ऋषि कहते हैं कि हे पाप रहित मृगु ऋषि आप ने बिधि पूर्वक चारों वर्ण के धर्म का कहा अब हम सबों के शुभाशुभ कर्मफलों का बिधि पूर्वक कहिए । १ । धर्मात्मा मनु के पुत्र मृगु ऋषि उन महर्षियों से बोले कि हे ऋषि लोग संपूर्ण कर्म योग के निर्णय को हम से सुनिए । २ । मन देह बाणी से उत्पन्न शुभाशुभ वाला जो कर्म है उसी उत्पन्न मनुष्यों की गति उत्तम मध्यम अधम होती है । ३ । आगे जो दश लक्षण कहेंगे उससे युक्त देह धारण करने वाला पुरुष कामन देह बाणी से उत्पन्न उत्तम मध्यम अधम कर्म में प्रवृत्ति

करने वाला मन को जाने । ४ । पर द्रव्य में ध्यान मन से अनिष्ट चिन्तन नास्तिकपना यह तीन प्रकार के मानस (अर्थात् मन से उत्पन्न) कर्म हैं । ५ । अप्रिय कथन असत्य भाषण पर दोष कथन प्रयोजन रहित बोलना यह चार प्रकार का वाचिक (अर्थात् बाणी से उत्पन्न) कर्म है । ६ । बिना दिई वस्तु का ग्रहण करना बिना विधि के जीव मारना पर स्त्री के साथ रति करना यह तीन प्रकार का शरीर (अर्थात् शरीर से उत्पन्न) कर्म है । ७ । शरीर से उत्पन्न शुभाशुभ कर्म के फल को क्रम से मन बाणी शरीर से देही पुरुष भोग करता है । ८ । शरीर बाणी मन से उत्पन्न कर्म करके क्रम से स्थावर (अर्थात् जो चल न सके) पक्षी और पशु अंत्य जाति (अर्थात् चाण्डाल आदि) इन्हीं के भाव को प्राप्त होता है । ९ । जिसका बाणी मन शरीर ये सब क्रम से निषिद्ध कथन असत्यकल्प निषिद्ध व्यापार इन्हीं को त्याग किए हैं वही चिदण्डी कहाता है क्योंकि दमन से दंड कहाता है तीन में तीनों वस्तु का दमन किया इस लिये वह चिदण्डी

दशलक्षणयुक्तस्य मनोविद्यात्प्रवर्तकम् । ४ । परद्रव्येष्वभिधानमनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधकर्म मानसम् । ५ । पारुष्यमनृतञ्चैव पैशून्यञ्चापि सर्वशः । असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् । ६ । अदत्तानामुपादानं हिंसाचैवाविधानतः । परदारोपसेवा च शरीरन्त्रिविधं स्मृतम् । ७ । मानसमनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् । वाचा वाचाकृतकर्मकायेनैव च कायिकम् । ८ । शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतान्तरः । वाचिकैः पश्चिन्मृगतां मानसैरन्यजातिताम् । ९ । वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च । यस्यैते निहिताबुद्धौ चिदण्डीति स उच्यते । १० । चिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः । कामक्रोधौ तु संयम्य ततस्मिद्धिन्वियच्छति । ११ । यो स्यात्मनः कारयिता तं श्लेचजम्पृच्छते । यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते वृधैः । १२ । जीवमंशोतरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् । येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखञ्च जन्मसु । १३ । तावमौ भूतसम्पृक्तौ महान् श्लेचश्च एव च । उच्चावचेषु भूतेषु स्थितन्तम्व्याप्य तिष्ठतः । १४ । असंख्या मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः । उच्चावचानि भूतानि सततञ्चेष्टयन्ति याः । १५ । पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनानृणाम् । शरीरं यातनार्थी

है । १० । संपूर्ण जीवों में इन तीनों दंड को (अर्थात् मनो दंड काय दंड बाणी दंड को) स्थापन करके काम क्रोध को रोकके सिद्धि को पाता है । ११ । शरीर को कर्म में प्रवृत्ति कराने वाला श्लेचज्ञ कहाता है और जो कर्म करता है सो भूतात्मा (अर्थात् शरीर) कहाता है यह बात पण्डित लोग कहते हैं । १२ । सर्व देह वालों के साथ उत्पन्न अंतर्गात्मा जीव नाम वाला जिम को महत् कहते हैं सो भिन्न है जिसे जन्म में संपूर्ण सुख दुःख को श्लेचज्ञ अनुभव करता है (अर्थात् सुख दुःख को भोग करता है) । १३ । महत्तत्त्व और श्लेचज्ञ ये दोनों पृथिवी आदि पंच महाभूतों करके ऊंच नीच योनि में परमात्मा का पकड़ के रहते हैं । १४ । परमात्मा के शरीर से ऊंच नीच योनि में स्थित देह को सदा कर्म में प्रेरण करने वाले असंख्य मूर्ति (अर्थात् जीव) निकलते हैं । १५ । परलोक में पापियों के दुःख भोग करने के लिये पृथिवी आदि पांच भूतों के भाग (अर्थात् अंग) में एक दूसरी भुव शरीर (अर्थात् लिङ्ग शरीर) उत्पन्न होता है

। १६ । उस शरीर से यम की यातना (अर्थात् तीव्र वेदना) को अनुभव करके (अर्थात् दुःख भोग करके) वह शरीर जिसे उत्पन्न हुई है उसी में लीन हो जाती है (अर्थात् पृथिवी आदि पांच भूतों से निकल रहे जो अन्न से पांचो भूतों में मिल जाते हैं । १७ । लिङ्ग शरीर में स्थित जीव विषय संग से उत्पन्न पाप को भोग करके निष्पाप होके बड़े पराक्रम वाले महान् और परमात्मा इन दोनों की आश्रय करता है । १८ । आलस्य रहित महान् और परमात्मा ये दोनों साथ होकर जिस धर्म और अधर्म से युक्त जीव इस लोक में और परलोक में सुख और दुःख को पाता है उस धर्म को और भोग से बचे हुए पाप को विचारते हैं । १९ । जब जीव बहुत धर्म को करता है और थोड़ा पाप को करता है तब परलोक में सुख को पाता है । २० । और जब बहुत पाप को करता है और थोड़ा धर्म को करता है तब परलोक में दुःख को पाता है । २१ । यम की यातना को भोगकर पाप से रहित होकर फेर जहाँ से उत्पन्न है लिङ्ग शरीर तिस में

यमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् । १६ । तेनानुभूयता यामीः शरीरेणेह यातनाः । तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः । १७ । सोऽनुभूयासुखोदकान्दोषान्विषयसङ्गजान् । व्यपेतकल्मषोभ्येति तावेवोभौ मद्भौजसौ । १८ । तौ धर्ममपश्यतस्तस्य पापञ्चातन्द्रितौ सह । याभ्याम्प्राप्नोति सम्पृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् । १९ । यद्याचरति धर्मं स प्रायशो धर्ममल्पशः । तैरेवचाहृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्रुते । २० । यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः । तैर्भूतैस्सपरित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः । २१ । यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः । तान्येव पञ्चभूतानि पुनरभ्येति भागशः । २२ । एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा । धर्मतो धर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः । २३ । सत्त्वरजस्तमयैव चीन्विद्यादात्मनो गुणान् । यैर्व्याप्येमा निस्थितोभावाम्महन्सर्वानशेषतः । २४ । यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते । स तदा तद्गुणप्रायन्तङ्करोति शरीरिणम् । २५ । सत्त्वं ज्ञानन्तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् । एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितम्बुधुः । २६ । तच्च यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् । प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वंतदुपधारयेत् । २७ । यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः । तद्रजोऽप्रतिधं विद्यात्सततं हारिदेहिनाम् । २८ । यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् । २९ ।

फेर विभाग से प्रवेश करता है । २२ । अपने चेत से इस जीव की यह गति देखके सर्व काल धर्म में मन का योग करे । २३ । सत्त्व रज तम यह तीनों आत्मा जो महत्तत्त्व उस के गुण हैं जिन गुणों से व्याप्त होके सब वस्तु में महान् स्थित है । २४ । तीनों गुणों में से जो गुण अधिक जिस शरीर में है उस शरीर को तद्गुण प्राय (अर्थात् बहुत उस गुण वाला) वह गुण करता है । २५ । सत्त्व ज्ञान है तम अज्ञान है रज (अर्थात् इष्ट वस्तु में अभिलाषा) द्वेष (अर्थात् अनिष्ट वस्तु में रोष) ये दोनों रज हैं इन तीनों गुणों से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । २६ । जब आत्मा को प्रीति संयुक्त प्रशान्त शुद्ध स्वरूप देखे तब सत्त्व गुण को जानै । २७ । जब आत्मा को दुःख संयुक्त अप्रमत्त देखे तब रजो गुण को जानै वह रजो गुण सर्व शरीर वाले को दुर्निवार है । २८ । जब आत्मा को मोह बंधुक्त विषय स्वरूप अप्रकट देखे तब तमो गुण को जानै वह तमो गुण तर्क के योग्य नहीं है और जानने के योग्य नहीं है । २९ । इन तीनों गुणों का जो फलोदय श्रेष्ठ मध्यम

नीच है उस सब को हम कहेंगे । ३० । वेदाभ्यास तप ज्ञान पवित्रता इन्द्रियों का जीतना धर्म क्रिया आत्म चिन्ता ये सब सत्व गुण के लक्षण हैं । ३१ । ब्रह्म के आरंभ में हवि अधीरता असत्कार्य ग्रहण सदा विषय सेवा ये सब रजो गुण के लक्षण हैं । ३२ । लोभ स्वप्न अधीरता कठोरता नास्तिकपना अनाचार मांगना अनवधानता ये सब तमो गुण के लक्षण हैं । ३३ । भूत भविष्य वर्तमान यह तीनों काल में रहने वाले तीनों गुणों का संक्षेप करके क्रम से गुण लक्ष यह जानने योग्य है । ३४ । जो कर्म करके और करत संते और करने की इच्छा करत संते लज्जा को प्राप्त पुरुष हो उस कर्म को तामस गुण लक्षण पण्डित लो जानें । ३५ । इस लोक में जिस कर्म करके बड़ी प्रसिद्धता होने की इच्छा करता है और असम्पत्ति में शोक नहीं करता है उस कर्म को राजस गुण लक्ष जानें । ३६ । जो कम वेदार्थ को सर्वात्म्य करके जानने की इच्छा करता है और जिस कर्म को करत संते लज्जा नहीं होती और जिस कर्म करके पुरुष व

चयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः । अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः । ३० । वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकङ्गुणलक्षणम् । ३१ । आरम्भरुचिताधैर्यमसत्कारपरिग्रहः । विषयोपसेवा चाजसं राजसं गुणलक्षणम् । ३२ । लोभः स्वप्नो धृतिः क्रौर्येन्नास्तिक्यमिन्नवृत्तिता । याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् । ३३ । चयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् । इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् । ३४ । यत्कर्म कृत्वा कुर्वन् करिष्यन्थैव लज्जति । तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसङ्गुणलक्षणम् । ३५ । येनास्मिन्कर्मणा लोके स्थातिमिच्छति पुष्कलाम् । न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् । ३६ । यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् । येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्वगुणलक्षणम् । ३७ । तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते । सत्वस्य लक्षणमर्थः श्रेष्ठमेषां यथोत्तरम् । ३८ । येन यांस्तु गुणैर्षां संसारान्प्रतिपद्यते । तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् । ३९ । देवत्वं सात्विका यांति मनुष्यत्वञ्च राजसाः । तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः । ४० । त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः । अधमा मध्यमाग्रा च कर्म विद्या विशेषतः । ४१ । स्थावराः रुमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः । पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः । ४२ । हस्तिनश्च तुरंगाश्च शूद्रा स्लेष्ठाश्च गहिताः । सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः । ४३ । चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषात्मा मनुष्ये जातिः । ४४ । तमो गुण का लक्षण काम है रजो गुण का लक्षण अर्थ है सत्व गुण का लक्षण धर्म है इन में उत्तर उत्तर श्रेष्ठ है । ३८ । जिस गुण करके जिस गति को जीव पाता है उन संपूर्ण जगत के गति को संक्षेप से मैं कहूंगा । ३९ । सत्व गुण वाले देव भाव व रजो गुण वाले मनुष्य भाव को तमो गुण वाले तिर्यग भाव (अर्थात् तिरह्वा चलने वाले के भाव) को प्राप्त होते हैं यह तीन प्रकार की गति हैं । ४० । सत्व आ तीनों गुण करके तीन प्रकार की गति जो कहा सो देश काल आदि भेद करके संसार का कारण कर्म भेद से अधम मध्यम उत्तम भेद करके फेर तीन प्रकार की गति जानना । ४१ । छल और छोटे बड़े कीड़े मकली सर्प कछुआ पशु मृग इन सब गति को तमो गुण की नीच गति जानना । ४२ । हाथी घोड़ा गृ सिंह व्याघ्र खर इन सब गति को तमो गुण की मध्यम गति जानना । ४३ । गट पक्षी कपट से धर्म करने वाले पुरुष राजस पिशाच इन गति को तमो

गुण की उत्तम गति जानना । ४४ । ब्राह्म्य ऋषिय से सबर्णा भार्या में उत्पन्न जो दण्ड (अर्थात् लाठी से प्रहार करने वाले) मल (अर्थात् बाइ से युद्ध करने वाले) नट (अर्थात् रङ्गावतारक रंग कहे सभा उस का अवतारक कहे बनाने वाला) शस्त्र से जीने वाले जूआ खेलने वाले मदिरा पीने वाले पुरुष इन सभ गति को रजो गुण की नीच गति जानना । ४५ । राजा ऋषिय राजा का पुरोहित शास्त्रार्थ प्रिय कलह प्रिय पुरुष इन सभ गति को रजो गुण की मध्यम गति जानना । ४६ । गंधर्व गुह्यक यक्ष देवता के अनुचर (अर्थात् देवता के पीछे चलने वाले विद्याधर आदि) अप्सरा इन सभ गति को रजो गुण की उत्तम गति जानना । ४७ । तपस्वी यतो ब्राह्मण वैमानिक गुण (अर्थात् अप्सरा को छोड़कर पुष्पक विमान पर चढ़कर चलने वाले) नक्षत्र दैत्य इन सभ गति को मल गुण की नीच गति जानना । ४८ । यज्ञ करने वाले ऋषि देवता वेद ध्रुव आदि ज्योतिर्गण बत्सर पिहगण साध्यगण इन सभ गति को मल गुण की मध्यम गति जानना । ४९ । ब्रह्मा और संसार के उत्पन्न करने वाले सभ प्रजा पति धर्म महत्तल माया इन सभ गति को

पाथैव दांभिकाः । रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीपूतमा गतिः । ४४ । भस्मा मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः । शूतपान-प्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः । ४५ । राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः । वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः । ४६ । गंधर्वा गुह्यका यक्षा विवुधानुचराश्च ये । तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीपूतमा गतिः । ४७ । तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः । नक्षत्राणि च दैव्याश्च प्रथमा सात्विकी गतिः । ४८ । यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतीर्पि वत्सराः । पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः । ४९ । ब्रह्मा विश्वसृजोधर्मा महानव्यक्तमेव च । उत्तमां सात्विकी मेतां गतिमा-हुर्मनोपिणः । ५० । एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः । त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः । ५१ । इन्द्रियाणाम्प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च । पापान्संयांति संसारानविद्वांसो नराधमाः । ५२ । यां यां योनिन्तु जीवायं येन येनेह कर्मणा । क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वन्निबोधत । ५३ । बह्वन्वर्पणान् घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् । संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् । ५४ । श्वशूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् । चण्डालपुष्कशानाञ्च ब्रह्महा योनिमृ-

मल गुण की उत्तम गति जानना । ५० । मन बाणी शरीर ये तीनों कर्म के साधन हैं (अर्थात् यही तीनों से कर्म होता है) इन्हीं के भेद से तीन प्रकार के कर्म मल रज तम भेद करके ऊँ फेर नीच मध्यम उत्तम भेद करके एक एक में तीन प्रकार से नव प्रकार के पञ्चभूत से उत्पन्न संपूर्ण संसार है उस को मैं ने देखाने के लिये कहा इस लिये जो नहीं कहा सो भी गति ग्रन्थान्तर्ग से देखने के योग्य है । ५१ । नर में अधम मूर्ख पुरुष इन्द्रियों के प्रसङ्ग से धर्म के त्याग से निन्दित गति को पाते हैं । ५२ । इस लोक में क्रम से यह जीव जिस जिस कर्म करके जिस जिस योनि में जाता है उन सभ को जानो । ५३ । बहूत वर्ष तक घोर नरक के भोग से पापों को दूरकर शेष पाप से महापातकी पुरुष इन संसारों को पाते हैं । ५४ । कुत्ता मूअर गदहा ऊँट गौ बकरी भेड़ मृग पक्षी चण्डाल पुष्कश इन्हीं को योनि में ब्राह्मण को मारने वाला जाता है । ५५ । छोटे बड़े कीड़े पतंग बिष्टा के भोजन करने वाले पक्षी मारने का

